महाकवि निराला
काव्य कला और कृतियां

लेखक

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय एम० ए०, सा० रत्न

प्रकाशक
सरस्वती पुस्तक सदन, मोतीकटरा, आगरा

मूल्य ३।)

सम्मुख नहीं आ पाता साथ ही इस उलझन में कवि का कलात्मक-विवेचन पीछे पड़ जाता है, उसकी काव्य गत प्रवृत्तियों का विश्लेषण भी नहीं हो पाता। प्रगतिवादी आलोचकों का उत्तरदायित्व यह नहीं था कि किसी को भी पकड़ कर वे उसे मार्क्सवादी सिद्ध करने लग जाते और यदि किसी ने मार्क्सवाद को पूर्णरूपेण नहीं अपनाया तो वे उसे प्रतिक्रिया-वादी सिद्ध करने लग जाते, उनका कार्य यह था कि वे कवि के 'चिंतन-क्षेत्र से ही उन तत्वों को पकड़ते जो जन जीवन को आगे बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं। मैंने इस पुस्तक में उक्त दृष्टिकोण को ध्यान में रखने का प्रयत्न भर किया है, साथ ही उन सारे भ्रमोत्पादक विचारों का भी मैंने निराकरण करने का प्रयत्न किया है जिनसे छायावादी कवियों में से किसी को भी 'मानवतावादी' होने के स्थान पर 'मार्क्सवादी' सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया हैं। साथ ही कवि के 'विकास' तथा उसकी कला की विस्तार पूर्वक व्याख्या को अधिक महत्व दिया गया है ताकि निराला को विद्यार्थी यह समझ सके कि उनकी कला में कौन-कौन-सी विशेषतायें है।

इस प्रकार कवि की "परिस्थिति", "विकास" तथा "कला" का विशद विवेचन इस पुस्तक का उद्देश्य है।

'प्रसाद' जी से कुछ पश्चात् निराला की काव्य साधना प्रारम्भ हुई, 'रवीन्द्र और वेदान्त' निराला की प्रारम्भिक कला के आदि स्रोत माने जा सकते हैं। किन्तु प्रतिभा सदा नूतन मार्ग का अन्वेषण कर ही लेती है. हिन्दी में इति-वृत्तों पर रूढ़िगत-काव्य चल रहा था। 'निराला' ने उसे दिव्य-छवियों से अंकित किया, "जुही की कली" ऐसा ही प्रयत्न था जिसमें निर्भयता के साथ द्विवेदी युग की प्यूरिटन-प्रवृत्ति का पूर्ण रूप से उल्लंघन हुआ था तथा रवीन्द्र की रहस्यवादी पद्धति का भी अनुसरण था। यहाँ 'रवीन्द्र' के अनुसरण" शब्द पर भ्रम हो सकता है क्या निराला

रवीन्द्र का अनुकरण कर्त्ता है ? एक सज्जन ने लिखा है "गम्भीर अध्ययन के अभाव में हिन्दी के कुछ भूफोड़ लेखक रहस्यवादी रचनाकारों को कवीन्द्र रवीन्द्र से प्रभावित कह डालने में तनिक भी लज्जा का अनुभव नही करते। मेरी सम्मति में ऐसे बकवादी न तो रहस्यवाद का यथार्थ तात्पर्य समझते है, न रहस्यवाद की ऐतिहासिक परम्परा का क्रमिक ज्ञान ही उन्हें है और न तो वे रवीन्द्रनाथ और निराला को ही भली भाँति समझते हैं" ×

यह ठीक है परन्तु हमें एक बात ध्यान में रखनी चाहिये। "उधार लेना और बात है, प्रभावित होना और बात।"

(Borrowal is one thing and influence is quiet another thing)

निराला का काव्य 'रवीन्द्र' की कला का अनुकरण नहीं है पर यह भी ठीक है कि निराला ने प्रेरणा के लिए रवीन्द्र की ओर देखा है, उसी पद्धति को अपनाया है किन्तु उसी रूप में नही, स्वयं निराला ने उपमान-विधान व आलम्बन रूप मे प्रकृति के वर्णन के लिए बंगाली कवियों की चित्र विराटता का उल्लेख अपने निबधों में किया है, अत. रवीन्द्र की पद्धति का अनुसरण निराला ने अवश्य किया है, रवीन्द्र ने योरोप के रोमांटिक कवियों की पद्धति का।

निराला का सम्बन्ध विवेकानन्द के द्वारा वेदान्त से हो गया और कवि के चितन का स्रोत दीर्घ काल तक 'वेदान्त' ही रहा पर अपने पूर्ण सामाजिक रूप में। उसने जगत को 'माया' समझते हुए भी जगत का कभी अपलाप नहीं किया। बल्कि उसका वैयक्तिक विश्वास समाज-चिंतना का दृढ़ आधार बनता गया, सन् ४० के बाद की कविताओं में सामाजिक पक्ष प्रबल हो गया परन्तु अतस् के निगूढ़-प्रदेश में आज भी वही वैष्णवीय भक्ति कल्लोलित हो रही है।

× निराला काव्य की दिशायें — 'मानव'
निराला अभिनंदन अंक (पं० परमानंद शर्मा)

इस प्रकार अपने व्यक्तिगत विश्वासों यथा वर्णों के विभाजन, आत्म-वाद, आदि में विश्वास रखते हुए भी निराला के कवि ने जन-जीवन में 'संध्यासुन्दरी' आदि से सौन्दर्यानुभूति जागृत की, "शिवाजी का पत्र" राम की शक्ति पूजा से राष्ट्र में दासता के विरुद्ध भैरव स्फूर्जन भरा, बादल, भिक्षुक कुकुरमुत्ता आदि से क्रांति का तुमुल घोष किया। इस प्रकार निराला का काव्य व्यक्ति, राष्ट्र तथा समाज को गतिवान करने में अत्यन्त समर्थ है। कला की दृष्टि से भी उसमें अद्भुत साधना की गई है जो शब्द-संगठन, पदावली विन्यास, समास-शैली तथा पद-प्रवाह के रूप मे दीख पड़ती है। कला के अंतरंग में कवि की ऊर्जस्वित विद्युत धारा का वेग है और अभिव्यक्ति में उच्छृंखल नाद जैसा उद्दाम प्रवाह, कवि की कला अवरोधों व कल्पित मान्यताओं के विरुद्ध एक सबल ललकार है, 'रहस्यवाद' में जहाँ कवि का 'आत्म' रहस्ययानुभूति को मधुर अनुरणन करने वाले गीतों में बाँधता है वहाँ भी अद्भुत प्रकाश मिलता है वह प्रिय-मिलन के क्षणों में स्वस्थ भूमि से नहीं हटता, दर्प और माधुर्य के इन्द्रधनुषी रंग यहीं मिलते दृष्टिगोचर होते है। ललकार व झंकार एक साथ !

इस प्रकार निराला का काव्य वस्तुतः हमारी परीक्षा चाहता है, 'निराला' को व्याख्याओं में बाँध सकना कठिन है। कवि का व्यक्तित्व ही ऐसा होता है कि व्याख्या से उसका सौन्दर्य सदा आगे रहता है, हम 'मोती' की नाप-जोख कर सकते हैं, किन्तु उसकी अन्तर्निहित 'कांति' को देखकर भी नही कह पाते।

'निराला' के जिज्ञासु-पाठकों को यदि इस पुस्तक से यत्किंचित भी सहायता मिली तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

मैं डा० रामविलास शर्मा का अत्यधिक आभारी हूँ जिन्होंने मुझे निराला जी की कतिपय पुस्तकों—"प्रबंध पद्य", "चाबुक"

आदि को पढ़ने का सुअवसर दिया। कहना व्यर्थ है कि निरालाजी के निबन्धों को बिना पढ़े उनके दृष्टिकोण को समझ लेना असम्भव है।

बाबू गुलाबराय एम० ए०, डा० सत्येन्द्र एवम् डा० राँगेय राघव के सत्परामर्शों से मैंने बराबर लाभ उठाया है एतदर्थ उनके प्रति मैं हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—दो शब्द	
२—भूमिका	
३—जीवन झांकी	९
४—युग और परिस्थितियाँ	१०
५—विचार और विश्वास	४६
६—निराला और देश-प्रेम	८८
७—कला और कृतियाँ (१) परिमल, (२) अनामिका, (३) तुलसीदास, (४) गीति-कला, (५) गीतिका के गीत।	१०७
८—निराला की प्रगति और प्रयोग	२१२
९—निराला और रहस्यवाद	२२५
१०—निराला और प्रकृति	२४३
११—भाषा और छन्द	२६५
१२—भाषा और शैली	२७३
१३—मूल्यांकन	२८३
१४—परिशिष्ट	३००

१—जीवन झाँकी

घटनाओ के झौंके, चेतना-सरोवर को 'मथित, चालित-ताड़ित' करते रहते हैं, इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं कि प्रबुद्ध चेतना—जो युगोन्मेषकारी व्यक्तित्व की जननी होती है, मात्र परिस्थितियो से शासित होती है, चेतना निरपेक्ष तो नहीं होती वह परिस्थितियो के बीहड़ को चीर कर राह खोजती है, खोजती ही नहीं, बनाती भी है, यहाँ 'व्यक्तित्व' कई कार्य करता है, कभी स्वतन्त्र असम्भाव्य लक्ष्य की ओर अगुलि, निर्देश करता है। कभी अपनी समस्याओ, असङ्गतियों, परम्पराओ और रूढ़ियों के कर्दम से क्लान्त युग के लिये मुक्त—ज्ञान-प्रवाह बनता है, कभी इन सबसे खिन्न होकर कल्पना के रङ्गीन, इन्द्र धनुषी वातावरण मे रमण करने लगता है और कभी अप्रतिहत, अप्रत्याशत बेग से जड़ता की चट्टान पर सिर पटक-पटक पर बिषाद की स्वर लहरी मे डूब जाता है और कभी-कभी विचार से निर्दिष्ट, लक्ष्य की ओर भावना के डग भरता हुआ सारे युग को घसीटता हुआ प्रधावित होता है। 'व्यक्तित्व' की यह देन दार्शिनिक की खोज मे, विज्ञान के आविष्कार मे, शूर वीर की ललकार मे और कवि की मधुर तान मे एक सी दिखाई पड़ती है, यही हम कृति, व. 'कलाकार' के मूल्य का अङ्कन करते हैं और कलाकार के कृतित्व को समझने के लिये उन परिस्थितियों, विविध घात-प्रतिघातों का भी अध्ययन करते हैं जिनसे कलाकार की चेतना में स्पन्दन जागता है, रुद्धता नष्ट हो जाती है, मुखरता किलक उठती है।

युग की परिस्थितियों के पूर्व हम 'कवि' को जीवन परिस्थितियों को देखेंगे।

निराला का जन्म १८९६ ई० मे बसन्त पचमी के दिन महिषा दल (बङ्गाल) मे हुआ, वैसे 'कवि' के पिता पं० रामसहाय जी त्रिपाठी गढ़ाकोला, उन्नाव के निवासी थे। मेदनीपुर जिले मे महिषा दल-नामक एक रियासत है, वहाँ उन्नति करते-करते वे १०० सिपाहियो के ऊपर 'जमादार' हो गये थे। प्रथम पत्नी के देहावसान के पश्चात् त्रिपाठी जी को दूसरा विवाह करना पड़ा और इसी महिला की पवित्र कोख से 'सूर्यकान्त' का जन्म हुआ (१८९६ ई०) किन्तु मातृ स्नेह से बालक सूर्यकान्त को वचित होना पड़ा, किशोर-कल्पना पर यह पहला प्रहार था।

शिक्षा का कार्य प्रथम एक बॅगला स्कूल मे और तत्पश्चात् हाईस्कूल मे चलता रहा, किन्तु इसके समानान्तर बैसवाड़े से आये हुये लोगो से बैसवाड़ी का बोलना, 'सरस्वती' पत्रिका से 'हिन्दी' का सीखना, सिपाहियो के साथ 'रामायण' का गायन करना चलता रहा, सगीत, कुश्ती, घुड़दौड़, आदि उस सामेती वातावरण मे स्वाभाविक ही था। कक्षा १० तक आते आते बालक सूर्यकान्त कवि हो चला था, बॅगला, अवधी, ब्रजभाषा मे प्रयोग चले, राजा की हारमोनियम पर स्वर साधना ! वैचित्र्य 'निराला' जी की मुख्य पहचान है. जो उन्हे सम्भवत जन्म से प्राप्त हुआ है, शरीर, मेधा, साधना, सब वैचित्र्य पूर्ण, जो बालक परीक्षा मे गणितकी कापी में पद्माकर के चुहचुहाते' छन्द लिख सकता है, पिता द्वारा बार २ पीटे जाने पर भी बन्दूक का निशाना साध सकता है, जिसने जीवन मे कविता के क्षेत्र मे क्या 'कुश्ती' के अखाड़े मे भी कभी मुँह की नहीं खाई, जो शिशु अवस्था मे ही सारे वातावरण के लिये एक कौतूहल का विषय बनता है, जो एक साथ सगीतज्ञ, पहलवान, कवि, भाषा-विद् और दार्शनिक के साँचे में ढाला नहीं जाता, ढल जाता है वह व्यक्तित्व असाधारण ही होगा, सिपाही से लेकर राजा तक चकित थे, राजा उन्हे गोद भी लेना चाहते थे, परन्तु निराला 'भारी'

निकले, वह शायद ही सँहल पाते, हिन्दी के भाग्य से वह राजसी वातावरण के अवयव बन कर नही रह गये। महिषापुर मे 'निराला' जी का विकास भी अद्भुत रहा।

चाँदपुर जिला फतहपुर से कान्यकुब्जो की परम्परा के अनुसार निराला का विवाह बचपन मे ही होगया। 'मनोहरादेवी' को सगीत व हिन्दी साहित्य से अच्छा परिचय था। उनकी "हिन्दी के प्रकाश से, प्रथम परिचय के समय कवि आँखे न मिला सका, हिन्दी मे प्रौढ़ता लाने का श्रेय बहुत कुछ स्वर्गीय मनोहरादेवी को है। कवि का मात्रा से अधिक शौर्यवान् होने के कारण पिता से ताड़ना मिलती थी, किन्तु कवि अपने मार्ग पर चलता रहा, विवाह के पश्चात् कवि को जो स्नेह प्राप्त हुआ वह स्वर्गीय था किन्तु इस 'विद्रोही' कवि के स्वभाव को बाँधना असम्भव ही था, आमिष-भोजी होने के कारण देवीजी ने सत्याग्रह किया और वे अपने मातृ-गृह चली गई, वही इन्फ्लुऐन्जा के रोग मे उनकी मृत्यु हो गई। यह दूसरा प्रहार था।

यहाँ से दो प्रतिक्रियायें स्पष्ट दृष्टि गोचर होती है एक—कवि की रूक्षता जो उनकी प्रिया की सरस दृष्टि-निक्षेप से लुप्त हो जाती थी, बढ़ती हुई कुछ समय तो अर्द्ध-चेतनावस्था सी रही, जिससे अन्तमुखी प्रकृति बढ़ी दूसरी ओर 'कोमल आश्रय' के नष्ट हो जाने से उग्रता बढ़ती गई।

दो कवि ने अपने जीवन मे जिस शृङ्गारिक-अनुभूति को उतारा था, वह "दिव्य-रति" के रूप मे आगे के काव्य में प्रतिध्वनित होने लगी, इसका दार्शनिक आधार भी था और मनोवैज्ञानिक भी। दार्शनिक आधार कवि को विवेकानन्द के उपदेशों तथा प्राचीन दर्शन-शास्त्र के अध्ययन से मिला, विवेकानन्द के यहाँ "भक्ति व वेदान्त' साथ चलते थे, दूसरी ओर 'रवीन्द्र' का रहस्य काव्य था जिसमे दिव्य सत्ता की प्रेयसी-प्रियतम के माध्यम से अभि-

व्यक्ति होती थी अत निराला जी को सुखद-स्मृति ने इस दार्शनिक आधार पर जिस रहस्य काव्य की प्रेरणा दी वह कितना स्पृहणीय बन सका यह हम आगे देखेंगे। साथ ही स्वर विखरण भी हो गया, छायावाद के सभी कवियो का, बेदना का आधार लौकिक है। किन्तु जब विचरक उस लौकिक आधार को, सम्पूर्ण महत्व देकर, सम्पूर्ण विचारक काव्य को अवचेतन का निस्फोट कहने लगते है तो अनुचित प्रतीत होता है। लौकिक प्रेम की असफलता या अभाव इस छायावादी बेदना का एक कारण अवश्य है, किन्तु उसको इन साधको ने कितना परिमार्जित किया है, यह सर्व विदित है।

निराला की मॉसल और स्थूल अभिव्यक्तियो मे भी जो एक स्पृहणीय तटस्थता दिखाई पड़ती है उसका कारण 'कवि' की आध्यात्मिक अनुभूति है। जिसमे लौकिक प्रेम की क्षीण छटपटाहट भी मिली हुई है, जब हम अभुक्त काम-वासना को सारा महत्व दे बैठते है तो कबीर व अन्य सन्त कवियो के सम्बन्ध मे हमारा यह माप दण्ड सहम कर पीछे हट आता है, और फिर 'निराला' 'पन्त', महादेवी आदि मे 'बेदना', मात्र प्रेम के ही कारण नहीं उसमे आर्थिक, राजनैतिक निराशा आदि अन्य कारण भी हैं 'कवि' ही एक ऐसा प्राणी है जो संबेदना के बल पर लोक की करुणा को व्यक्तिगत और व्यक्तिगत करुणा को (यदि वह लोक विरोधिनी न हो) लोक-करुणा बना देता है। कवि स्वयं कहता है —

"जिसने अन्त मे अदृश्य होकर मुझसे मेरी पूर्ण परिणीता की तरह मिलकर मेरे जड़ हाथ को अपने चेतन हाथ से उठाकर, 'दिव्य श्रृङ्गार' की पूर्ति की।"[1]

पत्नी के मृत्यु-काल के आस पास ही निराला जी के पिता

१—गीत काव्य की भूमिका।

का स्वर्गवास हुआ, एक ओर एक पुत्र, एक पुत्री का पालन पोषण दूसरी ओर यश शरीर का अमर करने का पुण्य कार्य, तीसरी ओर अर्थाभाव के दानव से सघर्ष। कवि को पुन महिपादल जाना पड़ा, नौकरी चली, कलकत्ते से सम्पर्क रहा, उन्होने बॅगला मे लिखा और हिन्दी मे भी। "जुही की कली' का सौरभ सन् १६ से ही फैल रहा था परन्तु उसका पूर्ण प्रकाश तो बाद मे ही फैल सका, राजा की नौकरी मे कवियोचित तटस्थता का निर्वाह न हो सका फलत. त्याग-पत्र देना पड़ा (१६२०)।

इसके पश्चात् निराला का सम्पर्क विवेकानन्द मिशन के पत्र "समन्वय" से हो गया, वे एक बार पुनः महिषादल गये पर निभ न सकी और "समन्वय" मे कार्य करते रहे, मुक्त छन्दो का आविष्कार प्रारम्भ हो चुका था और गुप्त जी, हरिऔध जी तथा सनेही जी की कृतियो का अवगाहन चल रहा था किन्तु कवि को सन्तोष न था, उसके सम्मुख एक व्यापक, मुक्त, कल्पनामय जगत था, कथाओ के सूत्र पर गुप्त व हरिऔध की तरह उसकी कल्पना नृत्य नही कर सकती थी, न केवल भाषा का प्रश्न था अपितु वस्तु (Content) का भी प्रश्न था, निराला ने दोनों क्षेत्रों मे क्रान्ति उपस्थित की, प्राय सभी छायावादी कवि घोर व्यक्तिवादी हैं, व्यक्तिवादी कवि दूसरो के द्वारा प्रशस्त मार्ग पर चलना पसन्द नहीं करता, वह स्वयमेव चुनता, गढ़ता, परिष्कृत करता, सजाता और मुग्ध होता है, एक असाधारण मौलिकता प्रदर्शन और चमत्कृत कर देने की चाह उसमे स्वभावत. रहती है, जो 'ग्राह्य' है। उसको वह उलटता पुलटता है, तोड़ भी डालता है, अस्वीकार भी करता है। यह गुण वस्तुत व्यक्तिवादी प्रवृत्ति के मूल मे ही है, "व्यक्तित्व का वैचित्र्य" इसीलिये इन छायावादियो में अधिक मिलता है। निराला ने आजतक केवल प्रयोग किये हैं, एक मार्ग को खोजकर उसी को प्रशस्त करने मे शक्ति नहीं लगाई, इस दृष्टि

से महादेवी ने कम से कम शैली की दृष्टि से, अधिक धैर्य और सयम से कार्य लिया है।

नवीनता की इस प्रवृति ने पचवटी प्रसग को जन्म दिया जो मुक्त छन्द का प्रथम नाट्य गीत है। मानव की मुक्ति की कामना के साथ साथ छन्दो की मुक्ति की बलवती इच्छा निराला की बचपन से ही प्रेरित करती रही है। मनुष्य की मुक्ति मे देर भले ही हो परन्तु निराला की छन्दो की मुक्ति की महात्वाकाँक्षा पूरी हुई, इसका एकमात्र श्रेय उन्ही को है, पञ्चवटी, परिमल इसी काल की कृतियाँ है।

समन्वय के पश्चात सेठ महादेवप्रसाद जी द्वारा प्रकाशित 'मतवाला' मे निराला जी का सहयोग रहा, यहीं से अनामिका का प्रकाशन हुआ (१६२२ ई०) जो कई कविताओ का सग्रह है। महादेव बाबू ही वे व्यक्ति है जो निराला जी को प्रकाश मे लाये, 'मतवाला' पत्र के मेल मे ही सूर्यकन्त त्रिपाठी' 'निराला' कहलाये जाने लगे। काव्य के साथ साथ कवि ने दर्शन धर्म सम्बन्धी प्रौढ़ लेख लिखे जिनकी विचारधारा ने उस समय की जड़ता को दूरकरने मे पर्याप्त हाथ बॅटाया।

'मतवाला' व 'निराला' का सयोग भी आगे न चल सका निराला को विज्ञापन, लेखन, अनुवाद आदि करके अपना कार्य चलाना पड़ा, किन्तु आश्चर्य यह है कि घोर आर्थिक सकट के समय कवि अपनी साहित्यिक प्रौढ़ता के स्तर पर किस प्रकार स्थर रख सका।

सभ्रम, पराजय, निराशा, और वाह्य प्रहारो की कड़ी मार मे ही व्यक्ति की मनुष्यता की पहचान होती है, कठिनाइयो मे निष्पीड़ित होकर उसमे जो रस बच जाता है वही भविष्य का पुष्ट पाथेय बनता है। निराला का 'अह' जो अद्वैत-वादी दर्शन को पढ़कर 'सोऽह' की ओर बढ़रहा था, इन वाह्य सघर्षो को क्या समझता,

वह शक्ति के रहस्य को समझ चुका था अत कवि चुनौती के रूप में सामने आता गया, उसने जाति, धर्म, समाज, साहित्य सभी को—जड़ मान्यताओ, को ललकारा । किन्तु कलकत्ते से हटना ही पड़ा सन् २८ मे लखनऊ मे डेरा पड़ा । इधर प्रसाद, पन्त, आदि पर्याप्तकार्य कर चुके थे, इसे हम पल्लव-आँसू-काल कह सकते है, किन्तु निराला का साहित्य इन के लिये भी कौतूहल का विषय रहा, मुक्त छन्द तो प्रसाद ने बहुत पहले लिखे थे परन्तु 'निराला' के छन्दो मे तो जैसे सगति कही खोजने को भी नहीं मिलती थी, अत वे उपहास के पात्र बनते रहे परन्तु निराला ने भी, पन्त व पल्लव. "काव्यकला मे विरह और जोशी वन्धु" आदि लिखकर प्रतिशोध लिया। प्रतिशोध ही कहना होगा क्योकि इन आलोचनाओं मे सयम का कहीं कहीं अत्यन्त अधिक अभाव होगया है । परन्तु इससे निराला की कला का स्पष्टीकरण भी होता गया । युग समझता 'निराला' कुछ नही, निराला समझते, युग मूर्ख है, वह 'निराला' का नही समझ सकता, । जब 'कलाकार' इस प्रकार युग से लाँछित और अपमानित होता है—तब इस स्थिति मे प्राय. दो स्थितियाँ स्वाभाविक होती है १—या तो कवि घोर एकांतिकता मे निमग्न हो जाता है, सामान्य भावभूमि, को छोड़कर स्वप्निल, एकान्तिक, वैयक्तिक, विपरण अनुभूतियो मे निमग्नहो जाता है २—या फिर प्रहार करता है और सहता है, हर चोट पर हँसता है, व्यग करता है, विरोध और उपेक्षा व्यक्ति करता है, सर्वजयी अहकार का नीड़ बनता जाना है और इतना सब सहते सहते निश्चित रूप से व्यक्तित्व कुछ 'निरालापन' ले आता है, ध्यान से देखने पर यह 'निरालापन' उक्त मानसिक स्थिति का ही स्वाभाविक विकास होता है, 'निराला' की स्थिति उक्त स्थितियों मे दूसरे प्रकार की है। और जब दुनिया उसे पागल कहती है तब अपनी ही अज्ञानता प्रकट करती है।

किन्तु यह स्थिति अभी सहसा नहीं आई, इसके आगे की घटनायें घोर सघर्ष की है, सम्मेलन की नीति से निराला ने विद्रोह किया, आवश्यक था, प्राचीन ब्रजभाषा रसिको तथा तुक–तुकारामो, से टक्कर हुई। पुराण-पन्थी दम्भी सनातनियो से "वर्तमान धर्म" और साहित्यिक सन्निपात सम्बन्धी लम्बा विवाद चला, किन्तु कवि अडिग रहा, उधर जिस एक मात्र पुत्री सरोज का विवाह उन्होंने अपने हाथ से बिना किसी बरात, या धूमधाम से किया था, जो मनोहरादेवी के प्रेम की स्मृति के रूप मे निराला को प्राणसम प्रिय थी, स्वर्ग सिधार गई, कवि ने "सरोज-स्मृति" नामक शोक गीति लिखा—

दु ख ही जीवन की कथा रही—
क्या कहे आज जो नही कही।
कन्ये ! गत कर्मों का अर्पण—
कर करता मै तेरा तर्पण।

यह चीत्कार कर के भी, कवि ने अपने को सम्भाला, यह असहनीय प्रहार था, इसने कवि को क्षत-विक्षत करदे ही छोड़ा, अपनी आर्थिक असमर्थता से कवि अपनी पुत्री का उपचार भी ठीक से न करा सका। सन् १९३० के पश्चात सन ३५ तक प० बनारसी दास चतुर्वेदी एक प्रकार से 'विशालभारत' द्वारा कवि के पीछे पड़े रहे, किन्तु कवि ने दुर्दमनीय शक्ति से अवसरवादियो पर वज्र प्रहार किया, सन ३५ मे ही सरोज की मृत्यु हुई, शत शत ब्रणो से छिन्न भिन्न होकर भी कवि साहित्य सृष्टि मे लीन रहा। किन्तु शायद इन सब सघर्षों, पराजयो तथा उपेक्षाओ के मूल मे कवि को सामाजिक व्यवस्था के दोष का अधिक भाग दिखाई पड़ा। सन् ३६ के बहुत पहले कवि ने दुखियों, दलितो के प्रति आँसू बहाये थे परन्तु इन सघर्षो के पश्चात चोट पर चोट खाकर उसमे एक दुर्दमनीय विद्रोह-शक्ति बढ़ती गई और सन ४० के पश्चात तो उसका

सारा साहित्य व्यक्ति के सामाजिक अधिकार दिलाने का, समता और जनता के राज्य स्थापन का प्रतीक बन गया। स्वयं कवि ने छायावादी साहित्य-साधना मे लगाये गये समय को व्यर्थ बताया, दार्शनिक ऊहापोह, विश्ववादी चेतना मे व्यक्तिवादी चेतना का परिणति सम्बन्धी कविताओ मे जो प्रयत्न चल रहा था वह समाप्त हुआ, आज वह न समझौता करता है, न भागता है, निराला कठिनाइयो से जूझकर आज व्यङ्ग्यकार बन गया है।

यदि 'जुही की कली' (सन १६ ई०) से लेकर नये पत्ते आदि रचनाओं के बीच में कवि के जीवन का विश्लेषण करें तो उसमे केवल उस समय को छोड़ कर जिसे तैयारी का समय कहा जा सकता है, अर्थात मनोहरादेवी की मृत्यु के पहले तक, सारा समय उस 'चेतना' का इतिहास है, जिसे कठिनाइयो की काली नकाबो, बादलो, दैवी प्रहारो, व्यवस्था-जनित अभिशापो से तुमुल सघर्ष कहना पड़ता है, इन सघर्षो के इतने परिचय के बिना "जुही की कली का" प्रेमी और दार्शनिक कवि किस प्रकार "कुकुरमुत्ता" तक पहुँचता है, यह समझ लेना असम्भव है।

निराला के आर्थिक सङ्कट का प्रश्न बहुत कुछ तो आधुनिक प्रकाशन व्यवस्था पर है किन्तु एक सीमा तक उनके निराले स्वभाव पर भी है। यह कवि किसी के भूखे के माँगने पर अपना भोजन छोड़ सकता है, किसी नगे के माँगने पर अपना वस्त्र उतार सकता है, पुस्तको से प्राप्त धन का सबसे अधिक भाग दूसरो की सहायता मे व्यय होता है आज तक इस कवि ने मिले पुरस्कारो को निजी कार्यों मे व्यय नहीं किया, भला ऐसे "अवढर दानी" को अर्थ का अभाव न खलेगा तो किसे खलेगा? अपने निजी व्यय मे भी सतुलन हीनता है, यह सन्तुलन-हीनता उनके प्रयोगो मे भी दिखाई पड़ती है यदि भाषा सरल और व्यवहारिक लिखने पर आये तो उर्दू की गजल तक उसे पहुँचा दिया यदि प्रौढ़ता की ओर झुके तो

"वाण" भी सहम उठे, इस सन्तुलन-हीनता ने दैनिक जीवन में घोर कष्टो की एक पंक्ति कवि के सम्मुख खड़ी करदी है किन्तु वह पराजित नहीं होता, लड़ता चल रहा है परिणाम यह हुआ है कि निराला के इस शक्तिवान, निराले व्यक्तित्व के प्रति एक अद्भुत आकर्षण पाठको मे घर कर गया है, लोग उन्हे पढ़ते नहीं है, पढ़कर समझ भी कम पाते है परन्तु उनका आदर वे सम्पूर्ण कवियो से अधिक करते है, दैनदिन जीवन की घटनाओं को सुन-सुन कर आज अपरिचित पाठक प्राय उन्हे किसी कहानी के रोमाण्टिक नायक के समान अत्यन्त विस्मयकारी विशेषताओ से युक्त मान लेते है, आज निराला के काव्य के सम्बन्ध मे उतनी चर्चा चाहे न हो परन्तु उनके जीवन के सम्बन्ध की घटनायें अवश्य चर्चा का विषय बनती है, लोग सुनते है आश्चर्य करते है, और श्रद्धा से नत हो जाते है, उन्हे "रोमाँटिक हीरो" बना कर कल्पना के बल पर नई नई घटनायें गढ़ भी ली जाती है, उनके गोश्त खाने, शराब पीने, गान्धीजी को ओजस्विता पूर्ण जवाब देने, तथा नेहरू को फटकारने की कहानियाँ कहकर—केवल कहानियाँ कहकर हम राम की 'शक्ति पूजा' व 'तुलसीदास' के कवि के प्रति न्याय नहीं कर सकते, जीवन का अध्ययन साहित्यिक सृष्टि के अध्ययन की पार्श्व भूमि के रूप में होना चाहिये और मैने प्राय देखा है कि इन घटनाओ मे नमक-मिर्च लगाकर वे ही लोग अधिक वर्णन करते है जो निराला-काव्य को कम या बिल्कुल नहीं समझते, यही कारण है कि 'निराला' आश्चर्य का विषय हो रहा है।

निरालाजी की प्रौढ़ता और दुरूहता दोनो के लिये उनके पागल हो जाने का बहाना सहज प्राप्य है, क्या यह कवि का अपमान नहीं ? मै आगे दिखाऊँगा कि शब्द की सङ्गति मिलाने का मोह होने पर भी "निराला" में विचारों की एक सूत्रता बराबर मिलती है, कतिपय गीत अवश्य हैं, गीतों में कतिपय पंक्तियाँ भी हैं जिनमें

विचार—क्रम अस्पष्ट हो जाता है परन्तु साधारणतया वह 'क्रम' सुलभ रहता है यदि हम कलाकार की ही तरह सजग रहे। अतः आज आवश्यकता यह है कि निराला के साहित्य का गम्भीर अनुशीलन हो, केवल जीवनी का वर्णन कर पाठकों मे सनसनाहट, उत्पन्न करने का प्रयत्न बौद्धिक दिवालियापन है दूसरा भ्रम वे लोग खड़ा करते है जो निराला की विद्रोह-मयी गाथा गाकर उनके काव्य का तथा-कथित वाद-परम्परा मे डालते हैं, ओजस्विना और शक्ति का अर्थ मार्क्सवादी होना नहीं है, निराला के विद्रोह का स्वरूप क्या है ? उनका आदर्श और यथार्थ क्या है ? इन प्रश्नो का उत्तर उनका साहित्य देगा न कि उन की कष्ट—कहानी, किन्तु जघन्यता-वादी है और निराला के जीवनी के बहाने अपनी बात जो कहना चाहते है उनकी चर्चा ही अलग है, ऐसे लोगो ने कवि के 'व्यक्तित्व' केमूल्याँकन मे बहुत बड़ी बाधा पहुँचाई है किन्तु अब वह समय आगया है जब कि जनता के सम्मुख 'निराला' का यथार्थ रूप हमे रखना होगा, जो उनकी रचनाओ मे गम्भीर विश्लेषण से ही स्पष्ट हो सकता है।

युग और परिस्थितियाँ

निराला का जीवन-वृत्त, उनके निजी जीवन के सघर्षों की एक सक्षिप्त झलक पा लेने के पश्चात् हम उस युग को देखेंगे जिसमें उनका आगमन हुआ, निराला साहित्य की सम्पूर्ण ऊर्ध्व, सम और निम्न गामी चेतना को समझने, उनकी कला के दोलन, प्रस्फुटन, और प्रस्पन्दन की अनुभूति के लिये यह आवश्यक होगा कि हम उस युग की चित्तवृत्ति का अध्ययन सक्षेप में करलें ताकि हमारा विश्लेषण पुष्ट आधारों पर आधारित हो सके।

प्रथम महायुद्ध के पूर्व सारे 'सभ्य' कहे जाने वाले विश्व मे जब पूंजीवादी-क्रान्ति हो रही थी, स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि इंगलैंड की युद्ध पताकायें वहाँ के चिमनी वाले कारखाने है। सैनिक वहाँ के व्यापारी है। और ससार के पिछड़े देशो के बाजार ही इङ्गलैंड के समरस्थल है।"

That England, whose war flages, are the chimney factories, Whose troops are the market men, Whose battle-fields are the market places of the world"

इङ्गलैंड ही नहीं, जर्मनी, फ्राँस, इटली आदि अन्य देशो का विश्व के पिछड़े देशों के सम्बन्ध मे यही रुख था, इङ्गलैंड की औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात जो वहाँ अतुलित उत्पादन हुआ उससे उत्पादन के साधन बदल गये, सामन्तवाद का विनाश निकट आगया, अब तक एक निरकुश शासन सम्भव था, उसकी छत्रछाया मे, या समानान्तर अन्य सामन्त व जागीरदार विभिन्न प्रदेशों पर शासन करते थे

और उनका शोषण "कृषक-दासो" Serfs पर निर्भर था, किन्तु नये आविष्कारो ने औद्योगिक क्रान्ति कर दी और सम्पत्ति के उत्पादन का क्षेत्र खेत, पशु पालन आदि सकुचित होता गया और मैनचेस्टर, लिवरपूल, आदि मे चिमनीदार बड़ी बड़ी फैक्टरीं खड़ी हो गई । 'सर्फ (कृषक) अब तक भूमि के लिये सामन्त या राजा पर निर्भर रहता था, समझता था कि सब कुछ राजा का है और राजा ईश्वर का प्रतिनिधि Divine right of King है ही,साथ ही इस वर्ग मे भाग्यवाद, देवता पूजा, निराशावाद, अतीत पूजा आदि अनेक इसी प्रकार के अन्ध विश्वास स्वाभाविक ही है क्योकि भूमि से सहज लगाव होने के कारण कृषक-वर्ग "रूढ़ियो का चिर-रक्षक" होता है और उसमे ये रूढ़ियाँ पुरोहित वर्ग डालता है सामन्तो की रक्षा के लिये जो कृषक-वर्ग मे असन्तोष नहीं उभरने देता । पूँजीवादियो मे शिरोमणि इङ्गलैड के इस विकास को देखकर स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य किस प्रकार अपने सामाजिक यथार्थ से प्रभावित होकर परिवर्तित होता जाता है। तथा उसमे सामाजिक चेतना, चिन्तकों और कलाकारो के माध्यम से किस प्रकार अभिव्यक्त होती चलती है ।

हमने इस विकास काल का औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व व उसके बाद इन दो भागो मे मोटा विभाजन कर दिया है, यदि सूक्ष्मता से देखा जाय तो १५५० ई० के पूर्व इङ्गलैण्ड में (फ्यूडल) सामन्त प्रथा का आधिपत्य था यथा हमारे यहाँ "वीर गाथा काल" मे। इस युग मे वीरो के शौर्य व दीप्ति का, उनकी अलौकिक वीरता, धैर्य व चमत्कार का ओजस्विनी-भाषा में वर्णन, पद्यबद्ध कथाओं, गीतों व आख्यानो के रूप मे प्राप्त है। किन्तु प्रदेशो पर छोटे छोटे शासको का यह समय आगे चल कर नहीं रहता और निरंकुश सत्ता का समय आता है। अतः साहित्य में भी निरंकुश शासन-समय की परिवर्तित

भावनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है। भूमि की मुख्यता उतनी नहीं रह जाती, व्यापार की प्रधानता होती है और बाह्यदेशों के शोषण से धन की वृद्धि होती है, इस बाह्य शोषण की सुरक्षा, तथा उस आते हुये धन की क्रमिक वृद्धि के लिये बलशाली निरंकुश सत्ता की आवश्यकता होती है, छोटे मोटे सरदार एक छत्रछाया मे आ जाते है, देश मे एक शान्ति व सुरक्षा का वातावरण स्थापित हो जाता है ताकि व्यापार मे बाधा न पड़े. देश मे साहित्य द्वारा हीरोइज्म जगाया जाता है, 'देशभक्ति' का आदर्श रक्खा जाता है, अर्थात् दूसरो का शोषण कर अपने देश-वासियो को समृद्ध करने का भाव, और अपने भी सम्पूर्ण देश वासियो को नहीं, एक वर्ग विशेष को सम्पत्तिवान करने का भाव, जिसमे राजा, व्यापारी साहूकार वर्ग तथा विजेता वर्ग होता है, किंतु इस परिवर्तन से एक लाभ भी होता है और वह यह कि नीचे के 'भूमि-दासो' (Serfs) को कुछ सुविधा मिल जाती है। यह युग 'एलिजाबेथ' के आस पास का है, इस समय के साहित्य मे 'व्यक्तिवाद' किसी सीमा तक बढ़ता है, नायक सर्वदा 'राजकुमार' रहता है—निरंकुश राजकुमार, जो शान का जवीन व्यतीत करता है, शैली उदात्त, दरबारी शान के योग्य, परिष्कृत और संगीत से पूर्ण होती है, चूँकि व्यापारी व विजेता वर्ग की उन्नति बहुत कुछ व्यक्तिगत-वीरता व विवेक पर निर्भर रहती है अत इस युग मे व्यक्तिगत-इच्छा शक्ति (Personal will) का महत्व बहुत अधिक है, जहाँ पुराने फ्यूडल युग मे केवल बाह्य-वीरता का ओज-मय वर्णन मिलता है उसी प्रकार इस युग में आध्यान्तरिकता (Subjectivity) आजाती है, 'निरकुश सत्ता' की तरह एक "निरंकुश-नियति" का विश्वास प्रत्येक पात्र मे रहता है 'नारी' को अविश्वास, विलासिता, दुर्बलता, तथा उच्छृङ्खलता का प्रतीक माना जाता है । शेक्स-पियर के पात्र तथा पात्रियाँ इसके प्रमाण है । जिनमे एक ओर व्यक्तिगत इच्छा के प्रतीक 'हैमलेट'

जैसे राजकुमार है तो दूसरी ओर "दुर्बलता तेरा ही नाम स्त्री है" (Frailty thy name is woman) की प्रतीक उसकी माता-राज महिषी गर्ट्रूड । एक ओर भाग्य व नियति के खेल 'टैम्पपेस्ट' और किंग लियर' मे चलते है तो दूसरी ओर राजसी वातावरण के अनुकूल शेक्सपियर की कॉमेडीज मे टाबी, फालस्टाफ आदि के स्वाँग व वाइला ओलीविया आदि के प्रेम-कथानक आते है।

'निरकुश सत्ता' के प्रति आगे चल कर 'क्रामवैल' विद्रोह करता है पर वह स्वय उच्च वर्ग का सेनानी है जो जनता के नाम से 'सैनिकवाद' को फैलाता है, यहाँ बूर्ज्वा-वर्ग बलशाली-राज्य सत्ता के प्रति विद्रोह करता है, किन्तु जनता को यह 'बूर्ज्वा' वर्ग सतुष्ट नही कर पाता, 'मिल्टन' को निकाला जाता है, 'सैटान' की प्रचण्डता इसी लिये गाई गई है, व्यक्ति गत आदर्श वाद जो बूर्ज्वा-वर्ग की विशेपता है 'मिल्टन' के माध्यम से प्रचारित होता है। आगे चलकर 'ड्राइडन' के युग मे उच्चवर्ग तथा राजनीति मे प्रभावशाली नेताओ की सन्धि होती है (१६५०-१८८८) और साहित्य मे एक बौद्धिकता बढती जाती है। जिससे पूर्व युगो मे अभिव्यक्त सामान्य मानवीय भावनाओ पर प्रहार होता है।

१८वी शताब्दी मे जब कि इंग्लैड मे बड़े बड़े भूमिपतियो का प्रभुत्व होता है—जो भूमिपति भी है और पूँजीपति भी (Agricultural Capitalists) कविता-कला मे 'रूप' के प्रति घोर आग्रह दिखाई पड़ता है, नियम व रूढ़ियो का सफलता पूर्वक पालन करना ही कला का मापदण्ड बन जाता है। कविता में उच्च वर्ग के योग्य एक 'सुरुचि' (Good taste) का सर्वदा ध्यान रक्खा जाता है, भाषा जन समाज से दूर, दरबारी शिष्टता से बोझिल होती है, जिसका स्वर उच्चवर्ग के ही अनुकूल होता है। बुद्धि की पुकार मे 'भाव' की उपेक्षा होती है। दरबारियों द्वारा आदृत विद्वत्ता के प्रदर्शन से ओत-प्रोत काव्य जड़, दुरूह, प्रतिगामी और

संकीर्ण हो जाता है। काव्य की स्वाभाविक भाव विलासिता नष्ट हो जाती है। यह है १८ वी शताब्दी का युग, जानसन व पोप का समय।

किन्तु औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् उत्पादन के साधन तेजी से बदलते है, मशीन-शक्ति का अभ्युदय होता है। पूर्व युग (१८ वीं शदी) के नियमो का तिरस्कार प्रारम्भ होता है, बाजारो का क्षेत्र योरोप से अफ्रीका, अमरीका, एशिया के सभी देशो मे फैलता है, भूमिपतियो का पतन होता है और छोटे पूँजीपति बड़े बड़े कारखानेदारो मे परिणत होने जाते है, चरवाहो कृषको व कृषि-दासो मे से एक अच्छी सख्या 'सर्वहारा' के रूप मे कारखानो मे काम करने लगती है, अतिरिक्त उत्पादन से देश पट जाता है। अब सामन्त या निरकुश राज्य के प्रति असन्तोष भभक कर फूट पड़ता है, स्वन्तत्रता, समानता भ्रातृत्व के नारे लगाये जाते हैं, और 'निरकुश सत्ता' का अन्तिम प्रासाद फ्रान्स की राज्य क्रान्ति की लपटो मे झुलस उठता है, मध्य कालीन-नैतिकता की अवहेलना करके पूँजीवादी व्यवसाय से उत्पन्न नवीन समस्याओ से चिन्तित, चिन्तक, 'यूटोपिया' की कल्पना करता है, नये स्पप्न रचता है, प्राचीन बर्बर समाज को अच्छा बताता है क्योकि उसके सम्मुख अन्य कोई मूर्त्त रूप मे आदर्श व्यवस्था नहीं है, वह रूसो वाल्टेयर और उसके बाद गॉडविन शैले, कीट्स व बायरन का समय है जिसे रोमाँटिक काल कहा जाता है।

इस युग मे मानवता की पीड़ा, परतन्त्रता और विवशता के विरुद्ध एक तीव्र भावावेश मिलता है, किन्तु प्रयत्न-हीनता के कारण वह जैसे छटपटाहट, वेदना, टीस, और कष्ट दायक कुरेदन मे बदल जाता है, एक ओर रोमाँटिक कवि क्रान्ति का आवाहन करता है, दूसरी ओर प्रेम के उन्मुक्त गीत गाता है, प्रेम की प्रतिभा नारी को वह दिव्य स्वर्गीय बल्कि उससे भी महान सत्ता समझता

है, उसके सौन्दर्य को कौतूहल, विमुग्धता और भावावेश से देखता है, इस दृष्टि की प्रतिक्रिया स्वरूप जीवन सघर्ष से विलगाव की चाह को व्यक्त करता है, मनुष्य पर किसी भी प्रकार के बन्धन को वह असहनीय और हानि कर समझता है, अन्याय व विसादृश्य के विरुद्ध उसमे एक प्रलयङ्कर विद्रोह उत्पन्न हो जाता है, किन्तु जीवन, जगत के सम्बन्धो के प्रति उसका दृष्टिकोण घोर आदर्श वादी अत एकांगी रहता है अव्यवहारिक आदर्शवादिता का परिणाम 'एकांगिता' होता ही है और उसके परिणाम स्वरूप 'पलायन-वादी साहित्य का जन्म होता है। नियमो के विरुद्ध आवेश को यह प्रतिक्रिया बड़ी प्रचण्ड, मनोरम, और प्राय. असयत होती है, कभी कभी कलाकार सामाजिक सम्बन्धो की स्पष्ट व्याख्या न कर सकने के कारण सारे विश्व के विनाश का आवाहन करता है यथा हमारे यहाँ नवीन, भगवतीचरण वर्मा और कतिपय स्थानो पर पन्त और निराला भी ।.पहले तो मध्यकालीन रूढ़िबद्धता के विरुद्ध उठते हुये रोमाँटिक-साहित्य मे सर्वसाधारण की भाषा मे, साधारण वस्तुओ के सौन्दर्य को चित्रित किया जाता है,[1] प्रकृति की गोद मे प्रकृत जीवन बिताने और प्रकृति मे मनोरम दृश्यों को देखकर स्वाभाविक कौतूहल प्रकट किया जाता है पुन॰ मशीन युग के वैभव और तज्जनित बारीकियों के कारण साहित्य व कला मे भी स्वाभाविक उद्गारो व सवेदना के स्थान पर बारीकियाँ बढ़ती जाती है रूप पर ध्यान बढ़ता जाता है और आगे चलकर 'कला' अपना सम्बन्ध जनता से न रख कर अपने लिये ही जीवित रह जाती है,[2] वह अर्थ हीन, निरपेक्ष्य, बताई जाती है,

---

(१) वर्डसवर्थ व कालरेज का समय

(२) Art for Art's Sake तथा Survealism

यौन-भावनाओ का ऊहा-पोह भी चरम—सीमा पर पहुँचता है।

ऐसे युग मे जबकि छोटे पूँजीपति बड़े कारखानेदार हो रहे हो, मध्ययुगीन भूमिपति शक्तिहीन हो रहे हो, यह आवश्यक है कि कारखानेदारो की सफलता के लिये—अतिरिक्त उत्पादन की बिक्री के लिये नये बाजार खोजे जॉय, निरकुश सत्ता के स्थान पर पार्लामेण्टरी शासन बनाया जाय ताकि उसके नेता लोग डट कर पूँजीपतियो के निजी शोषण की रक्षा कर सके, उनके लिये फौज रक्खी जाय जो "देशभक्ति" के नाम पर साम्राज्य-वृद्धि करे, माल की खपत होती चले और इस प्रकार पूँजीपति वर्ग, सर्वहारा वर्ग को कुछ सहूलियतें देता हुआ, स्वतन्त्रता, तथा देशभक्ति के सुनहरे नाम पर शोषण का अधिकार सुरक्षित रख सके। ऐसे युग मे राजा के गीत नही गाये जा सकते, यदि कोई अवतार भी होगा तो उसकी बुद्धिगत व्याख्या करनी होगी परम स्वतन्त्र :विधि के अवतारो को अधिक मानवीय बनाया जावेगा, सारी प्राचीन परम्पराओ को तोड़ना होगा, इससे यह तो स्पष्ट है कि मनुष्य दासता से कृपक-दासता को युग मे, और कृषक-दासता के युग से पूँजवादी युग मे बराबर एक कदम आगे बढ़ता जाता है, शोषित वर्ग को सहूलियते मिलती जाती है और इन सुविधाओ की दृष्टि से पूँजीवादी व्यवस्था मे वे बर्बर युग से आगे रहते है, प्रमाण स्वरूप हम अपने देश मे प्रथम महायुद्ध के बीच विकसित पूँजीवाद के कारण भारत की उस जनता को देखें जो ब्रिटिश-सरकार के सीधे शासन मे थी और उस जनता को जो 'देशी राज्यो' में रहती थी, किन्तु फिर भी उनकी विवशता, भूख, बेकारी, अज्ञानता, अन्धकार स्वावलम्बन हीनता मे कमी नहीं आती, कृषि युग [मे तो उसके पास खेती भी थी किन्तु कारखाने का मजदूर बन कर वह Tool less अस्त्र रहित 'सर्वहारा' बन जाता है, बाजार की माँग के अनुसार उसको 'रोजी'

मिलती है, उसका जीवन पूँजीपतियो के हाथ का खिलौना हो जाता है। :अत उसमे ऐसे सगठन जन्म लेते है जो उन्हे संगठित कर के उनमे स्वतन्त्र चेतना का उदय करते है समाजवाद का यही कर्तव्य है।

फ्रांस की राज्य क्रान्ति फ्यूडल व्यवस्था को तोड़ कर 'साम्यवाद' की ओर एक क्रान्तिकारी कदम अवश्य है। इससे जनता को कुछ सुविधायें अवश्य मिल जाती है, आगे कुलीनतन्त्र Aristoctacy स्थापित हो जाता है क्योकि उस समय साम्यवाद की स्थापना असामयिक ही थी। कवि पहली बार इतने व्यापक धरातल पर मनुष्य की स्वतन्त्रता का अनुभव करता है। किन्तु उच्चवर्ग की तान.शाही तथा विषमता से पीड़ित मानवता का गायक कवि निराश होकर अपनी निजी दुनियाँ बसाता जाता है। 'प्राचीन' के अञ्चल मे उसे शरण मिलती है। प्लेटो, बर्कले, काट जैसे विज्ञान-वादियों के हवाई विचार उसे त्राण देते है, वह प्रकृति के पीछे सर्व चेतन-सत्ता का अनुभव करता है, अपना हृत्स्पन्दन सुनकर चौकता, क्षितिज के उस पार क्या है" यह जानना चाहता है. कल्पना के धौराहरो पर वह भावना के भवन खड़े करता है, उनमे निश्छल प्रेम के झूले डालकर झूलना सुमनो के कटोरो से मधुपान करता, ज्योत्सना मे नहाता, कल्पवृक्ष की छाँह मे बैठता और मधुपरियों से विहार करता है, रोमॉटिक कवि का यह ससार अत्यन्त मनोहर किन्तु परिणाम मे विषाद जनक होता है, वह स्मृति के स्थान पर विस्मृति, जागरण के स्थान पर मीठी, कभी न खुलने वाली नींद, जख्म मे 'नश्तर' के स्थान पर 'सहलाव' को अधिक पसन्द करता है। वह नियति, निराशा व निर्गुण का अञ्चल खोजता है और वह उसे मिल भी जाता है यह धीरे-धीरे कला का स्तर ऊँचा उठाता जाता है तभी इसे Literature of High Brow उच्च-भंगिमा का साहित्य कहते है। सामन्त-वादी व्यवस्था का साहित्य इतना अहवादी कभी नहीं

होता, किन्तु मशीन युग मे व्यक्ति-वाद का मूल्य बढ़ जाता है अतः "मै" कला का केन्द्र हो जाता है। प्राय काव्य इस 'मै' की अभिव्यक्ति करता है। कवि प्राय. अपने राग, विराग, मन की निराली मन स्थितियो का चित्रण करता है, उसे उसके साधारणी करण की चिन्ता कम रहती है, वह जानता है, कि वेदना है, मेरा "मै" तड़प रहा है, परन्तु क्यो ? इसका उत्तर वह कभी वेदना को ही शाश्वत बनाकर देता है और कभी नियतिवाद के माध्यम से। रोमांटिक-काव्य मे इस अहवाद की पुष्टि का प्रयत्न व्यक्तिवाद की चरम-सीमा पर पहुॅच जाने का प्रमाण है और तब कला जन सामान्य से कट कर अलग हो जाती है*

इंग्लैंड की इन चिन्ताधाराओ से भारत उसी समय से प्रभावित होता आया है, जब से उसे अॅगरेजो की दासता का 'सौभाग्य' प्राप्त हुआ, जब से उसने अंगरेजी-साहित्य का पठन पाठन प्रारम्भ किया। विचार-धारायें तो बहुत सी थीं, मिल्टन-बेकन से लेकर शापेन हावर तक, रूसो, वाल्टेयर से लेकर मार्क्स तक, जिन विभिन्न प्रतिभाओ ने विश्व को प्रभावित किया है उन सबकी विचार-लहरियो से भारतीय मस्तिष्क कुछ न कुछ प्रभावित रहा है किन्तु प्रत्येक देश की अपनी निजी परिस्थितियाॅ होती हैं, उन परिस्थितियो मे जो चिन्ताधारा सबसे अधिक अनुकूल होती है उसका विचार व प्रसार अधिक होना स्वाभाविक ही है। पूंजीवाद का विकास जिस प्रकार योरोप मे हुआ जिस प्रकार वहाँ, निरंकुश राज्यसत्ता के पश्चात् बूर्ज्वा-सरकारें कायम हुईं उस प्रकार हमारे यहाँ, उस समय नहीं हो सका, भारत विदेशी साम्राज्यवाद

*The poet becomes a 'High Brow' a man whose skill is not wanted, it becomes two much trouble for the average man to read poetry'.—काडवेल

के आधीन था अत यहाँ देशी पूँजीवाद का विकास पूर्णतया नहा हो पाया। ब्रिटिश भारत मे अपेक्षाकृत पूँजीवाद की उन्नति भी अधिक हुई और यहाँ की जनता को भी कुछ अधिक सहूलियते मिली किन्तु देशी राज्यो मे पुराना सामन्त-वाद आज तक चला आरहा है, जिन बड़े नगरो का अभ्युदय व विकास हुआ उनमे अधिकतर ब्रिटिश भारत मे ही थे, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, कानपुर आदि। दूसरे पूँजीवाद का भी विकास विदेशी-साम्राज्यवादियो ने उतना नहीं होने दिया क्योंकि देश को उन्हे बाजार बनाये रखना था, यदि औद्योगिक विकास यहाँ भी हो गया होता तो व्यापार के लिये प्रतियोगिता मे इङ्गलेण्ड को हानि पहुचती और यह साम्राज्यवादी अ गरेज क्यो चाहता ?

दूसरी ओर हमे विदेशो से लड़ना था अत "राष्ट्रीयता-वाद' का उदय अवश्यमभावी था, इंग्लैड की तरह पूँजीवादी प्रतियोगिता का सहायक होकर नहीं अपितु विदेशो के शासनभार से मुक्त होने के लिये, इसके लिये पूर्व-गौरव, सस्कृति व स्वदेशी-आन्दोलनो की आवश्यकता थी और इसका अर्थ यह था कि सभी देशी, कृषक मजदूर, जमीदार, पूँजीपतियो का एकीकरण राष्ट्रीय एकता के मञ्च पर। अत जिस प्रकार रोमाँटिक आन्दोलन के पश्चात् योरोप मे साहित्य की प्रवृत्ति जनवादी परम्परा को लेकर चली ठीक उसी प्रकार यहाँ सम्भव न थी, यहाँ उसे राष्ट्रीय, स्व-तन्त्रता के साथ साथ विकसित होना था। विदेशियो के विरुद्ध सभी वर्गों को एक साथ उठना था।

तीसरे जिस मशीन-युग के वैभव ने जो रोमाँटिक काल मे सुनहरे स्वप्न खड़े कर दिये थे वे हमारे यहाँ सम्भव न थे, फ्रान्स की राज्यक्रान्ति, शैले, बायरन, आदि कवियो के लिये स्व-तन्त्रता का प्रथम 'आह्वान' था, उसमे अद्भुत आशा व उत्साह का अनुभव करना स्वाभाविक था, जनता की नूतन हिल्लोलित

चेतना का, उसकी नवीन आशा, आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व वे कर सकते थे, नूतन शक्तियो के उत्थान को देखकर वे भविष्य के स्वप्न को अधिक मनोहर बना सकते थे, उनकी अभिव्यक्तियो मे उतना अन्धकार, कुहरा, धुआँ और वेदना का लावा, सम्भव न था जितना इस देश मे, जहाँ राजनैतिक पराधीनता, आन्दोलनो की असफलता, सामाजिक क्रूर-मान्यताओ की अप्रतिहत गति, आर्थिक पराभव का आधिपत्य, दमन व शोषण से अविरत क्रन्दन, ताण्डव नृत्य कर रहा था। हम देखेगे कि भारत मे जो राष्ट्रीय-रोमाँटिक साहित्यिक आन्दोलन चला उसमे योरोप की रोमाँटिक-चेतना भी मुखरित हुई और परिस्थितियो की असमानता के कारण राष्ट्रीय विषाद, निराशा और करुणा भी, पहले मे सामाजिक पक्ष अपेक्षा कृत प्रधान था और दूसरे मे राष्ट्रीय।

राजनैतिक परिस्थितियाँ

सन् १८५७ मे जनता के विद्रोह का दमन कर विदेशी साम्राज्यवाद ने 'विक्टोरिया' के नाम से भारत पर एकछत्र-राज्य स्थापित किया, कम्पनी-राज्य सदा के लिये समाप्त हो गया। धार्मिक व सामाजिक मान्यताओं के लिये स्वतन्त्रता 'घोषित' कर दी गई ताकि आर्थिक-शोषण मे विदेशी—चेतना कोई बाधा न पहुँचा सके। सन् १८८५ मे काँग्रेस का जन्म हुआ, जिसकी नीति समझौता-वाद रही, गोपालकृष्ण गोखले के बाद 'गरम-दल' के प्रतिनिधि 'तिलक' का प्रभाव बढ़ता गया क्रान्तिकारी दल संगठित होता गया, विस्फोट भी यत्र तत्र होते रहे, प्रथम-महायुद्ध के पूर्व तक 'तिलक' का ही प्रभाव रहा। सरकार असन्तोष को बढ़ता देखकर 'सुधार' कानून पास करती रही। जिनमे पहला १९०९ का था, उससे इतना लाभ अवश्य हुआ कि हिन्दू मुसलमानो का प्रथक निर्वाचन स्वीकार कर लिया गया और साम्प्रदायिक विद्वेष की

अग्नि प्रज्ज्वलित होती गई। १६०७-८ के विस्फोट जो यत्र-तत्र बम फेकने के रूप मे प्रकट हो रहे थे उसका परिणाम भीषण दमन के रूप मे मिला।

गोखले, तिलक, आदि के स्थान पर अब गांधी जी का नेतृत्व देश को प्राप्त हुआ, प्रथम विश्व-युद्ध मे सरकार का साथ दिया गया इस आशा से कि 'कुछ' मिल जायगा, परन्तु महायुद्ध में 'विजय' के पश्चात् पुनः १६१६ मे मॉटेग्यू चेम्सफोर्ट का सुधार एक्ट आया। आगे 'रौलट बिल का वरदान पाप्त हुआ, अहिंसात्मक नीति के प्रतिनिधि गांधी जी की अध्यक्षता मे आन्दोलन चला, दमन, जेल, यातना और लाठी चार्ज के दृश्य सम्मुख आये। जलियाँवाला के 'हत्याकाण्ड' मे 'सद्भावना' की पूर्ण आहुति हो गई, असन्तोष उग्र होता गया और सन् २६ में काँग्रेस का लक्ष्य "पूर्ण स्वतन्त्रता" होगया। अँगरेज ने आन्दोलन की दुर्बलता को समझ लिया था—अतः साम्प्रदायिक वैमनस्य का अस्त्र पकड़ कर उन्होंने Communal Award की देन दी किन्तु गांधीजी के उपवास से "पूना पैक्ट" हुआ और किसी प्रकार वह आपत्ति टली, गोलमेज परिषद्-प्रदर्शन भी चलता रहा, द्वितीय गोलमेज परिषद् मे सुधार वादी गांधी जी ने भाग तो लिया परन्तु कुछ निर्णय न हो पाया, १६३२ की तीसरी गोलमेज परिषद् मे १६३५ का "गवर्नमैण्ट आफ इण्डिया एक्ट" पास होगया और देश में सङ्घ-शासन की नींव पड़ी।

सन् १६३७ के चुनावो मे काँग्रेस को सात प्रान्तो मे विजय प्राप्त हुई जो प्रथम महायुद्ध से लेकर अब तक के आन्दोलनो के कारण इस बात की प्रतीक थी कि देश जग गया है उसे विदेशियो से घृणा है, अब जनता को दासता की अफीम से अधिक नहीं सुलाया जा सकता, किन्तु दूसरे महायुद्ध मे बिना पूछे ही देश को झौंक देने के कारण काँग्रेस ने त्याग-पत्र दे दिये तत्पश्चात सन् ४२ मे 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास हुआ और देश मे क्रान्ति की लपटे

आकाश को छूने लगीं।

१६४४ मे गांधी जी आदि नेताओ को जेल से मुक्त किया गया उधर इ गलैंड मे मजदूर दल की सरकार स्थापित होगई और १६४६ के पार्लियामेण्ट द्वारा भेजे गये दल ने 'सङ्घ-शासन सम्बन्धी' रिपोर्ट "तैयार कर पार्लीमेण्ट मे पेश की, मुस्लिम लीग की" प्रत्यक्ष कार्यवाही" से देश की साम्प्रदायिकता उग्र होती गई फलत सन् ४७ मे विभाजन के आधार पर देश को पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी गई। इस बाद साम्प्रदायिक दगे हुये, भारत ब्रिटिश कामनवेल्थ मे सम्मिलत हुआ और 'सुधारो' की परम्परा चली किन्तु दासता की चोट से उठती हुई जनता 'मुक्त' न हो सकी, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ अनवरत सङ्घर्ष के बावजूद देश मे जिस "उच्च-मध्य वर्ग" की सरकार स्थापित हुई उसने अपनी परम-प्रिय 'समझौता व सुधारवादी" नीति के कारण जनता के असन्तोष को बढ़ाने मे पूरी सहायता की और आज देश एक विषम उलझन मे फस गया है। इस पूरे चित्र को दो भागो मे भी बाँटा जा सकता है। (१) स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व का समय (२) स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद की परिस्थिति। प्रथम काल मे राजनैतिक दृष्टि से न केवल 'नरम' 'गरम' काँग्रेसी आन्दोलन चला, यद्यपि जागृति व नेतृत्व की बागडोर उन्ही के हाथो मे रही, बल्कि रूस मे बोलशेविक क्राँति के फल स्वरूप स्थापित 'साम्यवादी दल' की कार्यवाहियाँ भी भारत को प्रभावित करने लगी, भारतीय साम्यवादी दल का राजनीति मे नेतृत्व नाम मात्र का ही था क्योंकि तब 'सर्वहारा' के बल पर वर्ग संघर्ष की बात जनता न सुनती थी और विदेशियो के विरुद्ध--- अहिंसा के अस्त्र मे ही सही, लड़ने वाले गाँधी जी के साथ प्रायः सारा देश था, किन्तु विदेशी पूँजीपतियो के साथ देशी पूँजीपतियो की पूँजी ने प्रथम महायुद्ध के बाद से वृद्धि करनी आरम्भ कर दी थी और वह दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी, यद्यपि

'राष्ट्रीय आन्दोलन' के दिनो मे वर्ग संघर्ष की चेतना दबी हुई थी तथापि सन ३० के पहले से ही गाँधी जी की आलोचना प्रारम्भ हो गई थी तथा 'हृदय परिवर्तन वाद' तथा 'ट्रस्टी शिपवाद' की अव्यवहारिकता सम्मुख आने लगी थी, कोई भी सद्गुण सीमा पार कर जाने पर दुर्गुण किस प्रकार बन जाता है इसका प्रमाण गाँधीवादी अहिंसा व 'हृदय परिवर्तन वाद' है। व्यक्तिगत साधना को सामूहिक प्रयोगो के रूप मे ढाल सकने मे गाँधी जी को बार बार असफलता मिली और बार बार उन्हे सत्याग्रह आन्दोलन स्थिगित करने पड़े। क्रान्तिकारी साम्यवादी समाजवादी तथा अन्य वाम पंथियो ने स्पष्ट समझ लिया था कि उच्चमध्य वर्ग का नेतृत्व 'बूर्ज्वा' नेतृत्व होगा उससे पूँजीपति जो विदेशियो के साथ धीरे-धीरे समृद्ध हो रहे थे, और भी समृद्ध होगे जबकि देश के कृषक, मजदूर इस आर्थिक दोहन से और भी क्षीण होते जायेगे अत वर्ग सङ्घर्ष की भावना तथा आर्थिक आधार पर सोचने वाले विचारक लिखने लगे थे जिनके अनुगामी थे प्रेमचन्द्र। सन् '३६ मे प्रगतिशील लेखक सङ्घ का प्रथम सभापतित्व भी उन्होने किया था। अतः साहित्य मे निम्न जनता की दुर्दशा का चित्रण होने लगा था यद्यपि निराला जैसे कवि बहुत पहले से 'भिखारी' व "पत्थर तोड़ने वाली" मजदूर-महिला का चित्रण कर चुके थे आगे यही चेतना प्रधान होती गई क्योकि स्वतन्त्रता तो प्राप्त होगई परन्तु व शोषण आर्थिक अभाव और भी बढ़ता गया अत राष्ट्रीय साहित्य के स्थान पर शोषितो का साहित्य बढ़ गया रोमाँटिक आन्दोलन के स्थान पर यथार्थवादी 'साहित्य' का विकास हुआ, क्योकि 'सामाजिक सत्य' को उपेक्षा असम्भव थी।

हमारे साहित्य पर इन सारी विषम परिस्थियो का पूर्ण प्रभाव दिखाई पड़ता है, कुछ लेखको ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि सारा छायावादी—साहित्य देश के राजनैतिक सङ्घर्ष

से कट कर अलग हो गया और अलग-अलग ही अपना नीड़ बसा कर उसमें अपने पङ्ख फड़फड़ाता रहा किन्तु हम देखेंगे कि किस प्रकार रोमॉटिक कहे जाने वाले साहित्य में और विशेष कर यहाँ 'निराला' के 'साहित्य' पर इस राष्ट्रीय चेतना का प्रभाव पड़ा। निराला का साहित्य १६१६ से आज तक इतनी समय की लम्बाई में फैला हुआ है, उसमे पराधीन भारत का 'आक्रोश' भी है और तथाकथित स्वतन्त्रता प्राप्त के पश्चात् के घोर असन्तोष की कटु व्यञ्जना भी। उसमें प्रथम जागृति के समय सॉस्कृतिक दार्शन के आन्दोलनों की व्यापक छाप भी अङ्कित है और युग-युग से प्रपीडित, प्रवञ्चित "सर्वहारा" की भैरव हुंकार भी जो आज की विषम स्थिति का विद्रूप करती हुई चल रही है।

सामाजिक स्थिति

गांधीजी की सफलता और असफलता का कारण था 'मध्य कालीन स्वप्न', 'धार्मिक भावनाये' जिनका उन्होने सक्रिय-सामूहिक प्रयोग किया, जिनसे एक लाभ तो यह हुआ कि परम्परा से चले आये हुये जीवन के मेल मे होने के कारण तथा व्यक्तिगत-- विश्वासो और भावनाओं द्वारा ही स्वतन्त्रता-प्राप्ति की बात सुन कर, 'कमखतरा' और "अधिक लाभ" की दूरन्देशी के साथ उच्च मध्य सभी वर्ग के लोग सम्मिलित होगये, सभी प्रकार से कुचली हुई जनता सशस्त्र—क्रान्ति की बात सुनती तो थी परन्तु साहस नहीं होता था, छुटपुट विस्फोटो के बाद जो दमन होते थे उनसे जनता और भी आतंकित हो उठती थी अतः देश गाँधी की 'अहिंसावादी' नीति के साथ होगया, जिससे एक ओर तो सारे देश मे राजनैतिक एकता स्थापित हो सकी, सब एक ही मञ्च पर आकर सोच सके, एकत्र हो सके, दूसरे जनता मे आत्म-विश्वास जगा, समय के पहले 'सशस्त्र विद्रोह' कराना मूर्खता ही होती,

फिर परिस्थितियाँ विपरीत, जनता सुप्त और प्रबल विदेशी शासन। गांधी सोचते थे कि रक्तक्रान्ति मनुष्य की पाशविकता का उभार है, उसके बिना भी मानवीय उदारभावनाओ के आग्रह से 'स्वराज्य' की प्राप्ति हो सकती है, यह अवैज्ञानिक चन्तन था, यह बात दूसरी थी परन्तु समय को देखते हुये उपयुक्त ही था अत' गांधी के देन को झुठलाने वाले प्रगतिवादी विचारको को—आवेश को छोड़कर—सोचना होगा।

इस राष्ट्रीय चेतना का दूसरा क्रान्तिकारी रूप था सामाजिक सुधारों का, गाँधी जी- किसी भी प्रकार के अत्याचारो का समर्थन नहीं करते थे परन्तु उसका सामना करने के लिये जो मार्ग वे निश्चित करते है वह अवश्य 'अहिंसा' पर आधारित है अतः इस मूल प्रवृत्ति अत्याचार के विरुद्ध उठने की वृत्ति को भूल कर जब समाज शास्त्री उन पर अनुचित आक्रमण करता है कि वे तो 'क्रान्ति के शत्रु' और पूँजीपतियो के रक्षक थे तो सकीर्णतावाद अपनी चरम-सीमा पर पहुँच जाता है, समाजिक क्रान्ति का रूप था हरिजन-सुधारों का, नारी जागृति का, विधवा विवाह आदि का। मुख्य हरिजन आन्दोलन था। आज हम अन्तर्जातीय विवाह की बात करते है कि गांधी इसके लिये प्रस्तुत न थे तो इसका अर्थ यह नहीं कि गान्धी हरिजनो को कुछ सुविधा देकर सामाजिक—विप्लव को रोक रहे थे, हमे समाज व सुधार की प्रष्ठ भूमि को नहीं भूलना चाहिये—

अन्यथा दयानन्द, रामकृष्ण, परमहस, विवेकानन्द, राम मोहनराय, आदि सब क्राँति को रोकने वाले, राजाओ व सेठो के यहाँ दावतें उड़ाने वाले उपदेशको के रूप मे दृष्टिगोचर होंगे। यह भ्रान्त दृष्टि है, सामाजिक यथार्थ यह नहीं है। राष्ट्रीय चेतना जब जाग रही थी, जब ईसाईयो धर्म का का प्रचार हो रहा था, उत्तर पश्चिमी शिक्षा से युवक-वर्ग देश की भूमि से उड़कर कल्पना की

लहरियों मे उड़ रहा था, जब वर्ण-व्यवस्था से उत्पन्न घोर विषमता से आहत निम्न जातियाँ बड़े वेग से विदेशियों के धर्म मे परिवर्तित हो रही थी या हीनता का अनुभव कर रही थी, तब जो व्यक्ति प्राचीन स्वदेश-दर्शन को, समय के अनुकूल बनाकर लागू करता है, जो ब्रह्म-समाज के रूप मे वर्ण व्यवस्था को तोड़ता है, मूर्ति पूजा का परित्याग करता है, आर्यसमाज के रूप मे कर्म से जाति को मानता है, नियोग जैसी प्रथा की वकालत करता है। आत्मिक स्वतन्त्रता के लिए ही सही—देश की स्वतन्त्रता के लिए वातावरण प्रस्तुत करता है, जो सार्वभौमिक एकता—विश्व बन्धुत्व का एक ओर तथा दूसरी ओर सामाजिक अत्याचार अन्ध विश्वास के विरुद्ध खड़ा होता है, मध्यकालीन मनोवृत्ति को बदलने के लिए प्रयत्न करता है वह क्रांतिकारी होगा या प्रतिक्रियावादी ?। गाँधी ने इस सामाजिक क्राँति का कार्य राष्ट्रीय क्राँति से कम नहीं किया। किंतु खेद है कि संकीर्णतावादी 'गाँधी' को प्रतिक्रियावादी ठहराते है, गाँधी की सीमाओ व असफलताओ का निर्देश हम कर चुके हैं। उनके क्राँतिकारी पक्ष को भुलाकर उनकी सारी कार्यवाहियों को उच्चवर्ग की रक्षा का प्रयत्न सिद्ध कर संकीर्णतावादियो ने केवल सामाजिक अज्ञान का प्रदर्शन किया है। यह स्वस्थ दृष्टि नही है, सामाजिक क्राँति का उक्त रूप जो आर्य समाज, ब्रह्मसमाज तथा गाँधी जी द्वारा प्रस्तुत हुआ उसमे कई धारायें रही है।

(१) थियोसोफिकल सोसाइटी (सन् १८७५ ई० मे स्थापित)
(२) आर्य समाज (सन १८७५ ई०)
(३) रामकृष्ण मिशन
(४) ब्रह्म समाज

इन सुधारकों में प्रायः सभी की अपनी-अपनी सीमायें थीं। ये सब प्राचीन हिन्दू आदर्शों को लेकर चले थे।

रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, दयानन्द आदि में अद्भुद

आध्यात्मिक जोश व व्यक्तिगत साधन।ये प्रचलित थीं किन्तु सबसे बड़ी देन इन की यह है कि उस 'दार्शनिक विचारधारा' को इन्होंने सामाजिक उपयोगिता का चोला पहनाया। अज्ञानता, दुर्बलता, दासता, परावलम्बन, विदेशी अनुकरण, अशिक्षा, अन्ध विश्वास, के विरुद्ध वे लडते रहे किन्तु अपने ढग पर। हीनता की भावना को दूर करने के लिए इन्होंने आत्मवाद का प्रचार किया। इनका सारा प्रयत्न था—मनुष्य की महानता जगाने के लिये, उसमे दुर्दमनीय आत्म विश्वास उत्पन्नकरने के लिए, विदेशी सत्ता को तोड़ फैकने के लिए, तथा विश्वभर को एकता का पाठ पढ़ाने के लिए, वैज्ञानिक शिक्षा विदेशी यात्रा तथा पाश्चात्य विचारो के सम्पर्क मे आकर भी अपने गौरव को न भूल जाने के लिए अतीत और आदर्श की पूजा करना। अत इन देशव्यापी आन्दोलनो का प्रभाव सभी वर्गों पर पड़ा। मूलत ये आन्दोलन पुनरुत्थानवादी (Revivalist) थे, किन्तु उनका अतीत प्रेम, वर्तमान को सुधारने और विदेशी संस्कृति से प्रभावित समाज को 'सीख' के रूप मे था ताकि देशीय संस्कृति विस्मृत न हो जाय। यहाँ स्मरण रखना होगा कि 'जातीयता' राष्ट्रीयता या विश्व प्रेम मे सदा बाधक नहीं होती, जातीयता को जब देश या विश्व से अधिक महत्व मिलता है तभी वह 'फासिज्म' को जन्म देती है। इस सामाजिक जागृति का प्रभाव सभी रोमाण्टिक कवियो पर है, पर विभिन्न स्रोतों और प्रेरणाओ से। 'निराला' पर सबसे अधिक विवेकानन्द का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। निराला जी के बचपन मे बगाल मे रामकृष्ण मिशन का अद्भुत प्रभाव था। पन्त पर भी स्वामी रामतीर्थ व विवेकानन्द के दर्शन का अप्रतिम प्रभाव पड़ा है। निराला जी दार्शनिक दृष्टि से विश्वात्मवादी है—एक ही चेतना के स्पर्श से सारे विश्व को पुलकित देखने वाले। यह विवेकानन्द का ही प्रभाव है। विवेकानन्द जी ने अपने 'वेदाँत

व भक्ति' की व्यवहारिकता पर शक्ति व गौरव पर बड़ा जोर दिया है 'निराला' मे—उस आत्मवाद के कारण ही इतना अमित 'अह' तथा पौरुष का आह्वान मिलता है ऐसा व्यक्तित्व सामाजिक उत्पीड़न व अन्याय के विरुद्ध चुप रह ही नहीं सकता।

दूसरी ओर से देखिये—समाज के पिछड़ेपन उसकी अज्ञानता, आत्मसम्मोह, विदेशी संस्कृति, सभ्यता के अनुकरण की तृष्णा मे अपने 'स्व' के विस्मरण, सामाजिक रूढ़ियो के अन्धानुसरण के विरुद्ध जो पुनरुत्थान वादी उक्त आन्दोलन चले उन्होंने सामाजिक समस्याओं के हल के लिये प्राचीन-युग को देखा, जो "भूतियो का दिगन्त-छवि जाल" था। किन्तु समाज का वह वर्ग जो नवीन शिक्षा के सम्पर्क मे आ चुका था, जिसने कालेज के कमरे मे वर्डसवर्थ, कालरेज शेले, कीट्स व बायरन के साथ रोमाँटिक ससार मे मानसिक भ्रमण किया था, जिन्होंने प्लोटेनिक, तथा न्यू प्लोटिनिक छन्तन-धाराओ के अनुसार 'दिव्य प्रेम' से एक ओर तथा 'वर्कले और कॉट' के—शरीर विज्ञानवादी विचारो के अनुसार चाक्षुप जगत को मानसिक जगत का प्रतिबिम्ब समझ कर, उससे प्रभावित रोमाँटिक कवियो की आध्यात्मिक उड़ान के दर्शन किये थे, जिन्होंने एक ओर तो रीतिकाल की प्रतिक्रिया मे उठ खड़ी हुई वाह्य नैतिकता, चारित्रिक दृढ़ता के लिये वृद्ध-जगत द्वारा ऋषि-मन्त्रो के उद्धरणों से लदे उपदेश सुने थे, और दूसरी ओर उन्मुक्त—प्रेम की स्थूल—माँसल प्यास का कालेज के मुक्त वातावरण मे कीटस व शेले की कविताओ के साथ अनुभव किया था, उस समय घर अनुशासन सिखाने का यातना-गृह था, जहाँ मान्यताओ की बेड़ियाँ युवको के पैरो मे पड़ी थीं और युवक चाहता था उन मान्यताओं आ तिरस्कार कर प्रेम करना—स्वच्छन्द होकर प्रेम करना, किन्तु पारिवारिक—वंशानुगत पवित्रता के नियमो को तोड़ना सहसा असम्भव था, अतः

इस युवक वर्ग ने तथा इनके साथ उन युवको ने भी जिन्होंने कालेज के बाहर रहकर भी 'बॅगला' के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की कवितायें पढ़ ली थी (यथा-प्रसाद) एक ओर तो पुरानी मान्यताओ से विद्रोह घोषित किया, दूसरी ओर प्रेम के उन्मुक्त गीत गाये निस्संकोच और निर्भय होकर। बुड्भस—पवित्रता वादी पत्रो ने ऐसे गीत व कविताओ को न छाप कर अपना जोश दिखाया था, "जुही की कली' की घटना प्राय सभी जानते है कि किस प्रकार 'सरस्वती' मे वह नही छापी गई थी, छन्द—की स्वतन्त्रता और भावनाओ की स्वतन्त्रता के कारण।

निराला, प्रसाद, पन्त, महादेवी आदि कवियो की मानसिक स्थिति तात्कालीन समाज के अनुशासन का बराबर विरोध करती रही। ये कवि प्रकृति से ही स्वच्छन्दता प्रिय, कल्पना शील, प्रेम व विलास (विलास बुरे अर्थों मे नहीं) के प्रेमी थे। किन्तु जहाँ रीति काल का कवि समाज के अध.पतन से नारी की शरीर यष्टि के लेहन मे ही सब कुछ समझता था वहाँ इन कवियो मे नारी, सौन्दर्य, पवित्रता, कौतूहल, विस्मय और विमुग्ध-भावुकता का प्रतीक बन कर आई। हरी हरी लतानि मे 'हरी' को खोजने वाली, रति-पुत्तलिका रीति काल की 'मानवी' इस युग मे 'देवि, माँ, सहचरि-प्राण बन गई।* दोनो युगो की सामाजिक दशा मे अन्तर होने के कारण भावनाओ का यह अन्तर भी स्वाभाविक था। 'निराला'-ने 'विधवा' व 'मजदूरिन' मे उसी दिव्य नारीत्व के दर्शन किए जबकि 'जुही की कली' मे 'गोरे गोरे गालो के मसलने' आदि की परम्परा भी निभाई और 'सध्यासुन्दरी' मे विश्वव्यापी सौन्दर्य चेतना के दर्शन भी नारी के सौन्दर्य मे किय। आगे चलकर तो भारतीय आत्मवादी दर्शन ने तथा योरोपीय शरीर विज्ञानवादी

---

* Spouse, Sister, Angel, pilot of the fate. —Shelley

दर्शनों के कारण 'ब्रह्म' का विश्व-प्रिया या प्रियतम के रूप में वर्णन होने लगा, लौकिक प्रेम व अलौकिक प्रेम की एक मात्र लुका छिपी प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी के काव्य मे चलने लगी। इसी का परिणाम यह हुआ कि कवि एकांगी होता गया, लौकिक असफलता, निराशा, आध्यात्मिक पीड़ा व शाश्वत विरह वेदना के रूप में प्रकट होने लगी, विशेष कर पन्त, प्रसाद व महादेवी मे किन्तु निराला पर वेदना का भार कम रहा उनका स्वर अलौकिक से लौकिक होता ही गया और विषण्णता—वक्रभेदी व्यंग्यों के रूप मे बदलती गई, आध्यात्मिक विरह के स्थान पर उनमें आत्मा की ब्रह्म से मिलन-अवस्था के चित्र अधिक मिलने लगे जिसे दार्शनिक भाषायें आत्म-क्रीड़ा या 'दिव्य-रति' कहिये या समाज शास्त्रीय भाषा मे यथार्थ से पलायन। आप यहाँ देखें कि द्विवेदी युग १८६५ से १९१६ और २० तक रहा उसमें 'उपदेश वाद' अधिक रहा, "जय—जानकी जीवन कर" वे हमें "शिक्षा-तरगो" मे बहाते रहे, 'नारी' के प्रति उनका दृष्टि कोण रोमाँटिक न होकर आदर्श वादी था, 'सती और साध्वी' का स्थान देकर इन कवियो ने नारी के अशरीरी, अनुपम—अलौकिक सौन्दर्य का अनुभव नहीं किया था जो नये कवियो को योरोप के रोमाँटिक कवियो ने दिया था। कारण यह था कि रीतिकाल की शृंगारिक मनोवृत्ति के विरुद्ध प्रतिक्रिया चल रही थी अत. 'प्रेम सम्बन्धी रोमांटिक भावुकता का उस समय आदर असम्भव था। रोमांटिक कवियो मे लौकिक-प्रेम भी अलौकिक प्रेम के साथ साथ चला फलत उसमे स्थूलता के स्थान पर तरलता, दिव्यता, कल्पना शीलता, विस्मय प्रियता आती गई सामान्य वस्तु मे भी अनुपम सौन्दर्य देखना तो इन कवियों के सौन्दर्य—बोध की प्रथम शपथ ही थी अत. इनके भावना व कल्पना से उच्छ्वसित गीत अधिक मोहक रहे, विश्वविद्यालयो में होरहा था, विशेष कर इनका प्रचार हुआ जहाँ इसी प्रकार का युवक-

वर्ग तैयार हो रहा था बँगला के अध्ययन से प्रभावित होकर गुप्त जी, मुकटधर पांडेय आदि ने जो आध्यात्मिक जिज्ञासा या प्रेम सम्बन्धी कवितायें लिखीं उनमे पद्धति का अनुकरण मात्र था, पन्त, प्रसाद निराला मे कल्पना शीलता स्वभावगत थी, उनका चिन्तन अधिक व्यापक- विस्तृत और स्वच्छन्द था । अतः मनोवृत्ति भी उसी प्रकार की बन जाने के कारण उनकी कविताओ मे 'प्रेम' (लौकिक और अलौकिक) अधिक मोहक होकर आया, साथ ही छन्द, शैली आदि की क्रान्ति भी इन्हे आगे ले गई। इस नूतन सौन्दर्य—बोध को समझने के लिये जो क्षेत्र था वह सकुचित था, केवल विश्वविद्यालयो का छात्र वर्ग इन्हे समझ सकता था। अतः इनके प्रति पुरानी पीढ़ी के लोगो का असन्तोष स्वाभाविक ही था, बड़ा विरोध हुआ परन्तु अपेक्षाकृत रोमाण्टिक कला की अधिक स्वच्छन्द, मनोरस, सूक्ष्म, कल्पना प्रिय तथा विशेष आकर्षक, लाक्षणिक शैली मे अभिव्यक्ति होने के कारण उसके प्रति आकर्षण बढ़ता गया, पुराने कवियो मे से कुछ तो परम्परा को बदल ही नही पाये यथा—लोचन प्रसाद पाँडेय, हरिऔध आदि। हरिऔध की क्रांति थी—अवतारो की बौद्धिक व्याख्या मे, जो नूतन बौद्धिकता के अनुकूल थी तथा सस्कृत के छन्दो मे आजमाइश करने की, जो आगे स्वीकृत न हो सकी। कुछ ने अपने को बदलने का प्रयत्न किया किन्तु पहले कहा जा चुका है कि दृष्टिकोण प्राचीनतावादी होने के कारण, मात्र शैली का समावेश ही यत्र-तत्र वे कर पाये यथा मैथिलीशरण गुप्त। साकेत, यशोधरा व झकार मे गुप्त जी ने छायावादी कला के पथ पर चलना चाहा पर वे सफल नहीं हो सके, जहाँ-तहाँ लाक्षणिक प्रयोग अवश्य नवीन है। वेदना-प्रियता व रहस्य के प्रति सकेत भी किए गए है पर श्रद्धालु कवि के पास वह रोमाण्टिक स्पर्श कहाँ जो सौन्दर्य के ऊपर रहस्य का एक झीना नीला पर्दा डाल कर उसे लाक्षणिक भगिमा के साथ प्रस्तुत कर सके। अत गुप्त जी को रोमाण्टिक काव्य के प्रेमी कभी

कभी 'कवि' तक मानने को प्रस्तुत नहीं होते जो उनकी एकाँगिता ही है। जाति-गङ्गा में डुबकी लगा कर 'हरगङ्गा' कहने वाली गुप्त जी की कला-उपयोगितावाद के क्रम में बहती रही है जबकि रोमाण्टिक-काव्य विश्व-चेतना वाद को लेकर चला जो सौन्दर्य, मात्र सौन्दर्य पर आधारित रहा और आगे चल कर मोहकता के आवेश मे पूर्णतया अलौकिक बनता गया। गुप्त जी में श्रद्धा, साधुता, पारिवारिक-शिष्टता व स्थूलता अधिक है, सौन्दर्य की तरलता कल्पना की मोहकता तथा अभिव्यञ्जना की वक्रता उतनी नहीं। कारण है छायावादी कवियो का समाज, नारी, ईश्वर, जीव और जगत के सम्बन्ध मे दृष्टिकोण। दृष्टिकोण और शैली की नवीनता दोनो ने छायावाद को छायावाद बनाया, उसमे दिव्य सत्ता के दिव्य-प्रेम ने सौन्दर्य भरा न कि मात्र शैली की विलक्षणता ने, छायावाद को मात्र शैली समझने वालो की यह बात समझ मे नही आती। 'वेदना व करुणा' की यत्र-तत्र वकालत कर देने पर भी छायावादी शैली का अनुकरण करने पर भी वे क्यो छायावादी न हो पाये इसका एक मात्र उत्तर द्विवेदी युगीन कवियो के दृष्टिकोण की प्राचीनता थी। छायावादी अन्तमु खी-प्रवृत्ति व स्वछन्दता, द्विवेदी युगीन सुधारवाद-आचार व उपदेशवाद से अधिक प्रगतिशील इसीलिये थी और तथा कथित 'प्रगतिवाद' की दृष्टि से इसलिये प्रतिगामी थी क्योकि वह आध्यात्मिक अलौकिक आधार पर बहती रही उसमे 'सामान्य' के स्थान पर "असाधारणता".आती गई, यही 'असाधारणता' उसकी कला को शुद्ध यथार्थ भूमि से खींच कर एक आध्यात्मिक पर्दे पर खीच ले गई, उसे कल्पना के रगीन अस्फुट चित्रो मे बदल दिया। भीति (Canvas) के 'शून्य' बन जाने पर चित्रो मे सप्राणता न रही और साथ ही खिन्नता, वेदना व व्यक्तिगत निराली मानसिक स्थितियो व असगतियो के प्रलाप से यह छायावादी काव्य-साहित्य जनता से दूर, कल्पना—नीड़ का पक्षी बनता गया आगे उसमे नश्वरता, पलायन, उच्छ्वास, आँसू और आह-कराह का

इतना आधिक्य हो गया कि वह 'मैं' के विवेचन मे ही लग गया व्यक्तिवाद की चरम सीमा को अतिक्रमण कर जाने के कारण उसके प्रति विद्रोह स्वाभाविक था जिसे 'प्रगतिवाद' के रूप मे हम आज देख रहे है।

साहित्यिक वातावरण—(१८९५ ई० से लेकर १९१८ तक)

भारतेन्दु युग मे काव्य की भाषा 'ब्रजभाषा' और गद्य की भाषा खड़ी बोली रही, यद्यपि खड़ी बोली मे कविता के प्रयोग चलते रहे। राष्ट्रीय चेतना के फैलने पर विचारको ने समृद्ध सस्कृत-साहित्य को टटोला और योरोपीय काव्य की ओर भी दृष्टि-निक्षेप किया। संस्कृत-साहित्य मे कालिदास और श्रीहर्ष का गुणगान विशेष रूप से किया गया। ठाकुर जगमोहनसिंह पहले कवि थे जिन्होने सस्कृत प्रणाली पर चलना चाहा, विशेष कर प्राकृतिक वर्णन की प्रणाली पर ठाकुर साहब मे सूक्ष्म-प्रकृति निरीक्षण एक ओर तथा प्रकृति को देखकर स्वाभाविक उल्लास का वर्णन दूसरी ओर प्रारम्भ हुआ। प्रकृति का अपना रूप ही वे प्रस्तुत करना चाहते थे, उसे अपनी भावनाओ से रङ्ग कर नही। पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने इधर सकेत किया है। शुक्ल जी के अनुसार यह 'खेद की बात' रही कि कवियो ने अपने देश की प्राचीन प्रकृति-वर्णन की पद्धति पर न चल कर, प्रकृति को अपनी भावनाओ से रङ्ग कर वर्णन करने की प्रणाली का अनुसरण किया किन्तु इसमे खेद की बात कुछ थी नही, क्योकि उस युग की मानसिक-स्थिति इस प्रकार तटस्थ रहकर प्रकृति का तटस्थ चित्रण कर ही नहीं सकती थी। क्योकि प्रकृति-वर्णन के बहाने कवि को अपने व्यक्तिगत राग-विराग की अभिव्यक्ति को अवसर प्राप्त होता था, अत ठाकुर जगमोहन सिंह या अन्य किसी की पद्धति का अनुकरण न हो सका और प्रकृति-वर्णन की वे प्रणालियाँ हमारे यहाँ प्रचलित हुईं जो योरोपीय

रोमॉटिक कवियो ने परिष्कृत की थी। यह कोरा अनुकरण नहीं, समय की मॉग थी, विकास का क्रम था, सामन्ती-आचार—उपदेश प्रधान कविता के बाद "व्यक्तिवादी" 'स्व' की अभिव्यक्ति स्वाभाविक ही थी।

किन्तु 'छायावादी' 'आक्रमण' एक साथ नहीं हुआ। भारतेन्दु युग के पश्चात् प० श्रीधर पाठक सर्व-प्रथम योरोपीय स्वछन्दता-वाद को हमारे सम्मुख लाये। योरोप मे भी बर्न्स व कौपर (Cowpor) ने यही कार्य वर्डसवर्थ, शैले, कीट्स, और बायरन के पूर्व किया था, ऋतु वर्णन के समानान्तर सामान्य वस्तुओं का वर्णन भी काव्य मे होने लगा, पाठक जी ने सङ्गीत के आधार पर नवीन छन्दो का भी विधान किया और "स्वर्गीय-वीणा मे "दिव्य-सङ्गीत की ओर रहस्यपूर्ण सकेत" भी किये जो आगे छायावाद मे बहुत प्रचलित रहे।

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने नेतृत्व काल मे सस्कृत वृत्तो का प्रचलन कराया, सस्कृत-शब्द-सौष्ठव का प्रभाव व प्रचार बढ़ा, भाषा मे अनगढ़पन आता गया, दूसरी ओर 'वर्डसवर्थ' की "सामान्य-जन की भाषा" (The language of layman) के सिद्धान्त की घोषणा होती रही परिणामतः नीरस—पद्यो का निर्माण होता रहा। सुधारवादी प्रवृत्ति इन दिनो चरम सीमा पर थी। श्रीधर पाठक पर भी इसका प्रभाव था अत. 'विधवाओं की वेदना,' शिक्षा-प्रचार आदि पर वे भी लिखते रहे। द्विवेदी युग के कवियो मे प० श्रीधर पाठक की प्रतिभा अधिक व्यापक थी अत. उनके प्रयोग संस्कृत-प्रणाली के आधार पर न चल कर स्वतन्त्र मार्ग पर चलते रहे उन्होने छन्द-विधान, वाक्य विन्यास, कविता के वर्ण्य-विषय-शब्द-परिष्कार आदि सबमे अपनी मौलिकता का परिचय दिया, परन्तु यह प्रयोग-कालीन स्वछन्दता थी क्योकि श्रीधर पाठक का कवित्व ब्रजभाषा मे लिखित 'काश्मीर सुषमा' में है, न कि "ऊजड़ ग्राम" "एकान्त वासी योगी" या नवीन प्रयोग कालीन कविताओं

ने। अब हम उन्हें "स्वच्छन्दतावाद की ओर उन्मुख" तो मान सकते है किन्तु शुक्ल जी के अनुसार उसका प्रवर्तक नही क्योकि स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तन आगे 'निराला' व 'प्रसाद' ने किया।

द्विवेदी युग के दूसरे बड़े कवियो मे गुप्त बन्धु, स्वय द्विवेदी जी, हरिऔध, सनेही जी, रामचरित उपाध्याय, लोचन प्रसाद पांडेय, नाथूराम शङ्कर शर्मा, रूपनरायण पांडेय आदि है। हरिऔध का साहित्य विविध प्रयोगो के लिये प्रसिद्ध है, भाषा के विभिन्न स्तर उन्होने प्रस्तुत किये है, प्रौढ़ से प्रौढ़ और सरल से सरल। काव्य का मुख्य भाग सस्कृत की प्रणाली पर आधारित है, प्रकृति वर्णन की विपुलता के साथ-साथ उनमे प्रकृति का यथातथ्य चित्रण अधिक पाया जाता है। रोमाँटिक रङ्गीनी-प्रधान चित्रण नही। वर्णनात्मकता प्रायः द्विवेदी युग के कवियो का सामान्य गुण है।

द्विवेदी जी पर मराठी प्रभाव अधिक था, मराठी भाषा अपने शब्द-सौष्ठव के लिये प्रसिद्ध है। अत समास-प्रधान शैली मे द्विवेदी जी की कवितायें नीरस—पद्य मात्र रह गई है उनमे न उक्ति का वैचित्र्य है, न कल्पना का मधु विहार, वे "मांगल्य—मूल मय वारिद बारि-वृष्टि' जैसे पद-विन्यास मे ही लगे रहे। काव्य-विषयो की दृष्टि से तथा रीतिकाल के साथ रखकर उनकी क्रान्ति-कारिता की प्रशसा अवश्य होनी चाहिये परन्तु वे इतिवृत्तात्मक काव्य ही दे सके, जो प्रभाव हीन और पर्याप्त नीरस रहा।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के शिष्य गुप्त जी अपने गुरु के नेतृत्व मे चले, उन्होंने कथा के सूत्रो पर पहले से ही काव्य लिखे है, जिनमे नाटकीयता, वाक्चातुर्य (श्री हर्ष जैसा) नूतन छन्द-विधान बराबर मिलता है, राष्ट्रीयता जातीयता के तत्वो के मिश्रण से वे राष्ट्रीय—कवि माने जाने लगे किन्तु उनकी कला मे भी द्विवेदी युगीन वर्णनात्मकता (Matter of factness) बहुत मिलती है। १६२०-२२ के पश्चात् उनकी शैली पर छायावादी गीति-पद्धति का प्रभाव भी अधिक पड़ा है किन्तु

इसके पहले उनके 'पद्य' अपने समय के अन्य कवियो की तरह उपदेश प्रधान होते रहे, खण्ड काव्यो मे 'कथा' का आकर्षण भी उन्हे मर्म-प्रियता दिलाने मे सहायक रहा। भाषा मे ओज व प्रवाह तो रहा किन्तु परिष्कृति व कोमल कान्त—पदावली का अभाव रहा।

नाथूराम शङ्कर 'शर्मा', सनेही जी आदि मे सुधारवाद स्थूल रूप मे व्यक्त होता रहा, इनमे कला का स्पर्श कम, प्रचार अधिक रहा।

१९'८ तक की कविताओ मे काव्य के विषय, द्विवेदी'जी की प्रेरणा से नवीन होते रहे, अविरल सृष्टि मे चींटी से पर्यन्त हाथी तक सब पर लिखा गया, यह बात दूसरी है कि वह कविता हुई या पद्य। राष्ट्रीय कवितायें ओज व उत्साह से पूर्ण, अत. प्रभाव शाली अवश्य हुई जिन्होने राष्ट्रीय आन्दोलनो मे अथक सहयोग दिया। प्रकृति वर्णन मे या तो फोटोग्राफिक चित्रण आये या प्रकृति के दर्शन से उद्भूत प्रसन्नता की अभिव्यक्ति हुई। प्रकृति को देख कर, अनेकानेक रहस्यो का उद्घाटन, सग्रह तथा दृश्यो का रङ्गीन चित्रण न हुआ जो सवेदना के रग से कल्पना की कूॅची से तैयार किया जाता है अत द्विवेदी युग ने नवीन-विषयो की ओर हमारा ध्यान अवश्य खींचा, रीति—कालीन रूढ़ियो से निकाला, भाषा की शुद्धता, आचार की शुद्धता के साथ प्रस्तुत की गई किन्तु इस युग की कला उपदेश व उपयोगिता के जोश मे वर्णनात्मक, 'वाह्यार्थ—निरूपक' 'गद्यवत' विवरण प्रधान कल्पना व सवेदना से रहित, अत नीरस होगई।

यद्यपि बॅगला के सम्पर्क से गुप्त जी व मुकटधर पांडेय आदि ने प्रकृति वर्णन द्वारा 'रहस्यमय सत्ता' की ओर मधुर सकेत किये थे पर वे सकेत मात्र थे, उनके काव्य का स्वर आज तक दूसरा ही रहा, जहॉ-जहाँ उन्होने इस प्रकार का प्रयत्न किया वहॉ असफलता ही मिली यथा झकार के गीतो मे, अत: उक्त कवियो को हम नूतन—स्वच्छन्दतावादी युग का प्रवर्तक नहीं कह सकते। गुप्त

जी का कुछ स्वभाव ही है कि वे प्रत्येक प्रचलित शैली मे लिखना चाहते हैं।

नूतन युग का प्रवर्तन 'प्रसाद' व 'निराला' से होता है। प्रसाद, द्विवेदी मण्डल के सदैव बाहर रहे, उन्होने 'इन्दु' नामक मासिक पत्रिका अलग से प्रकाशित की और 'रवीन्द्र' को कविताओं से प्रेरणा लेते रहे। अपनी स्वानुभूति के बल पर, तथा प्राचीन अद्वैतवादी दर्शन के आधार पर उन्होने अपने वेदना-परक काव्य का ताना-बाना बुना जो द्विवेदी युग की १६१८ के पहले की प्रचलित धारा से उन्हे अलग कर देता है। 'प्रसाद' मौलिक चिन्तक थे उन्होने सुधारवादी इति-वृत्तात्मक काव्य के विरुद्ध 'स्वानुभूति-परक' काव्य की नींव डाली और अपनी प्रबल सवेदना: से रग कर प्रकृति का वर्णन प्रारम्भ किया। सन् १६१३ से रवीन्द्र की 'गीतांजलि' की धूम सारे सभ्य विश्व मे मच चुकी थी अत जो 'सांस्कृतिक देन' रवीन्द्र ने विश्व को दी उसका मुख्य आधार था 'सर्ववाद'— एक ही प्राण सत्ता का यह विश्व विकास है। भेद, भ्रान्त-दृष्टि का परिणाम है, यहाँ तो अनेकता मे एकता ही दृष्टिगोचर हो रही है, इस अभेद-दृष्टि के पीछे हमारे देश की मिट्टी से उत्पन्न हुआ, प्राचीन उपनिषदो का दर्शन था जिसमे वैष्णवो की भक्ति साधना, कबीर का रहस्य मिल गया था और इस प्रकार वह विश्व व्याप्त, चैतन्य, 'प्रियतम' के रूप मे काव्य-साधना का वर्ण्य बना जिसमे आत्मा की विरह, मिलन, तड़प, पुलक, आनन्द, अभिसार की भावनायें अभिव्यक्ति हुईं। अखिल व्यक्त प्रकृति-सत्ता के बीच उसी एक चैतन्य शक्ति के स्पर्श का अनुभव कर मानवीय आत्मा संगीत सौन्दर्य की सुरा से स्नात होकर दिव्य आनन्द का अनुभव करने लगती है, इन सूक्ष्म 'निराली' अनुभूतियो को रवीन्द्र के साहित्य मे अभिव्यक्ति मिली, कला को सगीत के स्वर मिले, प्राचीन विवरणात्मकता के स्थान पर मुक्तको की रस-धारा बह उठी, सुधारो के स्थान पर आत्म-पुलक, आत्मानुभूति का वर्णन

होने लगा। 'दिव्यसत्ता' के प्रेम से पागल आत्मा-प्रेमसी की मधुर भावनाओं को स्वच्छन्द वाणी दी गई, एक अत्यन्त उदात्त, काल्पनिक मानसिक वातावरण में काव्य लिखा गया, जिसमें 'आत्म-वेदना' को विस्तार अधिक मिला। काव्य का 'ध्येय 'उपयोगिता' न मान कर रवीन्द्र ने 'मङ्गल' माना था।

रवीन्द्र का काव्य भी राष्ट्रीय चेतना का वाहक माना जाना चाहिये, यद्यपि उनका दर्शन योरोप व भारत की विचारधाराओं का मिश्रित रूप लेकर चला है। फिर भी योरोप से प्रभावित रहकर भी उनके काव्य का वातावरण भारतीय ही रहा यद्यपि कुछ कविताओं में घोर एकांगिता, रहस्यमयता व निराली अनुभूतियों की विलक्षण शैली में अभिव्यक्ति मिलती है। संगीत, मधुरिमा, कोमलता, रहस्यमयता तथा शैली की विलक्षणता ने उनके काव्य को राष्ट्रीय से अधिक रोमॉटिक (आध्यात्मिक) बना दिया है।

निराला जी उसी बंग भूमि पर रह रहे थे, वे आज तक रवीन्द्र के बड़े प्रशंसक हैं, यह असम्भव था कि उन पर 'रवीन्द्र' के इस काव्य का प्रभाव न पड़ता, ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन आदि द्वारा "पुनर्जागृति" का युग, प्राचीन भारतीय "अद्वैत दर्शन" का प्रसार कर रहा था, आत्मा की अखण्डता, महानता, सर्व व्यापकता तथा एकता के उपदेश द्वारा राष्ट्रीय जीवन में स्वाभिमान की शक्ति फूँकी जा रही थी, अत यह 'अद्वैत-दर्शन' किसी न किसी रूप में सभी छायावादी कवियों में सुलभ हो जाता है। क्योंकि 'रवीन्द्र' ने शैले Shelley के जिस 'दर्शन को पढ़ा था उसमें भी प्लेटो का सर्वात्म-वाद भरा पड़ा था, शैले का प्रेम भी अलौकिक 'Unearthly' था, अतः यह सर्वात्मवादी विचारधारा रवीन्द्र निराला-प्रसाद-पन्त सभी में दिखाई पड़ती है।

इन कवियों की रहस्य प्रियता का मुख्य कारण उनके द्वारा ब्राह्मदर्शन था, दर्शन के क्षेत्र में यदि भारत की कुछ भी देन है

तो उसमे एक महत्वपूर्ण भाग इसी अभेदवादी दर्शन का भी है ऋग्वेद के दशम मण्डल के कुछ मन्त्रों से प्रारम्भ होकर, उपनिषदो मे पूर्ण विकसित होकर आगे के सारे दर्शनो के लिये यह प्रेरणा स्रोत बनता है। उसकी व्याख्याये विविध और परस्पर विरोधी भी हो सकती है और होती रही है तथापि इस प्रपच मे मूल चेतना की खोज कर, जीवात्मा को भी वही या उसी का अश सिद्ध करना भारत का ही कार्य है, तो इसी 'अनेकता मे एकता' के सिद्धान्त को विभिन्न रूपो मे लिया जाता रहा। यह तो रही मूल सत्ता की बात। अब इस सत्ता के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रश्न दूसरा था। ईसाइयो व सूफियो ने "पति पत्नी" का सम्बन्ध स्थापित करके कवित्व पूर्ण भाषा मे सन्त अपनी भावनाओ को अभिव्यक्त करते आये थे। रामकृष्ण मिशन मे स्वय परमहंस उस परा-शक्ति को, उस चैतन्य को, जननी के रूप मे मानते थे, स्वा० विवेकानन्दजी ने भी भक्ति व वेदान्त मे विरोध नही बताया, प्रत्युत वेदो, उपनिषदो के परस्पर-विरोधी वाक्यो मे एकता खोज कर किसी भी शक्ति के रूप का उनके अनुसार, अपनी भावनाओं का समर्पण किया जा सकता था। सिद्धो व कबीर आदि संतो की परम्परा सम्मुख थी ही, सिद्ध साहित्य विदेशी नही है, न उसे 'सूफी' साहित्य ही सिद्ध किया जा सकता है अत रवीन्द्र ने 'सिद्धो व कबीर के ही अनुसार उस चिरन्तन सत्ता को प्रियतम और 'आत्मा' को पत्नी के रूप मे लिया और निराला, पन्त आदि कवियो मे भी यही परम्परा चली, अत आत्मा के मिलन विरह के काव्यो को "मात्र काम वासना" का काव्य कह कर उसे विदेशी बताकर शुक्ल जी तक ने टालने का प्रयत्न किया था।

हमारे यहाँ उस व्यापक सत्ता के साथ विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध पहले से ही चले आरहे है, 'मीरा मे भी यही पति-पत्नी का सम्बन्ध था, और इन्ही मधुर मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति से मीरा का काव्य इतना प्रभावशाली हो सका।

महादेवी की चाहे जितनी एकांगिता की निन्दा क्यो न की जाये परन्तु मिलन व विरह की अनुभूति मानवीय होने के कारण वह हृदय पर प्रभाव अवश्य डालती है, इसी प्रकार रवीन्द्र, निराला, प्रसाद व पन्त के विषय मे भी कहा जा सकता है, परन्तु एक बात विस्मरण न करना चाहिये कि जहाँ कवि ऐसी अनुभूतियो का चित्रण करता है जो जन सामान्य के अनुभव क्षेत्र से बाहर की होती है जहाँ अनुमान से भी व्यक्ति उन्हे नही सोच सकता तो वह काव्य प्रतिक्रियावादी अवश्य हो जाता है, सभी रोमाँटिक कवियों मे ऐसी कवितायें एक अच्छी सख्या में मिल ही जाती है। प० रामचन्द्र शुक्ल ने एक और बात बतलाई है कि अज्ञेय को अज्ञेय ही रख कर हमारे यहाँ काम-वासना के शब्दो मे काव्य कभी नहीं लिखा गया किन्तु प्रश्न यह है कि रहस्य-मय काव्यो मे वासना की अभिव्यक्ति हुई है या नहीं मीरा व गोपी दोनो अपने प्रेम-भावनाओ की अभिव्यक्ति करती हैं चाहे कृष्ण मीरा के लिये निर्गुण हों या गोपी के लिये सगुण, कोई अन्तर नहीं पड़ता देखना यह है कि जो बात कही जा रही है वह विचित्र और अस्वाभाविक तो नहीं है।

अभेदवादी-आत्मवादी व्यक्ति जब आत्मा के विरह, मिलन का वर्णन पढ़ता है तो विभोर हो उठता है अनात्मवादी भी मीरा और महादेवी की कविताओ को पढ़कर बिना प्रभावित हुये नहीं रहता, क्यो ? क्योंकि वहाँ मानवीय, भावनाओ, करुणा विरह और प्रेम को वाणी मिलती है, अध्यात्मवादी कवियो ने जिस मानसिक स्थिति मे ऐसा काव्य लिखा है उसमे उनकी अनुभूति तीव्र अवश्य हुई है अन्यथा उसमे प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति आ ही नहीं सकती। अत यह कहना भ्रान्त है कि "अज्ञात या अज्ञेय' के प्रति जो आत्मा का 'विरह का मिलन' इन कविताओ द्वारा वर्णित हुआ है वह अभारतीय, स्त्रैण, कृत्रिम और प्रभाव रहित है।

हाँ तो उक्त रहस्यमय धारा का प्रभाव निराला जी पर प्रारम्भ से ही पड़ा। उधर रवीन्द्र अपनी रहस्यात्मक अनुभूतियों को संगीत-मय मधुर कोमल काँत-पदावली प्रस्तुत कर रहे थे तब हमारे यहाँ गुप्तजी के पद्य बद्ध कथायें, सनेही व नाथूरामजी के सवैये, हरिऔध के संस्कृत के वर्णवृत्त, लिखे जा रहे थे, राष्ट्रीय प्रेम, सामाजिक रूढ़ि-ध्वंस को लेकर इतिवृत्तात्मक पद्यों का ढेर लग रहा था, प्रकृति दृश्यों के फोटो उतारे जा रहे थे, काव्य का अस्तित्व छन्दों के बन्धन के बिना कल्पना में भी नहीं आ सकता था, उसके लिये या तो हिन्दी के छन्द आवश्यक थे या संस्कृत के।

निराला जी ने प्रसिद्ध "जुही की कली द्वारा" (१९१६ ई०) द्विवेदी युग की सभी पद्धतियों के प्रति विद्रोह किया अतः यह कविता एक प्रकाशस्तम्भ के रूप में समझी जानी चाहिये। इस कविता में प्रथम बार मधुर रोमाँटिक भावनाओं को स्वच्छन्दता से प्रकट किया गया। प्रथम बार तुक के विरुद्ध ही नहीं, गुप्तजी के अतुकान्त छन्द के अतुकान्त विराम-प्रिय छन्दों के विरुद्ध भी क्रान्ति की। प्रकृति को मानवीय रूप देकर उसकी एक मधुर-क्रिया को कलात्मक भंगिमा में प्रस्तुत किया गया, और साथ ही एक "दार्शनिक तटस्थता" के साथ कविता के अन्त में प्रियतमा को—आत्मा के आध्यात्मिक मिलन की ओर भी संकेत किया गया। प्रसादजी ने इसके भी पहले रहस्यमय संकेतों से पूर्ण कवितायें लिखी थीं जिनमें प्रेममय अनु-भूतियों का दार्शनिक रूप-रेखा के साथ वर्णन किया गया है। अतः 'प्रसाद' व 'निराला' की कविताओं के साथ नूतन युग का आगमन होता है न कि गुप्तजी की 'नक्षत्र' कविता के साथ या श्रीधर पाठक की फुटकर रचनाओं के साथ।

'निराला' व 'प्रसाद' में भी युग प्रवर्तन की दृष्टि से प्रसाद जी को कुछ अधिक श्रेय है क्योंकि द्विवेदी युगीन कवियों के इतिवृत्त-प्रधान 'पद्यों' के समानान्तर उन्होंने प्रेम व करुणा प्रधान संकेता-त्मक अभिव्यंजना लिये हुए गीत लिखना सर्व प्रथम प्रारम्भ किया

था, प्रकृति मे 'मानवीकरण' का प्रथम रूप भी हमें 'प्रसादजी की प्रारम्भिक कविताओं मे ही मिलता है, उसके बाद निरालाजी आते है और फिर 'पन्त' तथा अन्य कवि। प्रसादजी के 'महाराणा का महत्व', १९१४ की कविताओं, और 'चित्राधार', मे १९१३ के आस पास की लिखी हुई कविताये सग्रहीत है जिनमे 'प्रकृति वर्णन' तथा आत्म अभिव्यञ्जना छायावाद के बहुत निकट है। 'प्रसाद' व निराला' के युग प्रवर्तन-कार्य को हम तब समझ सकते हैं जब हम 'उस युग की कृतियो को एक साथ देखें—

गुप्तजी—रंग मे भग, १९०९, जयद्रथ वध, १९१०, पद्म-प्रबध, १९१२, भारतभारती, १९१४, किसान, १९१५, मुक्तकगीत, १९१४ से १९१८।

प्रसादजी—प्रेम पथिक (१९१३) महाराणा का महत्व १९१४ चित्राधार १९१९ झरना (लिखा गया १९१९ मे किन्तु प्रकाशित १९२७ मे)।

निरालाजी—जुही की कली—१९१६ ई०, सन्ध्या-सुन्दरी—१९२१।

पतजी—वीणा—१९१८, ग्रन्थि—१९२०, पल्लव—१९२२-२६

गुप्तजी के जिस 'मुक्तकगीत' को हमने ऊपर दिया है उनका समय १९१४ से १९१८ तक है, मुकटधर पांडेय ने भी प्रायः इसी समय कुछ गीत लिखे है, शुक्लजी ने इन्हीं गीतों को नूतन युग के लाने का श्रेय दिया है। किन्तु जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं कि ये गीत 'गीताँजलि' के (१९११) के कवि के उच्छ्वासों के अनुकरण पर लिखे गये थे और बगाल मे यह धारा प्रबल रूप से बह रही थी। किन्तु उनसे किसी युग-विकास की सूचना नही मिलती, न वे उन कवियों (गुप्तजी, मुकुटधर पाँडेय) के विकास-क्रम को ही बतलाते हैं क्योंकि १९१४ में 'नक्षत्र निपात' जैसा रहस्यमय गीत लिखने वाला गुप्तजी का कवि १९१९, २० मे पत्रावली, प्लासी का युद्ध और उसके बाद १९२५ में 'पंचवटी' व 'अनघ' लिखता है न कि अज्ञात-सौंदर्य

की झलक देने वाले प्रसाद की तरह 'महाराणा का महत्व' १९१४ के पश्चात् 'चित्राधार' व 'झरना' या 'निराला' की तरह १९१६ से 'जुही की कली' लिख कर 'परिमल' और 'गीतिका'। अत स्पष्ट है कि मुकुटधर पाँडेय या गुप्तजी को युग प्रवर्तन का श्रेय नहीं दिया जा सकता।

'निराला' के आगमन के पश्चात प्रसाद अपने प्रेम, करुणा के सजल गीतों से छायावाद को जन्म दे चुके थे, किन्तु 'निराला' ने छायावाद की ओर जनता का ध्यान सब से अधिक आकर्षित किया, यह विस्मरण न कर देना चाहिये कि 'निराला' को छायावादी कला और काव्य के लिये सब से अधिक लाँछन का पात्र बनना पड़ा, "जुही की कली" के सरस्वती में न छपने के पश्चात 'निराला' जी को 'छायावाद' के लिये बहुत विज्ञापन करना पड़ा, उसमें आत्म-विज्ञापन भी बहुत था, परन्तु प्रतिनिधि के रूप में, एक प्रकार से सभी छायावादी कवियों की आत्म अभिव्यञ्जना भी थी, जो 'निराला' के विद्रोह स्वर में प्रकट होने लगी, जब इतिवृत्तात्मक काव्य के विरुद्ध मुक्त छन्द में दुरारूढ़ कल्पना के द्वारा लाये गये अनुपम अपरिचित प्रतीक व उपमानों का एक ओर तथा शैली में विलक्षण प्रयोगों का प्रारम्भ हुआ तो "समझ में न आने के कारण" ऐसी कविताओं को छायावाद कहा गया, निरालाजी की "जुही की कली" पर सबसे अधिक प्रहार हुये थे अत. 'छायावाद' की प्रतिष्ठा में इस कविता का बहुत बड़ा हाथ माना जायगा।

३—विचार और विकास

कवि की 'कला' के पीछे उसकी अपनी चिन्ता-धारा पृष्ठ भूमि का कार्य करती है। कभी-कभी कलाकारो का विचार-विश्लेषण प्रस्तुत कर उस पर इतना अधिक जोर दे दिया जाता है कि यदि कलाकार की विचारधारा, पाठक को विचारधारा के प्रतिकूल पड़ती है तो विचारक उसके विषय मे मनमानी राय बना लेता है ऐसी स्थिति मे विचार धारा की प्रतिकूलता या अनकूलता के कारण या तो उसकी 'कला' को अनुचित महत्व दे दिया जाता है या फिर प्रतिकुल स्थिति मे उसे अनावश्यक उपेक्षा प्रदान की जाती है। प्रगतिवादिता की झौंक मे समाज-शास्त्र के मञ्च से कुछ अलोचकों ने ऐसा किया भी है और उसका परिणाम यह हुआ है कि स्वयं 'निराला' के काव्य मे ही उन कविताओ को अनुचित महत्व दे दिया गया है जो काव्य-कला की दृष्टि से महान नहीं है परन्तु क्योंकि वे एक-विचार-धारा विशेष का, सीधो और कभी-कभी अनर्गल प्रचार करती है (यथा कुकुरमुत्ता की गुलाब नामक कविता) और आलोचको को नही 'प्रचारको' को यह 'प्रचार' अधिक पसन्द है अत काव्य के नाम पर "भद्दे प्रयोगो" को भी श्रेष्ठ काव्य की पक्ति मे आसन्न दे दिया जाता है। अस्तु

निराला जी एक आदर्श वादी कवि है उनमे चिन्तन व बुद्धितत्व की प्रमुखता पाई जाती है, मात्र भावोच्छ्वास से वे सदा दूर रहे हैं जैसा कि उनके समकालीन कवियो मे पाया जाता है, उनका स्वर दार्शनिक रहा है, उस युग के दार्शनिक पत्र 'समन्वय' के वे सम्पादक भी रह चुके है उनके लेखों मे इस आदर्शवादी विचारधारा की व्याख्या व विश्लेषण भी मिलता है किन्तु फिर भी

निराला जी की कला—छायावादी कला दार्शनिक ऊहापोह में न पड़ कर, 'कला' का अञ्चल नहीं छोड़ती, जहाँ 'पन्त' 'एकतारा' 'नौका-बिहार' आदि कविताओं में अपनी दार्शनिक—विवेचना में डूब जाते है, जहाँ वे दार्शनिक की गम्भीर मुद्रा मे जीव-जगत व ब्रह्म के सम्बन्ध मे अपने विचारों को पद्ध-बद्ध करने लगते है वहाँ 'निराला' जो, विचार-धारा विशेष के अनुसार अपने हृदय मे उठे हुये भावो की ही अभिव्यक्ति करते है, बौद्धिक विवेचन से कम पड़ते है, उनकी प्रसिद्ध दार्शनिक कविता 'तुम और मै' को ही देखिये वहाँ कवि 'स्रष्टा' और 'सृष्टि', विधाता और 'व्यक्ति' के सम्भव-सम्बन्धो को ही वाणी देता है, वे सम्बन्ध रमणीय कल्पना द्वारा लाये जाकर, सवेदना मे लपेटे हुये सगीत की मधुरिमा के साथ व्यक्त होते है अतः ब्रह्म व जीव के सम्बन्ध की यह व्याख्या दार्शनिक-शब्दावली से दूर, प्रतीक पद्धति या उपमान-विधान पर चलती है। निराला जी प्रवचन या उपदेश को कवि की सबसे बड़ी दुर्बलता मानते है अत उनकी 'कला' मे एक विशेष प्रवृत्ति यह पाई जाती है कि ब्रह्म, जीव, जगत के सम्बन्ध मे अपने चिन्तन—के सूत्र को पकड़ कर नीचे उतर जाते है और हृदय के क्षेत्र मे अनेकानेक रमणीय-भाव लहरियो के स्पन्दन से बौद्धिकता की जड़ता को दूर कर, सवेदना के रग मे रङ्ग कर, पूर्ण प्रौढ़ भाषा मे उसे अभिव्यक्ति देते है, अतीत के प्रति लिखी गई कविताओं तक मे यही प्रवृत्ति हम बराबर पाते है, 'प्रत्यभिज्ञा' के बल पर मन के किसी निगूढ़-तल पर वे किसी बाह्य-विषय यमुना आदि को देखकर उसकी सामयिक स्थिति तथा अतीत स्थिति की विचारणा के कारण उद्भूत भावनाओ को एकत्र कर पुन. पूरी शक्ति व पौणता के साथ उन भावनाओ को वाणी देते है अतः हम निराला के काव्य मे—दर्शन की अतुल—अस्पष्ट गहराइयो की विवेचना नही पाते 'निराला' रहस्यमय मानसिक स्थितियो को कम, रहस्य से मानव-हृदय के सहज सम्बन्धों को अधिक वाणी देते आये है। दुरूहता

वस्तु से नहीं उनकी शैली, विचार संयोजना और विशेष रूप से पदावली की दीर्घता और कला की महार्घता में आती है, स्फुट भाव भी अस्फुट शैली में इसीलिये दुरूह जान पड़ते है।

निराला में दार्शनिक बारीकियों का विवेचन कम मिलता है, वे मूलत मानवतावाद (Humanism) के कवि है, इसीलिये लगभग एक ही समय में "तुम और मैं" और "भिखारी' जैसी कविताये लिख सके है। 'पन्त' के विकास को देखकर हम कहते है कि उनका कवि एक दार्शनिक-आग्रह से निकल कर एक अन्य दार्शनिक आग्रह में फस गया है परिणामत कला की स्वच्छन्दता व मनोरमता पर आघात हुआ है, वह विचार से बोझिल, मर्मस्पर्शिता से रहित विचार-प्रसार मात्र रह गया है। निराला पन्तजी के समान नित्य नवीन विचार धाराओं से आंदोलित होकर पहले से ग्राह्य पथ को छोड़ने वाले कवि नहीं है, प्रारम्भिक कविताओं में विश्वात्म-वादी है और युद्ध काल के बाद की कविताओं में उनका स्वर विद्रोही-समाजवादी जैसा हो गया है पहले वे पुनर्जागृति काल की आदर्शवादी विचारधारा के समर्थक थे किन्तु आज उनका स्वर व्यग्य प्रधान कविताओं में तीखा हो गया है परन्तु न तो उन्होंने तब काव्य में पूर्व सिद्धान्तों की घोषणा की थी और न मार्क्स की शब्दावली वे आज फेरते हैं। मानवता की मुक्ति के लिये प्रयत्न के रूप में ही वे मार्क्सवाद की दुहाई देते है जीवन के चिर रक्षित सिद्धान्तो के रूप में नहीं, उनके प्राचीन विश्वास आज भी उनके साथ है हाँ वे आज महादेवी के समान 'महत्व' के प्रति आत्म निवेदन में नहीं डूबे रहना चाहते, उन्होंने वायु की गति को बहुत पहले से अनुभव कर लिया था अत. व्यक्तिवादी काव्य का प्रवर्तन करने वालों में जैसा उनका स्थान महत्वपूर्ण है इसी प्रकार जनवादीधारा का भी वही प्रतिनिधित्व कर रहे है।

निरालाजी की कविताओं के प्रथम सग्रह 'परिमल' के सम्बन्ध में डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है कि रामकृष्ण-मिशन ने 'परिमल'

को अद्वैतवाद दिया, उसने उन्हे यह भी सिखाया कि मनुष्य की सेवा 'वेदान्त' के प्रतिकूल नहीं है। निराला के अन्दर एक अन्तर्द्वन्द्व का जन्म हुआ—यदि संसार और मनुष्य मिथ्या है तो इनकी सेवा मे व्यर्थ समय क्यो लगाया जाय, इस मानसिक सघर्ष का चित्र उनकी 'अधिवास' नामक कविता मे मिलता है। वह पूछते है कि "अधिवास कहाँ है" मानो सन्यासी उत्तर देता है कि 'अधिवास' वहीं है जहाँ गति का अन्त हो जाता है, कवि फिर पूछता है कि जब तक उसके हृदय मे करुणा है क्या तब तक गति का अन्त हो सकता है? दुखी मानव को देखते ही उसके हृदय में बेदना उमड़ आती है, और वह उसे गले से लगा लेता है, वह मानता है कि वह माया मे फँसा हुआ है, फिर भी उसकी गति रुक नहीं सकती,

......वह गतिहीन "अधिवास" को नमस्कार करता है, और पुकार उठता है—

"छूटता है यद्यपि अधिवास"
"किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास"

परिमल मे इस तरह की बहुत सी रचनायें है जिनसे अद्वैत वाद को चुनौती सी दी गई है।॰

आदर्शवादी रचना काल मे यहाँ डा० महोदय ने कवि की विचारधारा के सम्बन्ध मे निम्नलिखित सूत्र पकड़े हैं—

१—कवि अद्वैतवादी है।

२—किन्तु उसका बेदान्त मानव सेवा, जागृति, देश सेवा, स्वतन्त्रता के प्रतिकूल नहीं है।

३—कवि के हृदय में अन्तर्द्वन्द्व है, कि वह वैयक्तिक मुक्ति की साधना मे ही निमग्न होकर रह जाये या मानवीय करुणा का प्रसार करे—मानव की सेवा करे।

१—निराला नामक पुस्तक से —डा० रामविलास शर्मा

आगे डा० शर्मा ने पुन ललकार कर कहा है—"वह अद्वैत वादी नही है, जो अपने अन्तर को वज्र कठोर कह कर समाज के आगे ताल ठोकता है, वह समाज के और सैकड़ों लोगो जैसा सघर्ष से जूझने वाला सिपाही है, जो अपना दिल बढ़ाने के लिये दुश्मन को ललकारता है।❀

किन्तु परिमल की कविताओ का अध्येता उक्त निष्कर्ष पर नहीं पहुँचता, परिमल ही नहीं गीतिका, अनामिका, और अणिमा तक भी अनेक कविताओ से कवि पूर्णतया अद्वैतवादी है। यह आवश्यक नहीं है कि अद्वैतवादी सघर्ष से जूझने वाला सिपाही बन कर समाज के आगे ताल ठोकने वाला नही बन सकता, दुश्मन को ललकारने वाला भी अद्वैतवादी हो सकता है—निराला ऐसा ही अद्वैतवादी है।

जो क्रांति के ताण्डव का आह्वान करता है, सामाजिक जड़ता पर वज्र व्यगो की बौछार करता है और जगत के दुख व दैन्य को वाणी देता है। निराला के अन्तर्द्वन्द्व के सम्बन्ध मे निवेदन यह है कि परिमल मे एक भी ऐसी रचना नहीं मिल सकती जिसमे अद्वैत वाद को चुनौती दी गई हो, डा० शर्मा ने भी यह लिखा है कि परिमल मे अद्वैतवाद को चुनौती "सी" दी गई है। यहाँ "सी" शब्द विचारणीय है।

हमे जहाँ निराला के अद्वैतवाद के सम्बन्ध मे अन्तर्द्वन्द्व दिखाई पड़ता है वहाँ वस्तुतः चुनौती कभी नहीं दी गई है. न उसे छोड़ा गया है। कवि ने विभिन्न स्थानो पर इस तत्व पर जोर दिया है कि मानव जीवन का उद्देश्य विभिन्न बन्धनों से मुक्ति पाना है जीव की मुक्ति—वेदान्त के अनुसार आवागमन से छुटकारा पाने मे है, इस जीवन मे, अनेकात्मक जगत मे, एकता का सूत्र खोज कर, उस अत्या-

---

❀ वही,

न्तिक स्थिति को प्राप्त कर आनन्द प्राप्ति ही मनुष्य का सबसे बडा पुरुषार्थ है, यहाँ दार्शनिक के दो मार्ग हो सकते है एक तो व० समाज से तटस्थ होकर घोर एकॉतिक साधना मे लीन हो जाय, समाज के दु खो को 'माया' या भ्रम समझे या तत्वत उस दार्शनिक सत्य को समझ कर, एकात्म्य की स्थिति हृदय से स्वीकार कर विभिन्न भेदो, उपभेदो, सामाजिक विषमता अन्य मान्यताओ का घोर प्रतिपोध करे क्योकि वह समझता है कि फलत ये भेद मिथ्या हैं मनुष्य के उस अह को जगाये, जिसके जागृत हो जाने पर मनुष्य की महत्ता ससार की सारी नश्वर वस्तुओ के ऊपर प्रतिष्ठित हो सके, जिससे अपने को छुद्र, दासानुदास, समझने वाले मनुष्यों मे उसी दुर्दमनीय शक्ति का विस्फोट हो सके जो शक्ति नाना रूपात्मक जगत के मूल मे अवस्थित है, जिसकी दीप्ति, सविता का तेज, जिसकी स्निग्धता, शशि की सुधा, जिसका गति सागर की हलचल बनकर हमारे दृगो के सम्मुख अनेक रूपो मे प्रतिभासित होती है उस मूल शक्ति का 'अधिवास' जब प्रत्येक प्राणी मे है, किन्तु उस शक्ति से अपरिचित अपने को छुद्र, परतन्त्र, अशक्त और अज्ञ समझ कर पतित होता है। इसी मूल 'शक्ति' का परिचय देकर स्वा०विवेकानन्दजी ने भारतवासियों मे स्वाभिमान, स्वातन्त्र्य-गौरव शक्ति, विद्रोह, जागृति के स्फुलिङ्ग उत्पन्न किये थे। निराला मे भी (डा० शर्मा के अनुसार भी) रामकृष्ण, विवेकानन्द के इसी सन्देश को—इसी दृष्टिकोण से वर्णित किया गया है। अत समष्टि रूप से यदि हम देखें तो परिमल गीतिका, अनामिका, की रहस्यात्मक रचनाओ में न कोई अन्तर्द्वन्द्व मिलता है न कोई भ्रांति ही दृष्टि गोचर होती है। विवेकानन्द मे 'वेदान्त' के उपयोग Application पर अधिक जोर है, निराला में भी वेदान्त के एप्लीकेशन पर अधिक जोर होने के कारण यह भ्रांति स्वाभाविक है कि वह व्यक्ति अद्वैत-वादी ही नहीं है जो समाज के आगे ताल ठोकता है, निराला में

ठीक इसके विपरीत 'वेदान्त स्वाभिमान, गौरव और क्राँति के पीछे खड़ा है जो कवि मे अद्‌भुत आशा व उत्साह स्थिर रख सका है, क्योंकि वह मनुष्य को, प्रकृति के ऊपर विजय करने वाली—मैंटर से विकसित—चेतना के रूप में नहीं देखता अपितु प्रकृति के ऊपर उठकर 'पुरुष' के साथ एकाकार करता हुआ अपने को उसी अपरिमित—अनन्त प्रकाश का कोष समझकर समाज की सारे अवाँछनीय परिस्थितियो पर टूट पड़ता है। अनन्त और शाश्वत साम्य को तत्वत समझ लेने पर फिर भेदो की सत्ता की स्वीकृति भला निराला कैसे दे सकता है ?

स्वामी रामतीर्थ जैसे साधक और दार्शनिको तक ने 'आत्मवाद' की अनुभूति को स्वतन्त्रता, अभ्युदय व निश्रेयस सबके लिये एक साथ आवश्यक है। उन्होने १९०२ ई मे सैन फ्रांसिस्को मे भाषण देते हुये कहा था—कि स्वतन्त्रता का विचार शाश्वत है, श्वान, व्याघ्र, चीते, पक्षी, मनुष्य सभी स्वतन्त्रता चाहते है, उसके लिए रक्त तक बहाते है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी धर्म उस अन्तिम मुक्ति का उद्देश्य अपने सम्मुख रखते है जिसका लघु अर्थ है 'स्वतन्त्रता।

Every body in this world wants to be free, dogs lions, tigers, birds, men love freedom, the thought of freedom is universal, Christians, Hindoos, Mohammedans, all religians, have set up before them one goal, what is that ? Salvation, the little meaning of which is freedom.

Complete works of Swami Rama, Part I Page 110

अतः 'वेदान्त' निराला की ललकार को और भी अधिक प्रभविष्णु, स्थायी और महान बनाने के लिए आता है। हमें यह न भूलना चाहिये कि शंकराचार्य की तरह व्यवहारिक भेद प्रधान

जगत की सत्ता को स्वीकार कर समाज के ढाँचे को वैसा ही बनाये रहने देना विवेकानन्द जी कभी नही चाहते, वे तो 'वेदान्त' का उपयोग ही मनुष्य जीवन को सुखी और पूर्ण बनाने के लिए करना चाहते है। निराला का कवि तभी विपन्न-परिस्थितियों मे भी शृङ्गार व विद्रोह दोनो प्रकार के काव्यो मे समस्याओं का दार्शनिक प्रस्तुत करते हुये भी अधिक मानवीय और व्यवहारिक है।

यहाँ हम स्वा० विवेकानन्द जी के 'वेदान्त' के स्वरूप के सम्बन्ध मे कुछ विचार करेंगे इससे स्पष्ट हो जायगा कि वेदान्त ससार की समस्याओ से मुख मोड़कर—पलायन करने वाले सिद्धाँत के रूप मे वहाँ प्रस्तुत नही किया गया है अपितु एक विराट क्राँतिकारी दर्शन के रूप मे ग्रहण किया गया है।

स्वामी जी के अनुसार वेदान्त शक्ति व पुरुषार्थ के लिये है, ससार से भागने के लिये नहीं, उन्होंने कहा था—

"लेकिन हम लोगो के देश मे अब ज्यादा रोने धोने का समय नहीं है, इस समय कुछ बल पौरुष की आवश्यकता है, निर्गुण ब्रह्म मे विश्वास होने, सब तरह के कुसस्कारो से रहित होकर, मैं ही निर्गुण ब्रह्म हूँ, इस ज्ञान की सहायता से खुद अपने पैरो पर खड़ा होने से हृदय मे कैसी अपूर्व शक्ति का विकाश होता है, कहा नहीं जा सकता।[1]

"हम लोगो को इस महिमाशाली आत्मा के प्रति विश्वास जगाना होगा, तभी बल वीर्य आयेगा, तुम जो चेतन करोगे, वही बनोगे, अगर तुम अपने को दुर्बल समझोगे तो दुर्बल होगे, तेजस्वी समझने पर तेजस्वी होगे......अद्वैतवाद हम लोगो को अपने को दुर्बल होने का उपदेश नहीं देता, किन्तु अपने को तेजस्वी, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ समझने का उपदेश देता है, .. हममे से प्रत्येक के पीछे ऐसी ही अनन्त शक्ति, अनन्त पवित्रता, चिदानन्द, अमर

१—वेदान्तधर्म—स्वा० विवेकानन्द,

जीवन का विशाल सिंधु भरा हुआ है।"[२]

हमें आत्म ज्ञान की इतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी अद्वैत के कार्य रूप मे लाने की, पहले रोटी पीछे धर्म, जब तुम्हारे देशवासी भूखो मर रहे थे, तब तुम उन्हे धर्म खिला रहे थे, भूख की अग्नि को धर्म कभी शांत नही कर सकता"" मैं तुम्हे फिर याद दिलाता हूँ कि सबसे पहले तुम्हे अपने देश के असख्य पतित भाइयों का उद्धार करना होगा।[३]

पाठक! कृपया इस अन्तिम उद्धरण को परिमल की अधिवास कविता से मिलायें, स्पष्ट हो जावेगा कि निराला के अन्तर्द्वन्द का रूप क्या हैं, वस्तुत 'वेदान्त' के प्रति वहाँ शका नही है अपितु उसके उपयोग की असामयिकता है जिस पर कि उक्त उद्धरण मे स्वामी जी ने भी जोर दिया है, कवि अधिवास मे कहता है—

कहाँ?
मेरा अधिवास कहाँ?
क्या कहाँ? रुकती है गति जहाँ?
भला इस गति का शेष-सम्भव है क्या
करुण स्वर का जब तक मुझमे रहता है आवेश?
मैंने मै शैली अपनाई
देखा दुखी एक निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आई
उसके निकट गया मैं धाय
लगाया उसे गले से हाय

२—वही
३—वही

फँसा माया मे हूँ निरुपाय,
कहा, फिर कैसे गति रुक जाय ?
उसकी अश्रुभरी आंखों पर, मेरे करुणाञ्चल का स्पर्श।
करता मेरी प्रगति अनन्त, किन्तु तो भी मै नही विमर्ष ।
छूटता है यद्यपि अधिवास
किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास ॥

इस कविता से डा० शर्मा ने यह निष्कर्ष निकाला कि कवि गतिहीन अद्वैतवाद को छोड़ देता है, किन्तु कवि अद्वैत को छोड़ता नही है इसका प्रमाण स्वय "अधिवास" के पश्चात् 'अणिमा' (१६४३) तक की रहस्यमयी अनेक रचनाये है जो कवि की रहस्य के प्रति व्यसन-प्रियता की द्योतक नही अपितु उसके विश्वास व चेतना की प्रतीक है। उक्त पक्तियो से यही ध्वनि निकलती है कि उस "चरम स्थिति" पर पहुँचना प्रवञ्चना ही होगी। यदि हम अपने सम्मुख दुखी-निज भाई को देख कर करुणा का अचल न दें, इन दुखियो पर करुणा बरसाने मे सॉसारिक दु ख को दु ख मान लेने मे भले ही उस अद्वैत स्थिति से बिलगाव होता हो परन्तु मुझे उसका कुछ भय नहीं है।

अत यहाँ अद्वैत स्थिति की अस्वीकारता (Negation) नहीं है अपितु जगत की यथार्थ समस्याओ से आँखें बन्द कर मुक्ति के प्रयत्न मे, ब्रह्म मे आत्मा की एकाकारिता व तन्मयता की स्थिति को अपने जीवन का ध्येय मानकर, मानवीय 'करुणा' को भी महत्व देने का प्रश्न है छुटने का अर्थ यहाँ तिलांजलि नहीं है, पूरी कविता का भाव सामने रख लेने पर यह भाव और स्पष्ट हो जायगा।

कवि पूछता है कि मेरा 'अधिवास कहां है तो उत्तर मिलता है कि अधिवास वहाँ है जहां गति रूक जाती है अर्थात आवागमन के बन्धन से मनुष्य छुटकारा पा जाता है, आत्मा ब्रह्म मे एकाकार हो जाती है, मुक्ति मिल जाती है।

यह हुई गति हीनता। अब कवि पुन प्रश्न करता है कि—वह 'चरम स्थिति' कैसे प्राप्त हो सकती है (जो कि उसका अन्तिम ध्येय है) जब तक मुझमे मानवीय करुणा अवशेष है। सवेदना जगने का अर्थ है स्थित प्रज्ञावस्था से दूर रहना, 'करुणा' उत्पन्न होने का अर्थ है—कि ससार के मोह से छुटकारा नही मिला और दु खी जीवो को देखकर करुणा का (मोह का) जग जाना स्वाभाविक है, कवि कहता है कि मै 'अहब्रह्मास्मि' का गायक और विश्वासी हूँ, किन्तु जब मैने एक दुःखी भाई को देखा तो मेरे हृदय मे करुणा उत्पन्न हो गई, वेदना से हृदय भर गया, मै उस दु खी व्यक्ति के निकट गया और उसे गले से लगाया, मै इस मोह मे—इस करुणा के आवेश से जनित माया मे फॅसने के लिए विवश हूँ। क्योकि मानवीय भावनायें सहज रूप से मेरे हृदय मे उत्पन्न हो जाती हैं अब जब यह मानव के प्रति 'मोह' उत्पन्न हो जाता है तो यह कैसे सम्भव है कि मैं उस आत्यन्तिक स्थिति को प्राप्त कर लूँगा जहाँ ज्ञाता और ज्ञेय एक हो जाते है, जहाँ जीव व ब्रह्म मे कोई अन्तर नही रहता, सरिता समुद्र मे खो जाती है और जब तक ऐसा नहीं होता, जब तक इन जगत के दु खो को देखकर मेरे मन में आवेश उठते रहते है ? जब तक उस दुःखी व्यक्ति पर मेरा करुणा का आँचल है, तब तक इससे मेरी प्रगति होती जा रही है अर्थात् मै उस चरम स्थिति से विमुख होकर जगत की वेदनाओ की ओर बढ़ता जा रहा हूँ, किन्तु मुझे अपने अधिवास से अलग हो जाने का दु ख—विमर्ष नहीं है यद्यपि वह हमसे छूट रहा है परन्तु मुझे कोई भय नहीं है। यह तो हुआ कविता का भाव। अब यहाँ स्पष्ट है कि कवि उस "अधिवास" को अपना चरम लक्ष्य स्वीकार कर रहा है। 'आत्मा की मुक्ति' ही उसका ध्येय है किन्तु वह जगत के दुःखों को 'माया मोह' कहकर सन्यासियों की तरह टाल देने को प्रस्तुत नहीं है उसे इस बात का खेद है कि संसार के दुःखों की ओर बढ़ कर वह अपने 'अधिवास' से विलग हो जायेगा—दो गतियाँ है एक—जगत की ओर,

दूसरी–ब्रह्म की ओर। ब्रह्म की ओर जाने के लिए वेदनाओं का नाश आवश्यक है, परन्तु कवि को यही तो दुःख है कि वह दुःखी भाई के दुःख को देखकर उसकी उपेक्षा नहीं करना चाहता। वह ब्रह्म स्थिति को पाने की इच्छा रखता हुआ भी मानव के दुःखो की अवहेलना नही करना चाहता। इसके लिये वह निरुपाय है, विवश है कवि को खेद है कि इससे वह ब्रह्म से विमुख हो जायगा किन्तु वह सोचता है कि मुझे इसका भय नही क्योंकि भले ही उस अधिवास' से विलगाव हो जाय किन्तु मानवीय भावनाओं का अनादर असहनीय है। वहाँ मनुष्य के दुखो को 'माया' समझ कर आँख नहो मूँदना चाहता। बस।

इस कविता मे कवि मानवीय भावो 'को भी उतना ही महत्व देना चाहता है, जितना ब्रह्म ज्ञान को, जैसा कि विवेकानन्द ने कहा था कि—"पहले रोटी पीछे धर्म"। अत. इस कविता मे "अधिवास" को छोड़ा नही गया, उसके लिये उचित वातावरण प्रस्तुत कर लेने की बात कही गई है, विकलाङ्ग जीवन को ब्रह्म ज्ञानी बनने की यदि धुन लगी हो तो वह उसकी विडम्बना ही होगी।

स्वामी रामतीर्थ से एक बार अमेरिका मे पूछा गया कि आप हमे सन्यास की शिक्षा क्यो देते है, इच्छाओ का हनन करके तो मानवता के सारे प्रयत्न नष्ट हो जायेंगे, सारे समाज के लिये हमारा प्यार न फैल कर अपने मे केन्द्रित हो जायगा। Vedanta wants us to break all connections with the whole World and suppress our love for the whole world" तब स्वामी जी ने जो उत्तर दिया था उसमें भी सांसारिक जीवन की पूर्णता के लिए 'आत्मवाद' का उपयोग बताया गया है, अधिक सशक्त, स्वस्थ, स्वतन्त्र गौरववान बनने के लिए हमे पूर्णता की स्थिति तक उठना होगा। समष्टि के सुधार के लिए प्रथम व्यष्टि को सुधारना होगा। हम यह नहीं कहते कि उनका यह उत्तर हमारी समस्या को हल करने के लिये उपयुक्त है किन्तु उस समय के सभी

दार्शनिकों ने 'अद्वैतवाद' को किस प्रकार समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये उपयोगी ठहराया था, कम से कम इतना स्पष्ट हो जाता है, अपनी अपर्याप्तता और अभावों पर विजय प्राप्त करने के लिये उन्होंने 'पूर्णता की अनुभूति' को आवश्यक ठहराया था—वे कहते है—So long as you regard yourself as a part only, as a small ... . so long as you are divided you are not whole you are simple, not strong." हम आज इस दृष्टि से अपनी समस्याओं को हल नहीं कर सकते, यह निश्चत रूप से एकाँतिक व्यक्तिवादी दृष्टिकोण है परन्तु हमें समय को देखना होगा। निराला के किशोर जीवन के आस पास इन्ही विचारों का ताना बाना बुना हुआ था परमहस, रामकृष्ण, विवेकानन्द, रवीन्द्र और रामतीर्थ के विचारो का। इनमें भी विवेकानन्द जी का दर्शन अपेक्षाकृत अधिक सामाजिक भूमि पर टिका था, रामतीर्थ जी में दार्शनिक व साधना का पक्ष अधिक प्रबल है, पर वह भी उतना पलायनवादी व प्रगति विरोधी नहीं है जितना कंदराओ मे ही जन्म लेकर जीवन समाप्त कर देने वाले साधको का होता है जो जीवन के यथार्थ प्रश्नों से कतरा कर केवल इच्छा-नाश का ही उपदेश देते रहते है और समाज की विषमता को शाश्वत मान लेते हैं। जागृति काल के इन साधको का साधना पक्ष एकाँगी व व्यक्तिगत अवश्य है परन्तु उन सबने उसे एक सीमा तक व्यवहारिक रूप देने का प्रयत्न बराबर किया है, वे विदेशी की दासता के जुए को फेंक देना अपना कर्तव्य बताते हैं, वे विदेशी व्यापारियो से समझौता नही करते, जनता के साथ विश्वास-घात नहीं करते, उसके दु ख दारिद्रय, परवशता पर ध्यान देते है परन्तु उनका 'हल' वैयक्तिक आस्था पर निर्भर करता है, परन्तु उनके श्रद्धा व विश्वास एक क्राँतिकारी भावना का बीज बपन निराला के काव्य मे करते है और दुखियों के प्रति सहानुभूति दिखाता हुआ कवि अपने अधिवास से विलगाव तक की बात करने

लग जाता है, अत. अधिवास कविता मे दुखियो के प्रति सहानुभूति पर हमे जोर अधिक देना चाहिये, 'अधिवास' के छोड़ने पर नही क्योकि वह छोड़ता नही है छोड़ भी नहीं सकता, उससे उसका जीवन एकतान होता गया है, उसी 'असीमता' के सिन्धु मे उसकी कला की सरिता निमग्न होने के लिये प्रधावित होती हुई दिखाई पड़ती है, उस चिन्मय शक्ति के सम्बन्ध मे कोई अन्तर्द्वन्द्व का कोई सन्देह वहाँ नही है, निराला का कवि संदेह वादी Sceptie कभी नहीं रहा, उसे उस दिव्यसत्ता पर पूर्ण विश्वास है, किन्तु व्यवस्था-जन्य विषमता की कचोट से चीख कर कवि मानो कह उठता है, बता चिन्मय। तू ही बता अब तेरी चर्चा करें या इस दुख को देखे निराला साधना की गहराई मे अपनी सबेदना को नहीं खो देता अब इतने पर कोई कहे कि वह अद्वैतवादी ही नहीं हो तो यह अनुचित होगा।

कवि ने परिमल की भूमिका मे अपने विश्वास के रूप को अपनी क्राँतिकारिता के साथ कई स्थानो पर व्यक्त किया है—

"साहित्य की मुक्ति उसके काव्य मे देख पड़ती है, इस तरह जाति के मुक्ति प्रयास का पता चलता है—चित्रो की सृष्टि होती है, पर वहाँ उन तमाम चित्रो को अनादि और अनन्त सौन्दर्य मे मिलाने की बड़ी चेष्टा रहती है—साहित्य में इस समय यही प्रयत्न जोर पकड़ता जा रहा है, और यही मुक्ति-प्रयास के चिन्ह भी है, अब लीलाम्बरी ज्योति मूर्ति की सृष्टि कर चतुर साहित्यिक फिर उसे अनन्त नील नभ मण्डल मे लीन कर देते है, पल्लवो के हिलने मे किसी अज्ञात चिरन्तन अनादि सर्वज्ञ को हाथ के इशारे अपने पास बुलाने का इङ्गित प्रत्यक्ष करते हैं, इस तरह चित्रो की सृष्टि असीम सौन्दर्य में पर्यवसित की जाती है और यही जाति के मस्तिष्क में विराट दृश्यो के समावेश के साथ ही साथ स्वतंत्रता की प्यास को भी प्रखर तर करते जा रहे है।"

क्या यहां विश्ववाद व असीम मुक्ति निराला-काव्य के

प्रगति शील पक्ष के लिये विरोधी ठहराई गई है ? यदि नहीं तो केवल निराला का एक ही पक्ष सम्मुख रख कर उनके विषय मे क्यो मन-मानी धारणाये बनाई जाती है, क्यों उसे समाज के सामने ताल ठोकने वाला अनात्मवादी तक कह दिया जाता है क्या उनमे आत्म वाद की स्पष्ट स्वीकृति उनकी महत्ता को कम करती है, प्राचीन समय मे आज तक कवियो ने सामाजिक क्राँति का माध्यम प्राय. ईश्वर को चुना है, तुलसी भक्त थे, कबीर रहस्य वादी थे, इस्लाम के विरुद्ध उठने वाला सूफी धर्म रहस्य मार्गी था। दम्भी, आचार वादी पण्डो के विरुद्ध उठने वाले जिन सन्तो ने विद्रोह का स्वर घोषित किया है उन सबके अपने विश्वास थे इसी प्रकार 'निराला' अव्दैत व माया में विश्वास रख कर भी विद्रोही है, अव्दैतवाद उसकी प्रेरणा का स्रोत है, परन्तु कवि एकान्त साधक नहीं, मानवीय सवे-दना का वाहक है अत. वह विशुद्ध मानवता वाद का ही प्रतिनि-धित्व करता है, 'निराला' के इस पक्ष को झुठला कर हम वैज्ञानिक विश्लेषण से कतराते हैं। जो छायावाद में सर्वत्र पलायन देखने के रोगी है उन्हें आत्म-वादी 'निराला' की कविताओ का अध्ययन इस दृष्टिकोण मे करना चाहिये अन्यथा आत्मा, ईश्वर, का नाम आ जाने से कला सामन्त वादी कठहघरे मे बन्द पड़ी रहेगी या निराला के अद्वैत को तो प्रगतिशील कहा जाता रहेगा और वही अद्वैतवाद जब महादेवी, प्रसाद या पन्त मे वर्णित होगा तो उस पर प्रतिगामिता का बिल्ला चिपक जायगा। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह हम अवश्य कह सकते हैं कि अन्य समका-लीन कवियों में निराला की क्राँति की हुँकार के स्थान पर अन्य मानवता वादी तत्व हैं, कहीं कहीं दार्शनिक की दुरूहता भी आगई है, एकाँगिता और प्रतिगामिता के दर्शन भी हो जाते हैं परन्तु सहसा एक को बावजूद उसके इन्हीं प्रतिगामी दार्शनिक विश्वासों के, क्राति-कारी तथा दूसरे को प्रतिक्रिया वादी करना अन्याय पूर्ण है।

हमारा निवेदन यह है कि निराला, पन्त, प्रसाद आदि सभी

कवि पूर्णतया—बिना किसी अन्तर्द्वन्द्व या सदेह के आदर्शवादी, वैयक्तिक विश्वासों के कवि हैं, हमे देखना यह है कि उनके वैयक्तिक विश्वासो ने उनके साहित्य को गति दी है या अगति? उसे प्रेरणा मिली है या उपेक्षा? बस इसी दृष्टि से कवि के काव्य का ठीक विश्लेषण हो सकता है, जैसा हमने देखा कि 'निराला' के विश्वासो ने उनमे अद्‌भुत शक्ति व विस्मयकारी प्रेरणा दी है जिससे वह जन जीवन के और भी निकट आ सके है, मनुष्य-जीवन की अभिव्यक्ति अधिक गहराई से कर सके है हम निराला की कला से इस आत्म-परमात्मा सम्बन्धी विश्वास को निकाल कर उस निराधार ही बनायेगे क्योंकि उसका व्यक्तित्व अलौकिक व लौकिक दोनो तत्वो से बना है। अस्तु।

निराला ने स्वय कहा है—"भारत की देन है 'विश्ववाद' सब मे एक सूक्ष्म चेतना, हर एक केन्द्र मे वह चेतन स्वरूप, वह आत्मा, वह विभु मौजूद है, रवीन्द्र का विश्ववाद योरोप के सिद्धान्त के अनुकूल है, और उनके ब्रह्म-समाजी होने के कारण उनका विश्ववाद उपनिषदो से भी सम्बन्ध रखता है।' * तो निराला इस भारतीय विश्ववाद मे प्रगाढ़ श्रद्धा रखते है जो ऋग्वेद द्वारा प्रवर्तित, उपनिषदो द्वारा विकसित और शकर द्वारा समर्पित है। इस सूक्ष्म चेतना के साथ कवि तन्मयता की अवस्था मे विभिन्न सबधो को लेकर चला है, कभी उसे 'जननी' का रूप दिया गया है और कभी प्रियतमा या प्रियतम का। सम्पूर्ण रहस्यवादी कविताओ मे—प्रेयसी प्रियतमा का रूप चित्रित किया गया है। 'जननी' के सम्बन्ध का परमहस दृढ़ कर गये थे और स्वामी विवेकानन्द जी ने भी "वेदान्त व भक्ति" नामक पुस्तक में दोनो का अविरोध ही दिखाया है अर्थात मूल शक्ति के साथ उसकी सगुण रूप मे कल्पना करके, सम्बन्ध स्थापित करना वेदान्त के प्रतिकूल नहीं है अत 'एक बार

---

*प्रबन्ध पद्म नामक पुस्तक से—निराला

बस और नाच तू श्यामा" मे 'काली' के नाम को देखकर उसे कवि के "अद्वैत सिद्धान्त" के विरुद्ध न समझना चाहिये, पन्तजी मे भी 'जननी' को सम्बोधित कर अनेक कवितायें लिखी गई है।

'प्रेयसी' के रूप मे कल्पना करने पर 'निराला' ने उस नारी रूप की दिव्यता की रक्षा पूर्ण तरह से की है, परन्तु पन्त मे कमनीयता का वर्णन अधिक रगीन और रोमांटिक हो गया है। निराला के वर्णन अधिक स्थूल हो जाने पर भी इसी कारण तटस्थ रहे है।

उक्त सूक्ष्म चेतना ही आत्मा के रूप मे हृदयाकाश मे अवस्थित है, इसके भी अकल, अनीह, अनाम, अरूप आदि विशेषण है जो दिक्काल से परे थी, एक रस, सर्वान्तर्यामी है। इस शाश्वत आत्म चेतना, आत्म ज्योति पर निराला अधिक बल देते हैं। उनके अनुसार "यह ज्योति प्रवाह अरूप है, जड़ो मे यह चेतन सयोग ही गति है, प्रत्येक पद पर इसका अज्ञात स्पर्श जीव-जग करता रहता है,...... जीव की हर साँस मे उसका स्पर्श मिलता है, साहित्य मे इस अरूप की स्वतन्त्र सत्ता को नारियो मे स्थिर रूप दिया गया है, कलाविदों ने वही पुरुष, प्रकृति का सौहार्द, दोनो का अपार प्रेम निरन्तर योग देखा, आकर्षण दोनो के सभोग विलास मे ही है, वह और अच्छा, जब एक ही आधार मे हो, यही बीज मन्त्र है जिसका जाप कर उन्होंने नारियो-के अगणित अपार रूपो मे सिद्धि प्राप्त की, ये सिद्ध रूप परवर्ती काल के साहित्य की आत्मा मे प्राणो का प्रवाह भरते गये हैं,.......जिनसे वाह्य स्वतन्त्रता की तरह, अपार आंतरिक स्वतन्त्रता मिलती है और वाह्य के साथ अन्तर के साम्य का निरुपद्रव सन्देश"। ×

तो कवि उस चिरन्तन सत्ता को नारी के दिव्य रूप मे सिद्ध करके देखता है। परिमल की सन्ध्या सुन्दरी, प्रिय के प्रति, प्रभाती, शेष,-बासन्ती आदि ऐसी ही कवितायें हैं, 'जुही की कली'

× प्रबन्ध पद्म

को भी अन्त मे उस चेतन स्पर्श के सुखद अनुभव के साथ ही समाप्त किया गया है। 'तुम और मै' मे भी कुछ पक्तियो मे यही सम्बन्ध दिखाया गया है। छायावादी कला को समझने के लिये निम्नलिखित दार्शनिक विवेचन का समझना अति आवश्यक है—

"साहित्य के एक पृष्ठ मे एक विकच नारी की मूर्ति, तम के अतल प्रदेश मे, मृणाल दण्ड की तरह, अपने शत शत, दलो को सकुचित सपुटित लेकर बाहर आलोक के देश मे अपनी परिपूर्णता के साथ खुल पड़ती है जड़ो मे प्राण संचरित हो जाते हैं— 'अरूप मे भुवन मोहिनी ज्योतिः स्वरूपा नारी॥३ निराला की सभी' प्रेम-रहस्यमय कविताओ मे उक्त चेतन स्पर्श जिसको नारी के रूप में देखा गया है, अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रकृति मे भी इसी का मधुर स्पर्श अनुभव किया जाता है, सारी छायावादी जिज्ञासायें, क्षितिज के पार जाने की लालसाएँ, इसी दिव्य सत्ता के सम्बन्ध की निर्देशिका है। यह अनुभूति हृदय को विराट व विशाल करने वाली है उसमे गरिमा व गौरव भरने वाली है, इसी चिरन्तन शक्ति के अनुभव ने कवि का प्रारम्भिक कविताओ मे ही हृदय-द्वार खोल दिया और वह इतिवृत्त-प्रधान कविताओ से ऊपर उठ कर विराट चित्रो की समष्टि प्रस्तुत कर सका। वह पुनः कहता है—

"तरगो की अङ्ग सचालन क्रिया, अविराम प्रवाह, पुन पुन' आकाश के प्रति उठ उठकर चुम्बन चेष्टा, सहस्रो भगिमायें, उठ उठकर बारम्बार गिरना, गिर गिर उठने की शक्ति प्राप्त करना, उत्थान व पतन के बीच इतना ही विराम प्राप्त कर क्रमश बढ़ते ही जाना प्रत्यक्ष कर कवि के हृदय का, आदि सृष्टि के रहस्य का बन्द द्वार खुल जाता है"। ४

३—प्रबन्ध पद्य पृष्ठ १५६

४— " "

यह है छायावादी कविता की मूल चेतना, जिसे भूलकर कोई उसे अतृप्ति का विस्फोट कहता है, कोई मात्र आत्म ज्ञापन, कोई असन्तोष की निराश अभिव्यजना किन्तु जैसे हाथी न केवल सूँड़ है, न केवल कान, न मात्र पैर, उसी प्रकार इतिवृत्तात्मक काव्य के विरुद्ध उक्त भाव-धारा का प्रवेग जो बहा, जिसमें योरोप मे पहले ही शैले, बायरन अपनी कविता सुधा मिला चुके थे, जिसमे रवीन्द्र ने अपनी "कागज की नाव" सफलता से छोड़ दी थी।१ वही भावधारा भारतीय दर्शन की पुष्ट पृष्ठ भूमि को पाकर छाया-वादी कला मे विकसित होती गई। परिस्थितियो की कड़ी मार से उसमे व्यक्तिगत आशाओ निराशाओ की अभिव्यञ्जना भी हुई, पलायन व स्वप्न भी चले और साथ ही उक्त अलौकिक सर्व व्यापक चेतना का स्पर्श की अनुभूति भी कवि के प्राणो मे रही, सारी विराट प्रकृति उसके सम्मुख हसती सी पहचानी "सी हो गई क्योकि प्रकृति व पुरुष" के संयोग व सम्भोग से कवि परिचित हो गया था। (अत छायावाद शैलीमात्र नही रहा जैसा कि कुछ लोग समझते है) जब कवि कहता है कि 'कौन तम के पार रे कह' तो जिज्ञासा प्रकट करता है न कि उस अज्ञात सत्ता के प्रति अपनी अनास्था को प्रकट करता है। जीवन के उत्थान पतन उस चेतना के परिचय को और भी गाढ़ा करते चलते है और छायावाद के कवि के अनुसार इन्हीं संघर्षों में से व्यक्ति उस मधुर आश्रय को न भुलाता हुआ आगे बढ़ता जाता है। क्योकि विराम व पश्चाताप का तो अवसर है ही कहाँ। इस प्रकार हमने देखा कि निराला को उस शाश्वत-चेतना के स्पर्श से कितना बल, कितनी प्रेरणा मिली है। उसे वह उत्थान पतन के बीच रुक जाने का कारण नहीं मानता प्रगति का कारण मानता है, उसे वह एकाँगिता में निमग्न कर देने वाला स्वीकार नहीं करता अपितु हृदय के आँचल को फैलाकर

१—Paper Boat नामक कविता।

उसका सम्बन्ध अनन्त रमणीय प्रकृति से जोड़ देता है और तब छायावादी कला निखर उठती है।

'वेदान्त' के सम्बन्ध मे कवि का दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाने के पश्चात् हम सक्षेप मे हम यह देख लें कि निराला जी में उसके विशुद्ध दार्शिनिक स्वरूप की अभिव्यजना कहाँ तक हुई है।

शाँकर वेदान्त का प्रसिद्ध सूत्र है "ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर" अर्थात् ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है, जीव और ब्रह्म एक है। जीव व ब्रह्म की एकता के कारण (द्वैत=दो अ= नही) यह 'अद्वैत' वाद कहलाता है। किन्तु वेदान्तियों के कई स्कूल है जिनमे रामानुज जैसे विशिष्टाद्वैत-वादी, वल्लभ जैसे शुद्धाद्वैतवादी आदि शंकर के बाद के आचार्य भी है किन्तु शकर के परवर्ती आचार्यों ने जगत को मिथ्या नहीं माना, जीव की परवशता भी स्वीकार की है किन्तु ब्रह्म का अवयव या अश मान कर अद्वैत तत्व की रक्षा की है, किन्तु निराला पर शकर के वेदान्त का प्रभाव पाया जाता है। शकर के वेदान्त के पीछे बौद्धो का शून्यवाद व सर्व क्षणिकवाद था। अत. शकर ने उपनिषदो के अद्वैत की जो व्याख्या की उसमे जगत के मिथ्यात्व व केवल अवाङ्ग मनस् गोचर अकल, अनीह, निर्विशेष ब्रह्म का रूप लिया, जगत के मिथ्यात्व पर अधिक जोर होने के कारण उन्हे "प्रच्छन्न बौद्ध" भी कहा जाता है, शंकर के अनुसार शब्द स्वतः प्रमाण है। ब्रह्म ही एक सत्य है, अनादि काल से चली आती हुई अविद्या के कारण ही यह अनेक भेद दिखाई पड़ते हैं, जिससे आवागमन का दुःख जीवात्मा को बन्धन मे डालता है, "एक आत्मा ही सत्य है" इस ज्ञान से ही यह बन्धन कट सकता है। ब्रह्म किसी भी प्रकार के विशेषण से रहित—निर्विशेष चित् मात्र है, संसार की सारी वस्तु सत्ता नश्वर है। किन्तु वह चिन्मय शक्ति शाश्वत है, यही शक्ति आत्मा है, उस एक ही सत्य से सब प्रकाशित

हो रहे है ※।

मनुष्य को जो 'मैं जानता हूँ' का अनुभव होता है वह उसी प्रकार भ्रमोत्पादक है जैसे सीप मे चाँदी, या रस्सी मे सर्प की भ्राँति। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के भेदों को छोड़ कर हम केवल अनुभव मात्र ले सकते है × क्योकि भेद न आदि मे रहता है न अन्त मे, वर्तमान मे भी भेद की सत्ता नहीं रहती अत. एकता का अनुभव मात्र ही सत्य रहता है अत ब्रह्म के अतिरिक्त जब मनुष्य यह सोचता है कि "मै मनुष्य हूँ" तो वह अध्यास (भ्रम) के कारण होता है। सम्पूर्ण अवस्थाओ मे हमे यह अनुभव नहीं होता कि 'मैं जानता हूँ' यथा गाढ़ निद्रा (Deep sleep) और मूर्च्छा मे उसका अनुभव नहीं रहता किन्तु उक्त अवस्थाओ मे भी 'आत्मा का अह रहित' + अनुभव होता है अत' अहं का अस्तित्व व जीव की अलग से कल्पना भ्रम पूर्ण है, एक ही सत्ता ब्रह्म है जिसके अतिरिक्त जब हम 'जीव' को उससे अलग मानते है तो अविद्या के कारण ही मानते है—'ब्रह्म पर पड़ा अविद्या का पर्दा जीव' को उत्पन्न करता है। यह तो हुई ब्रह्म व जीव की एकता।

दृश्य जगत की सत्ता केवल वर्तमान मे ही है, उसका आदि है और अन्त भी है परिवर्तनशीलता इसका प्रमाण है—

आदौ अन्ते चयत नास्ति वर्तमानेऽपि तत तथा। वस्तुतः जगत तीनों कालो मे नही है "जगत है" मैं जगत की कल्पना भ्राँति मूलक है और 'है' ब्रह्म का अपना स्वरूप 'है' यदि यह हैं (अस्ति)

※ It is the universal 'self' which is immanent as well as Transcendent, The whole universe lives and breathes in it "The moon and the sun are its eyes, The four quarters of the sky its ears the wind its breath" By Sri Radha Krishna in Indian Philosphy. 157 page.

परिवर्तन नहीं होता, अतात्विक परिवर्तन जिसे विवर्त कहा जाता है, के कारण ही जगत का आभास होता है यथा तात्विक परिवर्तन का उदाहरण है दही जो दूध मे विकार आने से बनता है. निश्चय रूप से जगत ब्रह्म रूपी दूध से विकृत होकर 'दधि' के समान नहीं है परन्तु रज्जु को देखकर हमे सर्प का भ्रम होता है यहाँ सर्प रज्जु का विवर्त है, यह अतात्विक परिवर्तन हुआ। क्योंकि अतात्विक परिवर्तन उसे कहेंगे जिसमे वस्तुओं की सत्ता भिन्न प्रकार की होगी यथा रज्जु की सत्ता से सर्प की सत्ता भिन्न होगी किन्तु दूध से विकृत होकर भी 'दही' की सत्ता दूध की सत्ता से भिन्न नहीं है। अत: जगत ब्रह्म का विवर्त है, जगत की सत्ता भ्रम के कारण दिखाई पड़ती है, इस भ्रम को दूर करने के लिये ही ब्रह्म विद्या की आवश्यकता है। अपने को ब्रह्म समझना, जगत को भ्रम या माया समझना (तत त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि) ही मुक्ति का उपाय है।

वेदान्त के दर्शन का सारांश यही है, निराला जी वेदान्ती है, वे ब्रह्म को सत्य, जगत को मिथ्या (स्वप्न नही) और जीव ब्रह्म की एकता मे विश्वास रखते है, जगत के मिथ्यात्व से सम्भावित हानि को एक विचारक ने इस प्रकार दिखाया है—

" आदि अन्त मे नदारद, वर्त्तमान मे भी वैसा" के अनुसार यह जगत वस्तुतः है ही नही, फिर यह प्रतीत क्यों हो रहा है (प्रत्यक्ष अनुमान से ज्ञात) यही तो माया है—माँ माया, बाप भी माया···उपकार भी माया, अपकार भी माया, गरीब की काम से पिसती भूख से तिलमिलाती अन्तड़ियाँ भी माया, निकम्मे अमीर की फूली हुई तौंद और ऐंठी मूछें भी माया, कोड़ो से लो-लुहान तड़फता दास भी माया और बेकसूर पर कोड़े चलाने वाला जालिम मालिक भी माया, चोर भी माया, साहु भी माया,··· हिटलर की हिंसा भी माया, गाधी की अहिंसा भी माया,······ धर्म भी माया, अधर्म भी माया,·········। जगत जादू है, माया, है और कुछ नहीं······यह है शंकर का मायावाद जो कि समाज की हर विषमता

का हर अत्याचार को अक्षुण्ण अछूता रखने के लिये जबरदस्त हथियार है।*

राहुल जी ने 'मायावाद' पर जो रोष प्रकट किया है वह सत्य है, मध्यकालीन विकृतियो का एक मुख्य कारण 'मायावाद' भी है, सारी निराशा व पलायन का वही उत्तरदायी है, किन्तु वही वेदान्त दर्शन अगरेजो के आगमन के पश्चात किस प्रकार जागृति का साधन बनाया गया है यह हम विवेकानन्द व निराला जी के विवेचन मे देख चुके है! निराला भी जीव ब्रह्म की एकता मे विश्वास रखते है किन्तु उन्होने उस दर्शन मे विश्वास रखते हुये भी मनुष्य जीवन के घात-प्रतिघातों को, उसकी सम विषम परिस्थितियों को ध्यान से देखा है, समाज के ढाँचे को शाश्वत मानकर अपनी वृतियो का अन्तर्मुखी करके अपने स्वरूप मे स्थित होने से वे दूर रहे है, उन्होंने मनुष्य के दुख पर आँसू बहाये है, अत्याचार को देख कर वह तिलमिलाया है, समाज की विपन्नता और दम्भियों की समृद्धि पर उसने दाँत पीसे हैं, और साथ ही उस अनन्त सता की खोज मे विकल-विरहिणी आत्मा को भी मुखरित किया है, उसने हीरे की खान को पास ही बता कर उसे बाहर खोजने को भी नादानी कहा है और अधिवास छोड़ने की भी बात कही है।

पास ही है हीरे की खान,
ढूँढता कहाँ उसे नादान।
छुटता है यद्यपि अधिवास,
किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास॥

अत. निराला काव्य मे वेदान्त के विश्वासो के रहने पर भी, मानववाद निखर उठा है उसने 'चोर भी माया और साहु भी माया, कह कर प्रस्तुत प्रश्नों को नहीं टाला, यही कवि की प्रगतिशीलता है अन्यथा विश्वासों की दृष्टि से वह घोर

---

* राहुल साँकृत्यायन, दर्शन-दिग्दर्शन पृष्ठ ८०७।

आदर्शवादी दार्शनिक है।

'परिमल मे प्रायः अनेक कवितायें उक्त वेदान्त के तत्वो से अभिमडित की गई हैं पहली कविता "मौन" मे उस निर्द्वन्द्व स्थिति का स्मरण किया गया है जहाँ जीवन का ज्वार शान्त हो जाता है—

जीवन, प्रात के लघु पात से,
उत्थान पतना घात से
रह जाय चुप, निर्द्वन्द्व

'परिमल' में उस 'चिरन्तन सत्ता' को प्रिया के रूप में कल्पित करके उसके प्रति कवि हृदय के सम्बन्धो की वाणी दी गई है अन्तिम मिलन की अवस्था 'मुक्ति' का चित्र देखिये—

मिल गये एक प्राणय में प्राण,
मौन, प्रिय, मेरा मधुमय गान।

पचवटी प्रसंग मे 'कवि' ने अपने 'दर्शन' को राम के मुख से इस प्रकार कहलाया है.—

व्यष्टि और समष्टि मे नहीं है भेद,
भेद उपजाता भ्रम
जिस प्रकाश के बल से
सौर ब्रह्माण्ड को उद्भास मान देखते हो
उससे नहीं वञ्चित है एक भी मनुष्य कोई
व्यष्टि औ समष्टि मे समाया वही एक रूप
चिद्घन—आनन्द कन्द।
आती जिज्ञासा, जिज्ञासु के मस्तिष्क में जब
भ्रम से बच भागने की इच्छा जब होती है।
चेतावनी देती जब चेतना कि छोड़ो खेल
जागता है जीव तब,
योग सीखता है वह योगियों के साथ रह,
स्थूल से वह सूक्ष्म, सूक्ष्माति सूक्ष्म हो जाता

मन, बुद्धि, और अहंकार से है लड़ता जब,
समर में दिन दूनी शक्ति उसे मिलती है ॥
क्रम क्रम से देखता है,
अपने ही भीतर वह
सूर्य, चन्द्र ग्रह तारे
और अनगिनित ब्रह्माण्ड-भाण्ड
देखता है स्पष्ट तब,
उसके अहङ्कार में समाया है जीव जग
होता है निश्चय ज्ञान—
व्यष्टि तो समष्टि से अभिन्न है

आगे लक्ष्मण पूछते है कि सृष्टि किस प्रकार होती है तो राम पुनः कहते हैं—

जिनकी इच्छा से संसार मे संसरण होता—
चलते फिरते हैं जीव,
उन्हीं की इच्छा से फिर सजती है सृष्टि नई। *
उन के लिये लाल देखो,
क्या है अकार्य यहां?
मुक्त जो हो जाता है, फिर नहीं वह लौटता

इस गूढ़ दर्शन के पश्चात् सीता पूछती है—

सीताः—यह है बड़ा जटिल भाव
भक्ति कथा कहो नाथ
रामः—भक्ति—योग—कर्म—ज्ञान एक ही है
यद्यपि अधिकारियो के निकट भिन्न दीखते हैं।
एक ही है, दूसरा नहीं है कुछ
द्वैत—भाव ही है भ्रम

* मिलाइये " स ईच्छा चक्रे, सोऽकामयत,

—श्रुति

तो भी प्रिये—भ्रम के ही भीतर से
भ्रम के पार जाना है
मुनियों ने मनुष्यों के मन की गति
सोच ली थी पहले ही।
इसलिये द्वैत—भाव भावुकों में—
मुक्ति की भावना भरी—
प्रेम के पिपासकों को—सेवा जन्म प्रेम का
जो अति ही पवित्र है
उपदेश दिया।
सेवा से चित्त शुद्धि होती है
शुद्ध चित्तात्मा में उगता है प्रेमाङ्कुर
चित्त यदि निर्मल नहीं
तो वह प्रेम व्यर्थ है।
पशुता की ओर है वह खींचता मनुष्य को॥

हमने पहले ही कहा था कि, स्वा० विवेकानन्द जी के यहाँ 'भक्ति व वेदान्त में विरोध नहीं क्योंकि जगत के सम्पूर्ण रूपों को एक ही चैतन्य का प्रकाश समझकर शक्ति पूजा, देव पूजा आदि में विरोध नहीं आता। निराला में भी भक्ति का ऐसा ही सन्निवेश मिलता है। अधिकारी भेद से 'भक्ति' का 'शंकर' ने भी स्थान दिया था। बाबू गुलाबरायजी ने लिखा है, आप [निराला] ब्रह्म-वाद से प्रभावित अवश्य है, किन्तु ब्रह्मलीन होकर अपने व्यक्तित्व को खो देने के पक्ष में नहीं हैं। भक्तों की भाँति आप ईश्वर के साथ, चन्द्र चकोर का सा ही सम्बन्ध रखना चाहते हैं।* बाबूजी ने प्रमाणस्वरूप 'परिमल में' संग्रहीत 'पञ्चवटी प्रसंग' से ही निम्न पंक्तियाँ उद्धृत की हैं—

---

(१) हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास पृष्ठ २६२

मुक्ति नहीं जानता मैं, भक्ति रहे काफी है
सुधाधर की कला में अंशु यदि बन कर रहूँ मैं—
तो अधिक आनन्द है,
अथवा यदि होकर चकोर कुमुद नैश गन्ध—
पीता रहूँ सुधा इन्दू-सिन्धु से वरसती हुई
तो सुख मुझे अधिक होगा
इसमे सन्देह नहीं—
आनन्द बन जाना हेय है
श्रेयस्कर आनन्द पाना है।

किन्तु यह उक्ति लक्ष्मण की है, जो प्रथम ही स्वीकार करते है कि मै 'मुक्ति नहीं जानता" अतः मेरे लिये 'भक्ति' ही पर्याप्त है। उन्होने पहले ही कहा है—

जीवन का एक ही अवलम्ब है एक सेवा,
है माता का आदेश यही
माँ की प्रीति के लिये ही चुनता हूँ सुमन दल
इसके सिवा कुछ भी नहीं जानता

आगे 'माता' को लक्ष्मण जी उस अनन्त शक्ति के रूप में देखते है जिसके कटाक्ष से करोड़ो शिव विष्णु आज, कोटि इन्द्र सुरासुर·········बनते-पहले है, नष्ट होते है अन्त मे, जिसकी श।क्त से शक्तिशालियो मे सत्ता है, प्रणव से लेकर प्रति मत्र के अर्थ में जिसके अस्तित्त्व की ही दृढ छाप दीखती है, वही उनकी माता है इस आदि शक्ति-स्वरूपा माता की भक्ति की चर्चा लक्ष्मण जी करते हैं अत यहाँ निराला जी पुन भक्ति व वेदान्त मे अविरोध दिखाते हैं, लक्ष्मण जैसे अ।दर्श सेवक के लिये भक्ति ही मुक्ति है, उनके लिये अव्यक्त-स्थिति की प्राप्ति नही है, वह तो 'राम' के लिये है जो मुक्ति को जानते है—किन्तु द्वैत-भाव-भावुकों मे भक्ति की पवित्र भावना, वे देखना चाहते है क्योकि यह चित्त शुद्धि का कारण और क्रमश. ऊर्ध्व गति की ओर ले जाने वाली है।

राम स्पष्ट कहते हैं—

भक्ति-योग, कर्म, ज्ञान एक ही है
यद्यपि अधिकारियों के निकट भिन्न दीखते हैं
एक ही है, दूसरा नहीं है कुछ
द्वैत-भाव ही है भ्रम

अतः अद्वैतवाद में पूर्णतः आस्था रख कर भी निराला द्वैत-भाव-भावुकों को भक्ति का उपदेश देते हैं।

उनके दार्शनिक विचार 'जागरण' 'तुम और मैं' कविताओं में प्रधानतया व्यंजित हुये हैं। 'जागरण' में विशुद्ध 'वेदान्त' की ही अभिव्यक्ति है और हमने जो उसका सारांश संक्षेप में दिया है उसके साथ इन कविताओं की तुलना करने पर कवि का विचार स्पष्ट हो जाता है।

मायावाद— संसार माया है—नश्वर है—

भेद कर मायावरण, दुस्तर तिमिर घोर-जड़ावर्त
अगणित तरङ्ग-भङ्ग......
स्पृहाहत जङ्गमता—
नश्वर संसार
सृष्टि पालन, प्रलय-भूमि,
दुर्दम अज्ञान-राज्य-
मायावृत 'मैं' का परिवार ....
अस्तित्व जीवन का महामोह*
बोलूँ अल्प न करूँ कल्पना,
सत्य रहे, मिट जाय कल्पना
× × ×
रे कुछ न हुआ तो क्या!
जग धोका, तो रो क्या

---

*'जागरण' से

सब छाया से छाया, नभ नीला दिखलाया
तू घटा और बढ़ा, और गया और आया
होता क्या, फिर हो क्या।
रे कुछ न हुआ, तो क्या।
मुक्ति प्रति पद पराजित भी अप्रतिहत बढ़ता रहा
पहुँचा मै लक्ष्य पर।
अविचल निज शाँति मे,
क्लान्ति सब खो गई—
डूब गया अहंकार
अपने विस्तार मे—
टूट गये सीमाबन्ध—
छुट गया जड़ पिण्ड-
ग्रहण देश-काल का
निर्बीज हुआ मैं—
पाया स्वरूप निज
मुक्ति रूप से हुई......
ज्योतिर्मय चारो ओर-परिचय सब अपना ही।
स्थित मै आनन्द मे चिर काल जाल मुक्त।
ज्ञानाम्बुधि बीचि रहित।

'जुही की कली' मे भी 'आत्म—परमात्म' मिलन की ओर सकेत है—

चौक पड़ी युवती, निज चारो ओर
हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हसी खिली
खेल रङ्ग, प्यारे सग

'अणिमा' मे भी—

उठी है तरग, बहा जीवन निस्संग,
चला तुमरो मिलन को,

खिलने को फिर फिर भर भर

और गीतिका मे भी—

सोचती अपलक आप खड़ी
खिली हुई वह विरह वृन्त की,
कोमल कुन्द-कली
चमका हीरक हार हृदय का,
पाया अमर प्रसाद प्रणय का
मिला तत्व निर्मल परिणय का
लौटी स्नेह भरी।❀

इसके पश्चात जागरण मे ही सांख्य दर्शन के अनुसार त्रिगुणात्मक प्रकृति की सहायता से सृष्टि के विकास को कवि दिखलाता है, वेदान्त ने सृष्टि विकास की प्रतिक्रिया साँख्य से ही ली है ईश्वर का और सयोग कर देने के कारण इसे सेश्वर साँख्य भी कहा जाता है देखिये—

इच्छा हुई सृष्टि की,
प्रथम तरङ्ग वह आनन्द सिंधु में,
प्रथम कम्पन में सम्पूर्ण बीज सृष्टि के,
पूर्णता से खुला मै पूर्ण सृष्टि—शक्ति ले,
त्रिगुणात्मक रचे रूप,
विकसित किया मन को..........
बीचियाँ ही अगिनित शुद्ध सच्चिदानन्द की।

आगे भारत के ऐतिहासिक विकास को दिखाता हुआ कवि उपनिषद काल के उस ज्ञान की उपलब्धि का वर्णन करता है जो ससार के लिये एक अद्भुत देन है—

चिर अधीरता पर
विजय गर्व से उड़ती हुई

❀ अणिमा से—पृष्ठ १२

व्योम पथ पर,
सोऽहम् का शान्त स्वर
भरा हुआ प्रति-मुख मे,
'अगावप्युचितम्' विशाल हृदय,
मुक्त द्वार खुला था
सदा ही ससार को
शिक्षा देने के लिये
'तत्त्वमसि' महाज्ञान।

प्रथम स्तम्भ—विटप—मूल, छायाच्छद, शिक्षा उदारता,
विश्लेषण चरम एकत्व का बहुत्व में—

इस प्रकार निराला का कवि उपनिषद् की चिन्ताधारा के अनुसार बहुत्व से 'एकत्व' की ओर उन्मुख हुआ है। इस 'एकत्व' को समझते हुये भी चूँकि भ्रम द्वारा ही भ्रम को दूर करता है अतः वह भक्ति भावना को उपरोक्त सिद्धान्त का विरोधी न मान कर सहायक ही समझता है। इस सूत्र को ध्यान से विस्मृत कर देने पर ही प्राय. निराला के विषय मे कहा जाता है कि उनमे विचार की एक सूत्रता नहीं मिलती कहीं वे वैराग्य का उपदेश देते है, कहीं भक्ति का, कही अद्वैत वाद का समर्थन करते है कही द्वैतवाद का 'तुलसीदास' काव्य मे भी कवि ने 'रत्नावली' के भौतिक रूप को अनन्त-शक्ति स्वरूपा भारती के रूप मे दिखाया है, क्षुद्रता मे विराटता का यह प्रदर्शन द्वैत स्थिति का निर्देशक नही अपितु अद्वैत स्थिति का ही प्रतिपादक है—

चमकी तब तक तारा नवीन
द्युति नील-नील, जिसमे विलीन,
हो गई, भारती, रूप-क्षीण महिमा अब
आभा भी क्रमश. हुई मन्द
निस्तब्ध व्योम, गति रहित छन्द,

आनन्द रहा, मिट गये द्वन्द्व, बंधन सब।
अपनी असीनता में अवसित प्राणाशय।

"तुम और मैं" शीर्षक कविता मे दार्शनिक विश्लेषण जागरण जैसा नही है। वहा ब्रह्म व जीव के सम्बन्ध की काव्यात्मक अभिव्यक्ति की गई है। यहाँ पहले 'तुम' और मैं का अन्तर समझ लेना होगा, 'तुम' का अर्थ है पूर्ण परब्रह्म, चैतन्य, हिरण्यगर्भ, और 'मैं' का अर्थ है 'मायोपाधि सहित जीवात्मा' अर्थात् वह जीव जो तत्वत ब्रह्म ही है किन्तु जिसे माया की उपाधि के सम्पर्क के कारण अपने 'मैं' का अभिमान है, स्मरण रखना होगा कि यहाँ 'मैं' का अर्थ अपने पन के अभिमान से मुक्त 'आत्मा' का सम्बन्ध उस चिन्मय शक्ति से दिखाया गया है। अत जहाँ द्वैत की स्थिति इस कविता मे दिखाई पड़ती है वहाँ वह माया की उपाधि के कारण है न कि तात्विकदृष्टि से। यहाँ आत्मा को शकर के परवर्ती आचार्यों की भाँति 'अणु के समान नहीं कहा गया अपितु नित्य शुद्ध ब्रह्म ही, नाम, रूप की उपाधि से—अध्यास मे अपने को भूल कर "मैं" समझने लगता है, इसी 'मैं' का 'तुम' से सबन्ध इस प्रकार दिखाया गया है—

१—तुम हिमालय हो मै नदी हूँ
२—तुम शुद्ध सच्चिदानद ब्रह्म हो, मै मनोमोहिनी माया हूँ।
३—तुम करपल्लव से झंकृत सितार हो, मै उसी से निकलने वाली विरह रागिनी हूँ।❀
४—तुम नभ हो, मै नीलिमा हूँ
५—तुम शरदकाल के बाल इन्दु हो—मै निशीथि की मधुरिमा हूँ।
६—तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष हो, मै प्रकृति प्रेम जजीर से परवश हूँ।

(❀) महादेवी ने भी लिखा है—
बीन भी हूँ तुम्हारी रागिनी भी हूँ।

७—तुम रामचन्द्र, मैं सीता-अचला-भक्ति हूँ

८—तुम नन्दन वन के विटप और मैं उसकी शाखा हूँ।

यहाँ ब्रह्म को उद्गम स्थान और आत्मा को उससे निर्गता सरिता के समान कहा गया है। नभ और नीलिमा मे क्या अन्तर है यह कहना असम्भव है, इन्द्र से ज्योत्सना को विलग नहीं किया जा सकता, उपनिषद मे भी कहा गया है कि सूर्य का प्रतिबिम्ब जल मे पड़ता है, जल की (माया) के सम्पर्क से वह विभिन्न क्रीड़ा करता हुआ दिखाई पड़ता है परन्तु जल के सूख जाने पर वहाँ प्रतिबिम्ब जैसे सूर्य बिम्ब से अभिन्न है उसी प्रकार आत्मा व ब्रह्म के सम्बन्ध समझना चाहिए। गीतिका मे कवि ने स्पष्ट कहा है—

स्पर्श मणि तू ही, अमल, अपार,
रूप का फैला पारावार,
व्यष्टि मे सकल दृष्टि का सार
कामिनी की लज्जा, शृंगार
खोलते खिलते तेरे प्राण
खोजता कहाँ उसे नादान ॥

और

तुम्हीं गाती हो अपना गान
व्यर्थ मे पाता हूँ सम्मान।

अणिमा मे एक और 'तुम और मैं' शीर्षक कविता है जिसमें संघर्षों के कारण कवि का जब सर झुकता है, (१) जब वह दुनिया से धोखा खाकर गिर जाता है तब वह आदि शक्ति, जल बिन्दु के समान उसे बादलों मे परिवर्तित कर देती है, जल बरसता है, ससार की जलन मिट जाती है फिर वही जल कली के रूप में खिलता है, जब मालिन उसे तोड़ कर माला मे पिरोती है तो वह

(❀) वर्षा होने पर जल का मिट्टी पर गिरना मानो ब्रह्म का माया के सम्पर्क मे आना है।

(आत्मा) सौरभ बन कर पुनः उड़ जाता है।

रहता हूँ अविकच कलिका के—
जीवन मे जीवन खोकर
जब वह खिलती,
आँखे लड़ा लड़ा कर मिलती
उसे तोड़ कर,
मालिन सुई चलाती है मुँह मोड़ मोड़ कर,
मैं खुशबू मे उड़ता हूँ तब,
उसी गगन पर, मुक्त पख भर,
धरा छोड़ कर

निराला के अद्वैत-वाद मे कही कोई ऐसी असगति नहीं मिलती जिससे यह प्रमाणित किया जा सके कि कवि उपनिषद्-के विश्वात्मवाद के सम्बन्ध मे सन्देहो का पूर्णतया अपने मन से निवारण नहीं कर सका, बाध्य जीवन के सघर्षों से उठने वाली चिन-गारियों मे 'निराला' उस प्रकाश को पहचानता है किंतु कवि का स्वर मानवता वाद को लेकर प्रारम्भ से ही चला है। अत उसका दर्शन Dogma होकर नही रह गया अपितु उसके लिये वह प्रेरणा और शक्ति का सम्बल बना। प्रारम्भिक कविताओ मे भारतीय दर्शन का पूर्ण प्रतिबिम्ब वहाँ मिलता है किन्तु सघर्षों की कटुता मे कवि व्यष्टि की ओर से समष्टि की ओर क्रमश. गतिवान होता जाता है, और बीच-बीच मे अपने विश्वासो को कभी कभी दुहराता चलता है।

उपनिषद्—शकर और निराला.—हमने इस ओर सकेत किया है कि उपनिषदो के दर्शन में एकता रहने पर भी विचारो की भिन्नता मिलती है,, सभी पर वहो दार्शनिकों की अपने अपने दृष्टि-कोण की पुष्टि के लिये पर्याप्त प्रमाण उपनिषदो मे बराबर मिलते रहे है द्वैत वादी, अद्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी सभी परस्पर विरोधी मत उपनिषदो के मन्त्रो की व्याख्या अपने २ तर्क को पुष्ट करने के लिये करते है, शकराचार्य ने भी उपनिषदो की जो व्याख्या की उनमे,

कुछ तत्वों पर अधिक जोर दिया गया है, आज प्रायः वेदान्त से हम शांकर वेदांत का अर्थ ले लेते है इसीलिये हमने सर्वप्रथम उसी का सारांश ऊपर दिया है और निराला की कविताओं से उन उद्धरणों को पकड़ा है जो मायावाद, अद्वैतवाद, ब्रह्म जीव एक्य, आदि को पुष्ट करते है किन्तु एक बात पर हमने बराबर जोर दिया है, है कि निराला पर स्वा० विवेकानन्द की व्याख्या का विशेष प्रभाव है, इसका परिणाम यही हुआ है कि स्वा० विवेकानन्द की तरह निराला 'जागरण' 'पचवटी' आदि जैसी कविताओं को छोड़कर दार्शनिक ऊहापोह में नहीं पड़ते उनका ध्यान बराबर जीवन और जगत की स्थिति, उन्नति और अभ्युदय की ओर रहता है। जीवन की महानता के लिये 'आत्मवाद' का सिद्धान्त उन्हे मान्य है किन्तु घोर पीड़ा और करूणापूर्ण क्षणो मे वे विवेकानन्द के समान ही 'पहले रोटी पीछे धर्म' की घोषणा करने लगते है × स्वामी रामतीर्थ ने जिनका व्यक्तिगत साधना पक्ष पर जोर अधिक रहता था वेदान्त का उपयोग बताया है, किसी ने पूछा कि वेदान्त के अनुसार क्या हमे सन्यास ले लेना चाहिये, तब स्वामी राम ने कहा था कि वेदान्त के अनुसार त्याग और सन्यास का सम्बन्ध मनुष्य के कार्य, स्थान, पद तथा अन्य कार्यो से नही है, यह तो मनुष्य को अपने 'स्व के पहचानने मे पथ प्रदर्शन का कार्य करता है, उसकी शक्ति को द्विगुणित करता है, सारे दु:ख, भयादि नष्ट कर देता है, मनुष्य निर्भय और प्रसन्न हो जाता है।

Vedanta Philosophy never teaches that retiring into forest, is renunciation, renunciation has nothing to do with your place, position, on your bodily work. It has nothing to do that, Renunciation simply places you at your best, places you on your vantage—

× देखिये अधिवास नामक कविता।

ground. Renunciation, strengthens your force and makes God of you. It takes away all your sorrow. it takes away all your anxiety and fear, you be come fearless and happy

पुनर्जागृति काल के प्रचारको के लिये वेदान्त की प्रतिष्ठा जातीय एवम् राष्ट्रीय चेतना के भड़काने तथा उसके साथ विश्व मानवता वाद की ओर ले जाने के लिए हुई थी। शंकराचार्य निवृत्ति-पक्ष पर अधिक बल देते हैं, सम्पूर्ण गोचरीभूत जगत के मिथ्या होने के कारण, साँसारिकता के पंक मे आकण्ठ निमग्न रहना मूर्खता है, पृथ्वी के सभी पार्थिव भोगों का सर्वथा अपलाप करना—उनसे दूर रहना ही श्रेयस्कर है, शंकर के यहाँ ब्रह्म के निर्विशेषत्व के कारण ज्ञान पर, और जगत के मिथ्यात्व के कारण वैराग्य पर अधिक जोर है यद्यपि व्यवहारिक सुविधा के लिये नित्यानित्य वस्तु विवेक, फल-भोग से रहित रहना, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधि और मुमुक्षत्व के लिए व्याकुलता आदि साधन बताये गये है।

शंकर को शून्यवादी, अनात्मवादी, नास्तिक बौद्धो के विरुद्ध खड़ा होना था, उनका निर्विशेष ब्रह्म तथा मायावाद जड़वादी बौद्धो को परास्त करने मे सफल रहा किन्तु वह स्वय एक अजब भूल भुलइयाँ बन कर रह गया वह एक वर्ग विशेष के लिये जो समाज से प्राय पराङ्मुख होकर घोर एकांगिता के नशे मे डूबे रहते थे, थोथी तार्किकता और असाधारण अहमन्यता प्रदर्शन का बहाना मात्र था, यह वैराग्य पक्ष पर इतनी दूर चला गया कि पारिवारिकता की ईंटो से तथा मानवीय भावनाओ, स्नेह करुणा आदिके आलेप से निर्मित भारत का साँस्कृतिक दुर्ग उससे दृढ़ न हो सका, 'मायावाद' उसे धीरे धीरे क्षीण करता हुआ, विकृतियो का दाता बनता गया, वैराग्य और योग की रट लगाने वालो के विरुद्ध तभी बवण्डर उत्पन्न हुआ था और स्नेहमयी गोपी ने

पुकार कर कहा था—

निर्गुन कौन देश को बासी ?

ऐसा जान पड़ता है कि 'शंकर' के समय सामाजिक सम्बन्धो, समस्याओ और उनके हल को जब ठोस व्यावहारिक जगत मे कोई स्थान न मिल पाया तो ऐसे दर्शन उत्पन्न हुए जो समस्या को समझने का प्रयत्न न करके उसे झुठलाने का प्रयत्न करते. नागार्जुन का 'शून्यवाद' * व शंकर का 'मायावाद' दोनो ही सामाजिक दृष्टि से इसी कोटि मे आते है। परस्पर विरोधी होने पर भी स्वप्न, शून्य वादी बौद्धों व मायावादियो, दोनो की प्रवृत्ति यथार्थ से इन्कार करना ही रही है और इसी कारण दोनो दर्शनो का सामाजिक उपयोग दिन पर दिन कम होता चला गया। ११वीं शताब्दी मे रामानुज तथा उनके परवर्ती आचार्यो ने जो भक्ति का आन्दोलन खड़ा किया उसमे सबसे पहला प्रहार इसी 'मायावाद' पर था, यह सर्वविदित तथ्य है, ब्रह्म को निर्गुण व निर्विशेष न रखकर व्यक्त व अव्यक्त दोनों रूपो मे स्वीकार किया गया और उसकी मानवीय लीलाओ का गुणगान ही मोक्ष का साधन माना गया जैसे मानवतावाद की विजय का यह शखनाद था अतः विभिन्न भेदो मे बँटी हुई जनता सिमिट कर भक्ति के आन्दोलन के पीछे, एक हो सकी थी। 'हरि को भजै, सो हरि को होई', सभी को भक्ति का अधिकार मिल गया था, भक्ति का यह पन्थ सामाजिक पन्थ था, किन्तु जब वह भी वैयक्तिक साधनाओ मे निमग्न होता गया तो मनुष्य का सहजवृत्तियो को ओर झुकाव बढ़ गया और 'राधाकृष्ण का नाम लेना जैसे भोग की सब बाधाओं को हटाने का साधन बन गया, अँगरेजों के आगमन के पश्चात जो जागृति देश मे फैली उसने क्रम उलट दिया

---

*शून्यता से तात्पर्य है—बुद्ध का प्रतीत्य समुत्पाद—अर्थात विश्व व उसकी जड़-चेतन वस्तुयें किसी भी स्थिर अचल तत्व से बिल्कुल शून्य हैं।

अर्थात हमने पुन. वेदो उपनिषदो से--इधर को देखना प्रारम्भ किया, आर्यसमाज ने वेदो का आधार ही मुख्य माना, विवेकानन्द आदि ने वेदान्त की प्रतिष्ठा करते हुए भी मूर्तिपूजा आदि भावना प्रधान धर्म का समन्वय वेदान्त से कर दिया, जो वेदान्त अपने 'मायावादी दिनो मे बौद्धो के बाद अपना अभ्युदय व पतन देख चुका था, उसने पुनर्जागरण काल मे पुनः नवोत्थान पाया, किन्तु अब जगत के मिथ्यात्व के आधार पर नही—आत्मा के अमरत्व पर—ब्रह्म व जीव की एकता पर समाज किसी सीमा तक अपने को सँभ ल सकता था अत' परिस्थितियो ने विवेकानन्द, रामकृष्ण, रामतीर्थ जैसी शक्तियों को उछाल दिया और परिणाम स्वरूप उनसे प्रभावित निराला आदि कवियो पर वही ब्रह्म जीव की एकता के अहं ब्रह्मास्मि की अनुभूति का प्रभाव अधिक रहा, जिससे राष्ट्रीय दुर्धर्ष, अपराजित अहं का प्रस्फुटन हुआ, जिसने व्यक्ति वादी चेतना को गति देने में सहायता की, जिसने आचारवादी परम्पराओ के विरुद्ध बगावत खड़ी की और विश्व मानवता वाद की नींव पुष्ट की 'वेदान्त' के इसी पक्ष का कवि निराला मे यह उभार स्पष्ट कर देता है कि दर्शन किस प्रकार परिस्थितियो की ही उपज होती है, उपनिषदो ने जगत के भोगो का शंकर की तरह सर्वथा अपलाप नही किया था, उपनिषदो ने अपनी पूर्व परम्परा से प्राप्त याज्ञिक क्रियाओ को मानसिक रूप दिया, बाह्य-यज्ञविधान को प्रतीको के रूप मे लेकर उपनिषदों के दर्शन ने ब्रह्म की सत्ता-स्थापन द्वारा यज्ञ-वाद को प्रश्रय दिया और साथ ही बाह्य आचार की ज्ञान हीन उपासना की भर्त्सना की। अत. जहाँ एक ओर बाह्य क्रिया प्रधान स्थूल यज्ञ वाद के विरुद्ध औपनिषद ज्ञान प्रतिक्रिया के रूप मे आया वही उसने वर्ग स्वार्थ के कारण उस स्थूल धर्म का मानसिक रूप प्रस्तुत कर दिया, ब्राह्मणो के नेतृत्व के लिये यह आवश्यक था कि समाज की जो शंकायें स्थूल यज्ञ की सार हीन क्रियाओ के विषय मे उठ रही थी, विशेष कर क्षत्रियो के मस्तिष्कों में, उनका समाधान कर ब्राह्मण वर्ग एक बार पुनः

अपनी स्थिति दृढ़ करने मे सफलता के साथ लग जाय । प्रवाहण जैवलि एक ऐसा ही राजऋषि था. जिसने श्वेतकेतु आरुणेय को ब्रह्म विद्या का उपदेश दिया था । छान्दोग्य उपनिषद मे पहले ही आया है कि यह विद्या पहले क्षत्रियो के पासही थी ।जनक अजातशत्रु आदि ब्रह्म ज्ञान पर तभी अधिकार पूर्वक प्रवचन करते हुये दिखाई पड़ते है। इस समय ब्रह्म ज्ञान के उपदेशक दोनों प्रकार के थे, मुण्डक, परिब्राजक-सन्यासी भी और जनक, अजातशत्रु, प्रवाहण जैवलि, तथा याज्ञवल्क्य जैसे सम्पन्न गृहस्थ भी, आगे याज्ञवल्क्य जब सन्यास लेते है तो एक भारी सम्पत्ति के स्वामी जान पड़ते हैं अन्यथा कल्याणी व मैत्रयी मे उसके इतनी गम्भीरता से वितरण का प्रश्न ही नही उठता। तो उपनिषदो मे ब्रह्म विद्या तत्वबोध के कारण एक मानसिक तटस्थता के रूप मे सम्मुख आती है, जिसके लिये कर्मों का न्यास अनिवार्य नही है, विदेह होकर भोगा के पल्लवो में सुख से मनुष्य पल सकता है और साथ ही उसके ब्रह्म ज्ञान पर कोई आँच नहीं आ सकती, वेदो ब्राह्मणों द्वारा प्रतिपादित जटिल क्रिया-विधान से यह बौद्धिकता निश्चय आगे की वस्तु थी, किन्तु इस ब्रह्मज्ञान की खोज ने समाज के ढाँचे पर अंगुली नहीं रखी, ब्रह्म ज्ञानी यजमानों के साथ ब्रह्म ज्ञानी पुरोहित भी चलते रहे, यज्ञ का दान, अब दक्षिणा के रूप मे मिलने लगा, दासो की स्थिति पूर्ववत ही रही इतना बहुत था कि उन्हे विराट के पैरो के रूप मे स्वीकार कर लिया गया। अस्तु

याज्ञवल्क्य, शकर और विवेकानन्द तीन दार्शनिक तीन युगो मे तीन विभिन्न परिस्थितियो की उपज है, याज्ञवल्क्य से गार्गी, चाक्रायण, कौषीतकेय आदि के प्रश्नो से स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि दार्शनिक यज्ञ प्रक्रिया, सृष्टि विकास, देवताओ की स्थिति और उनका अपरोक्ष ब्रह्मसे सम्बन्ध, के विषय मे ही वे अधिक पूछे गये हैं और याज्ञवल्क्य उस एक ही ब्रह्म को सबकी मूल शक्ति के रूप में प्रमाणित करते हैं, जनक के साथ आत्मा ब्रह्म और सुषुप्ति

पर चर्चा होती है, मैत्रेयी के लिये दिये गये याज्ञवल्क्य के उपदेश मे भी आत्मा की महानता सर्व ज्ञातृत्व, अक्षेपत्व, सर्व व्यापकत्व पर ही अधिक कहा गया है, जगत के मिथ्यात्व वमाया की अनिर्वच नीयता पर नहीं। आरुणि के उपदेशो मे भी 'आत्मा' ब्रह्म की एकता बार बार प्रतिपादित मिलती है। शंकराचार्य ने आत्मा की अखण्डता व सर्व व्यापकता के साथ जगत के मिथ्यात्व पर, माया के सिद्धान्त पर तथा निर्वृत्ति पक्ष पर आवश्यकता से अधिक बल दिया है, माया विषयक ऊहापोह शंकर का अपना हैं जिसकी चर्चा हम कर चुके है, विवेकानन्द जी ने वेदान्त का उपनिषद आधार अधिक लिया है और इसीलिये निराला में भी विचार की वही पृष्ठ भूमि दिखाई पड़ती हैं किन्तु जैसा हमने देखा कि शङ्कर के दर्शन का अध्ययन निराला जी ने किया है और उनसे वे प्रभावित भी हैं।*

वेदान्त विषयक विचार धाराओ पर शकर का अद्भुत प्रभाव पड़ा है वेदान्त का नाम लेने पर प्राय: "शाँकर वेदान्त का' अनुमान हो जाता है, किन्तु शकर की कुछ अपनी व्याख्याये हैं यथा 'माया' आदि पर जिनका मूल तो उपनिषदो में अवश्य है— उपनिषद सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत माना जाता है, किन्तु व्याख्या की दृष्टि से एकता नहीं है, सक्षेप मे हम कह सकते है कि 'निराला' जी पर विवेकानन्द जो द्वारा लिये 'वेदान्त के उपनिषद आधार का प्रभाव अधिक है शङ्कर का कम, क्योंकि उनका ज्ञान, ज्ञान के लिये उतना नहीं है जितना समाज के लियेहै, शंकर मे निरपेक्षता वाद अधिक है, जबकि निराला में ज्ञान की सपेक्षता अधिक पाई जाती हैं, शाश्वत ब्रह्म–आत्मा की अनुभूति, अस्थिर–मायामय जगत के विरूद्ध नहीं पड़ती हैं और जब मानवता की मुक्ति का अन्त नीद कवि में प्रबल हो जाता हैं तो वह अपने सबसे बड़े प्रलोभन–अपवर्ग और अधिवास को भी छोड़ने के लिये प्रस्तुत हो जाता है,

* देखिये प्रबन्ध पद्म (लेखों का संग्रह)

यद्यपि उसका विश्वास यही है कि मनुष्य का चरम लक्ष्य नदी के समान उसी चेतना—सागर मे मिल जाना है ताकि पुनः इन बन्धनो मे न पड़ना पड़े अर्थात् कवि जन्ममरण के बन्धनों से मिलने वाली मुक्ति को टाल सकता है किन्तु जन जीवन की विषमता, पीड़ा दुःख दीनता को सहन नही कर सकता, इसीलिये निराला अद्वैत वादी भी है और द्वैतवादी* भी, भक्त भी और ज्ञानी भी, पुनरूत्थान वादी भी और क्राँतिकारी भी, लौह प्रहार तथा ललकार भी और आत्म-परमात्म-मिलन की मधुर झंकार भी, वह वैयक्तिक अनुभूतियों के स्वर्ग मे विचारने वाला मुक्त विहग भी है, और पतनोन्मुख रूढ़ि प्रिय संस्कृति की विहग-बालिका के लिये भयकर बाज भी, उसमे लौकिक प्रेम की ललक भी है और आध्यात्मिक भूमि पर अनुभूत आत्म-पुलक भी, निराला विरोधो का स्वयं सामञ्जस्य और सामञ्जस्यो का विरोध है। अतः अन्त विरोधो को देख कर जो समझते है कि निराला किसी एक विचार दर्शन का कवि नहीं-एक निश्चित विचार सरिणि का सृष्टा नही, वे सोचने से इन्कार करते है। गंगाप्रसाद पाण्डेय, जान पड़ता है, ऐसे ही व्यक्तियो में से एक है—देखिये—

"सच तो यह है कि निराला किसी भी निश्चित परिपाटी का कवि नहीं, व्यक्ति, नहीं, उनके सभी काम मन की मौज के अनुसार होते है।"

महाप्राण निराला पृष्ठ १८७

दार्शनिक विचार धारापर विचार कर लेने के पश्चात हम 'निराला' जी के अन्य विचार प्रस्तुत करने का सक्षेप में प्रयत्न करेंगे ये विचार कवि के लेख संग्रहो मे बिखरे मिलते है इनसे उनकी कला कृतियो के समझने में अमूल्य सहायता प्राप्त होगी।

———

* देखिये 'पञ्चवटी' कविता।

निराला और देश प्रेम

निराला का साहित्य विशुद्ध स्वदेशी भूमि पर अवस्थित है, यह कवि प्राचीन संस्कृति का भक्त और गुण गायक है, जातिगत परम्परा प्राप्त सस्कारों का उसे अभिमान है, वह विदेशों के अन्ध अनुकरण की घोर निन्दा करता आया है, उसके जागरण काल में बँगला व हिन्दी दोनो मे विदेशी रीति, नीति, साहित्य के दर्शन सभी के अनुकरण की प्रवृत्ति चल रही थी, कवि ने इसका विरोध किया है "किसी किसी साहित्यिक ने देश के ठक्कुरों को छोड़ कर विदेश के कुक्करो की पूँछ बुरी तरह पकड़ी है"※ इस अनुकरण के लिये उन्होंने 'पन्तजी' को भी 'डाँटा' था उन्होंने दिव्य रति को अतिशय लौकिकता से दूर रखने में भारतीय आदर्श की सर्वदा रक्षा की है पन्त "विश्व-कामिनी की पावन छवि मुझे दिखाओ करुणावान" के शृंगार मे अधिक डूबे रहते है व्यापक विश्व की कामिनी कैसी होगी यह पन्तजी ही बतलायें" निराला सर्वदा दिव्य शृंगार की दिव्यता का रक्षक रहा है क्योंकि कमनीयता को कामुकता बना देना भारतीय संस्कार के विरुद्ध रहा है निराला के अनुसार पन्त नारी के दिव्य भाव पर सफल नहीं हो सके, उनमें कई जगह साधारण भाव आ गये हैं छायावाद को काम वासना का विस्फोट कहने वालों को उक्त पंक्तियाँ विस्मृत न करनी चाहिए। निराला हमारी साँस्कृतिक पृष्ठभूमि पर ही खड़ा है. वह कमनीयता से अधिक विराटता, शक्ति और 'गति' का कवि इसीलिये बन पाया। निराला की भारतीय ऐतिहासिक पुरुषों पर, अतीत प्रेम पर लिखी कवितायें प्रमाण है कि कवि को देश की

※ प्रबन्ध पद्य से।

सन्ध्या, उषा, नद, निर्झर, बन, लतादि से प्रेम है, देशीय विचार-दर्शन उसके जीवन का अभिन्न अंग रहा है, उनकी प्रेरणा के स्रोत, विवेकानन्द, शंकर, तुलसीदास उपनिषद तथा रवीन्द्र है यद्यपि उन्होंने योरोपीय साहित्य को भी पढ़ा है, परन्तु उनके प्रयोगो का अविकल अनुवाद प्रस्तुत न कर उन्होने मौलिकता की सदा रक्षा की है।

'स्वतन्त्रता' की ऊष्मा से अभिमण्डित निराला देशी विदेशी दासता के विरुद्ध आज तक लड़ता रहा है। अत छायावादी कल्पनाओ की रंगीनी के साथ निराला मे स्वतन्त्रता की भावना का नवोन्मेष ओत-प्रोत है। अदम्य साहस, अपराजित स्वाभिमान उनकी कविता कामिनी को रण चण्डी बनाने के लिये पर्याप्त है, राम की शक्ति पूजा और महाराज शिवाजी का पत्र प्रमाण है। हम आगे देखेगे कि निराला राष्ट्रीयता के वैज्ञानिक विश्लेषण मे समर्थ हुये हैं उनका 'तुलसीदास' साँस्कृतिक नवोत्थान के साथ साथ,समाज शास्त्रीय विशुद्ध व्याख्या प्रस्तुतकर, जातीयता व राष्ट्रीयता का स्वस्थ रूप सामने रखता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि निराला संकीर्णतावादी है, उदारता और व्यापकता, निजत्व की पूरी रक्षा के साथ वहाँ विद्यमान है। वह विश्व के साहित्यो के भावो के आदान प्रदान को अभारतीय कहने वालो के लिये कहता है—

पश्चिम के लिये जिस तरह यहाँ के भावो की गहनता त्याग, सतीत्व की शिक्षा आवश्यक है, उसी तरह वहाँ के प्रेम की स्वच्छता, तरलता, उच्छ्वसित बेग यहाँ वालो के लिये आवश्यक है (निराला मे दोनो प्राप्त है) इस समय वहाँ वालों का खूनी प्रेम भी शक्ति सचार के लिये आवश्यक हो गया है। साहित्य को जीवित रखने के लिये उसमे अनेक भावो अनेक चित्रो का रहना आवश्यक है, जबकि अपने स्थान पर सभी भाव आनन्दप्रद और जीवन पैदा करने वाले है""पर हमारे साहित्य मे क्या हो रहा है—यह भारतीय

है, यह अभारतीय, असंस्कृत, नस नस मे शरारत भरी, हजार वर्ष से सलाम ठोकते ठोकते नाक मे दम हो गया, अभी सस्कृति के लिये मरते है,' यह है निराला का उदार-सास्कृतिक रूप जिसमे न अपने का तिरस्कार है न दूसरे से घृणा, उन्होंने बार बार कहा है 'सबसे बड़ी आफत ढा रहे है कुछ साहित्यिक सुधारपथी ··· ··सुधार व प्रोपेगैण्डा से साहित्य मजिलों दूर है' वे अतीत गौरव के गायक है पर रूढ़ियो के क़ायल नही—

निरालाजी ने सामाजिक पराधीनता" शीर्षकलेखमे स्पष्ट लिखा है।

"इसके (हमारे कलह) मूल मे प्राचीन शिक्षा है,
जो एक वक्त सस्कार थी और अब कुसस्कार ।।'

निराला और नारी—निराला जी पुरुष व स्त्री दोनों के लिये एक ही धर्म, उपार्जन से लेकर सतान पालन तक चाहते है, "पुरुष इस समय आधे हाथ से काम कर रहा है, हम गुलाम हैं ही, हमारी स्त्रियो को भी गुलाम बना रक्खा गया है" इस दृष्टि से सकीर्ण भारतीयता वादी चौक सकते है, पर कवि ने स्पष्टत. मनुस्मृति की गृहलक्ष्मी का रूप स्वीकार न करके जीवन की सच्ची सहचरी के रूप मे ही नारी को स्वीकार किया है, रीतिकाल के विरुद्ध छायावादी कवियो ने नारी की महिमा को स्वर्गीय बनाने मे कोइ प्रयत्न अवशेष नही छोड़ा, स्थूल-माँसल वर्णनो से ऊब कर साहित्य मे नारी की प्रतिष्ठा, सूक्ष्मतम चेतना की प्रतिनिधित्व करने वालीअव्यक्त सत्ता के रूप मे हुई, रीतिकाल मे सम्भोग के लिये ललक रही और छायावाद मे नारी के दिव्य दर्शन की झलक का चित्रण हुआ, कहीं प्रेम पूर्ण अस्फुट मनोवृत्तियो का चित्रण हुआ और कहीं प्रेमोन्माद को अस्फुट शैली में ही अभिव्यक्त कर दिया गया। निराला नारी की दिव्यता के साथ साथ यथार्थ के धरातल पर उसका स्वस्थ जीवन दर्शन भी दे सके है, वहाँ सीता रत्नावली के चित्र है जो जीवन मे एक नूतन अध्याय खोलते हैं।

निराला और कला—'सुकुल की बीबी में निराला ने कला के सम्बन्ध में पूछे जाने पर कहा था—

कला क्या है ?

'कुछ नही'

"जो अनन्त है, वह गिना नहीं जा सकता, इसलिये कुछ नही कहा, कला उसी की सृष्टि है,............अनादि काल से सृष्टि को गिनने की कोशिश की जारही है, पर अभी तक वह गिनी नही जा सकी ..... यह एक एक सृष्टि कला है, फलतः कला क्या है, यह बतलाना कठिन है, ... (यह) एक बोध है, उसका स्पष्टीकरण किया जा सकता है, जैसे ब्रह्मके अलग-अलग रूपों की बात नहीं कही गई, केवल सच्चिदानन्द कह दिया गया है, इसी को साहित्यिको ने "सत्य, शिव, सुन्दर" कह कर अपनाया है, बोध वह है, जैसी कला हो, उसके विकास क्रम का वैसा ज्ञान, इसके लिये प्राचीन और नवीन परम्परा भी सहायक है, और स्वजातीय और विजातीय ज्ञान के साथ मौलिक अनुभूति भी"।

कला की यह व्याख्या "सच्चिदानन्द वाद" पर आधारित है, निराला जिस आदर्शवाद को मानते आ रहे थे उसी का परिणाम उनका कला के प्रति यह दृष्टिकोण है। कला एक बोध है यह ठीक है पर वह निरपेक्ष्य नहीं है, इस ओर कवि का ध्यान नहीं गया कि किस प्रकार सामाजिक चेतना, व्यक्ति के बोध को बनाती है और तब वह 'बोध' विभिन्न माध्यमो से प्रकट होता है, अत. कला अवर्णनीय, अवाङ्ग मनस गोचर तत्व नही है। कवि ने अन्यत्र मूर्ति को कला के लिये आवश्यक माना है 'जो भावनापूर्ण सर्वांग सुन्दर मूर्ति खींचने मे जितना कृत विद्य है—वह उतना ही बड़ा कलाकार है, इन मूर्तियो मे विराटता का लाना निराला जी कला की सर्वश्रेष्ठता का मापदण्ड मानते है, विराट रूपो की प्रतिष्ठा इसलिये आवश्यक है, "रूप की सार्थक लघु-विराट कल्पनाये ससार के सुन्दरतम रगो से, जिस तरह अंकित हो, उसी तरह, रूप तथा भावनाओ का, आनन्द मे

सार्थक अवसान भी आवश्यक है. कला की यही परिणति है और काव्य का सबसे अच्छा निष्कर्ष, इस तरह काव्य के भीतर से, अपने जीवन के सुख दुःखमय चित्रों को प्रदर्शित करते हुए परिसमाप्ति पूर्णता में होगी"

तो निरालाजी कला को रूप और भावना की समष्टि मानते है। छायावादी कला के पूर्व, रूपों की प्रतिष्ठा प्राय नाम मात्र का ही थी, क्योंकि सीधे उपदेशों या वर्णनों मे रूपों के लिये स्थान ही कहाँ था, साथ ही भावना का नही, भावना के आभास का—"भाव के ज्वर, हाय, हाय, का वर्णन रहता था। छायावाद मे भावना का उच्छ्-वसित रूप भी रहा और साथ ही रूपो को प्रतिष्ठा भी एक विराट चित्र फलक पर हुई, निरालाजी ने अन्तिम बात बहुत ही महत्वपूर्ण बतलाई है कि जीवन के सुख दु.खमय चित्रो का प्रदर्शन और तत्पश्चात् उन सबकी पूर्णता मे परिसमाप्ति, छायावादी कला की इससे अच्छी व्याख्या और क्या होगी ? अपने सुख दु ख की अभि-व्यक्ति व्यक्तिवादी मनोवृत्ति को स्पष्ट करती है जिसमे व्यक्ति के विद्रोह, विस्फोट, अश्रु, पुलक, उन्माद-प्रमाद, का वर्णन होगा और पुनः एक "पूर्ण व्यक्तित्व" मे उनका विलयन होगा, क्यो ? क्योंकि व्यक्ति के असन्तोष के लिये तो व्यक्तिवादी—पूँजीवादी युग मे स्थान है परन्तु उसका सामाजिक आधार लुप्त हो जाने के कारण विचारक उसका हल 'शाश्वत शान्ति' में खोजने के लिये विवश है, फणाकार उत्तेजित लहर सामन्ती मान्यताओ को काल-कवलित करती हुई आगे बढ़ती तो है परन्तु जब उसका कुछ सामाजिक उपयोग नहीं होता तो सीधी चिरन्तन सत्ता के समुद्र मे जाकर लुप्त हो जाती है, छायावादी कला की "दिव्यसत्ता" "चिर विराम" के रूप मे तभी प्रस्तुत की गई है।

---

१ देखिये—दशरथ विलाप, उत्तरा विलाप आदि कवितायें

भाषा—"कला के विकास के साथ-साथ साहित्य मे नई भाषा भी विकसित होती है। "हरा, कँड़ेदार, मजबूत डण्ठल ही कृशाँगी नवीन कला को चाहिये, कोमल व कठोर, आत्मा व प्राणों का ऐसा ही सम्बन्ध रहा है', उक्त विश्वास के साथ निराला ने छायावाद के लिए जिस प्रौढ़, कलात्मक, भाषा का समर्थन किया था, वह गाँधीजी की हिन्दुस्तानी के विरुद्ध थी, निराला ने तब स्पष्ट कहा था—' भाषा क्लिष्टता से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्न, हिन्दी की तरह, अपर भाषियो मे नही उठते.........
मैंने आजतक, किसी को यह कहते न सुना, कि शिक्षा की भूमि विस्तृत होनी चाहिए जिससे अनेको शब्दो का लोगो को ज्ञान हो, जनता क्रमश. सोपानो पर चढ़े।"

"कठिन भावो को व्यक्त करने मे भाषा भी कठिन हो गई है।"

'हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के लिए ललित शब्दावली की टाँग तोड़ कर लँगड़ी कर देने से लड़खड़ाती हुई भाषा अपनी प्रगति मे पीछे ही रहेगी".........भावानुसारिणी कुछ मुश्किल होने पर भी भाष समझ में आ जाती है.........गैर लोगो को अपने मे मिलाने का तरीका भाषा को आसान करना नही, उसमें व्यापक भाव भरना और उसी के अनुसार चलना है" २ प्राय यही बात 'प्रसाद' जी ने नाटको की सरलता के विषय में कही थी कि नाटक मच के लिए नहीं हैं, मचो को नाटको के स्तर तक उठना चाहिए, उक्त विचारधारा का प्रभाव तभी तक रहा जब तक निराला 'रूप व भावना' के साधनों से साहित्य मे विराट चित्र खड़े करते रहे, जब वे 'लघुता' की ओर प्रवृत्त हुये तब से वह भाषा भी अत्यन्त सरल और सहज लिखते हैं यथा युद्धकाल के बाद के प्रयोगो मे, यहां उन्हें अपनी प्रिय "ललित- पदावली' की चिन्ता नहीं रही। ललित भाषा के

२ प्रबन्ध पद्य

स्थान पर भाषा तीखी, नोकदार, चुभने वाली और विभिन्न प्रयोग-बहुला हो गई। गद्य को वे जीवन संग्राम की भाषा मानते है। अत गद्य से उनका यथार्थवाद अधिक आकर्षक और सफल हुआ है।

निराला और प्रगतिवाद—हमने पहले कहा कि निराला मे विचारधारा का उग्र परिवर्तन नही मिलता, उनका चिर-प्रिय विश्व-वाद आज तक उनका पीछा नही छोड़ सका, किन्तु जिस विराट ललित, व्यक्तिगत राग- विराग मयी, 'पूर्णता' मे पर समाप्ति पाने वाली रूप भावना मयी छायावादी कला का विकास जुही की कली, तुलसीदास, यमुना के प्रति, सध्या सुन्दरी, तरङ्गो के प्रति आदि कविताओ मे हुआ था, वह आगे रुक गया, छायावादी कला को प्रौढ़ता की चरम–सीमा पर पहुँचा कर जैसे कवि 'लघुता' की ओर प्रवृत होता चला गया, यद्यपि 'मानवतावादी' होने के कारण कवि भिखारी, 'विधवा' जैसी रचनायें दे चुका था परन्तु इन प्रगतिवादी रचनाओ का युग तो आगे चल कर ही आया, विकास की दृष्टि से हम सामान्यतः दो भागो मे निराला के साहित्य को बॉट सकते है। (१) सन ३८ से पहले की रचनाये (२) और उससे बाद की। सुविधा की दृष्टि से हम पूर्व काल का भी दो भागों मे बांट सकते है। (१) १६२६ से सन १.३४ तक (२) १६३४ से ११.८ तक।

डा० रामविलास शर्मा ने उक्त ४ वर्षो के समय को सधिकाल नाम दिया है और सरोज स्मृति, राम की शक्ति पूजा, बनबेला आदि रचनायें संक्रमण काल की मानी है। इनके अलकार छायावाद के है और व्यजना नवीन है, 'इनमे दोनो युगों की संधि है, उसने वीर नायको का चित्रण कर लिया था, अब जन साधारण की ओर झुका है, ऐसा उन्होंने कहा है[१]। वस्तुतः हम कोई दृढ़ रेखा सौन्दर्यवादी

१—देखिये 'निराला' डा० रामविलास शर्मा

कविताओं व जनवादी कविताओ के बीच नही खींच सकते क्योकि सन ५० तक मे निराला ने रहस्य मय गीत लिखें है, यथा अर्चना में, परन्तु कवि का स्वर निश्चय वदला है अत. उक्त विभाजन को ही सुविधा के लिये स्वीकार कर हम आगे बढ़ते है इस काल की प्रमुख रचनायें हैं—

सरोज स्मृति (१९३५) राम की शक्ति पूजा (१९३६) वह तोड़ती पत्थर (१९३५) हिन्दी के सुमनो के प्रति (१९३७) बन बेला (१९३७) स्मृति, १९३६, प्रेयसी (१९३५) उक्ति १९३७, तुलसी दास (१९३८),

उक्त कविताओ मे प्रेयसी, स्मृति आती नयन झरते, की व्यजना पूर्णतया रोमांटिक काल की है जो कवि के जीवन व विलास जन्य उच्छ्वास को लेकर चली है। तुलसीदास, राम की शक्ति पूजा, मे कथा के बहाने व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक ऊर्ध्व गति का वर्णन है, वाह्य—स्थूल वीरत्व के अन्तस् मे जो मानसिक उल्लास रहता है उसकी प्राप्ति का उल्लेख है, जिसका माध्यम दोनो स्थानो पर नारी की मगलमयी मूर्ति को बनाया गया है, व्यजना की दृष्टि से मनुष्य को उदात्त भूमि पर लेजाने तथा उसमे अद्भुत कर्मशीलता जागृत करने, 'रावणो' के प्रहारो पर भी अविचलित रहने की राघवीय शक्ति प्राप्त करने के रूप मे हम इन्हे सक्रमण काल की रचनाये भले ही कह लें परन्तु तथ्य यह है कि वीर नायको की वाह्य वीरता के लिये मनोवैज्ञानिक आधार देने की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ रचनाओ के रूप म हमे इन कविताओ को लेना चाहिये जैसे छत्रपति शिवाजी का पत्र (१९२२) की परम्परा 'तुलसीदास' और राम की शक्तिपूजा मे समाप्त हुई हो। प्रतीक रूप मे हम यह कह सकते है कि कवि राम के समान शोषक-रावणो से आतंकित है, आत्म-बल के लिये शक्ति-पूजा की आवश्यकता है, और हनूमान तो निराला जी स्वय अपने को समझते भी हैं। इसी प्रकार तुलसीदास के रूप मे कवि साँस्कृतिक सूर्य

को राहु ग्रस्त देखता है, उसके उद्धार के लिये भी आत्म बल को जगाया गया है। कठिनाइयों का आतंक इस काल में कवि पर अवश्य पूर्व काल से अधिक है, उसकी प्रिया की स्मृति सरोज की मृत्यु के रूप मे विनष्ट हो जाती है, भ्रान्ति व विह्वलता के इस युग में आत्म बल के संचयन के लिये कवि एक ओर 'तुलसीदास' और राम की शक्ति पूजा, को देता है और दूसरी ओर करुणा से आहत होकर सरोज स्मृति व वनबेला मे पुकार उठता है—

हो गया व्यर्थ जीवन,
मैं रण मे गया हार,
सोचा न कभी
अपने भविष्य की रचना पर चल रहे सभी—वन बेला से
धन्ये, मैं पिता निरर्थक था
कुछ भी तेरे हित न कर सका।
जाना तो अर्थागमोपाय
पर रहा सदा संकुचित काय,
लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मैं स्वार्थ समर,
... ...

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही॥ (सरोजस्मृति से)

प्रिय जनों के मृत्यु आघातों तथा उससे भी अधिक अर्थ के अभाव से कवि का स्वर कितना विषण्ण हो गया है? कवि चाहता था, किन्तु धनाभाव मे अपनी पुत्री के लिये औषधि का भी प्रबन्ध न कर सका, अतः एक तो युग की व्यवस्था के प्रति उसमे घोर तिरस्कार की भावना बढ़ती गई तथा दूसरे साहित्य मे, जीवन में सतुलन कम होता गया। 'व्यथा' और विश्रांति मानसिक विक्षोभ की जननी है। निराला ने इस समय के पश्चात् जन-जीवन पर लिखा। यद्यपि कभी कभी "अज्ञात-प्रिया" की स्मृति में भी

अश्रु बहा लेते रहे, सन् १६३६ से १६४२ तक का समय कवि के लिये घोर अर्थाभाव का युग रहा, सम्मेलन की उपेक्षामयी नीति गाँधी, नेहरू की हिन्दी विरोधी कार्यवाहियो से निराला को अत्यन्त क्षोभ हुआ था, युद्ध कालीन परिस्थितियो में बाज़ार बन्द थे, निराला को पहले उन्नाव और वहाँ से करदी नामक स्थान को भागना पड़ा। वहाँ वे बीमार रहे, और उस रुग्णावस्था ने कवि के पूर्व मानसिक विक्षोभ को घनीभूत कर 'पागलपन' मे बदलना प्रारम्भ कर दिया, इस अवधि मे अणिमा, विल्लेसुर बकरिहा कुकुरमुत्ता लिखे गये, जो स्पष्टतया कवि की परिवर्तित मनोवृत्ति दिखाने के लिये पर्याप्त है।

सन ४२ के पश्चात् कवि का आत्म विश्वास पुन. दीप्त हो उठता है और आज निराला प्रगति युग का सर्व श्रेष्ठ व्यगकार Satirist बन गया है उसने बिल्लेसुर बकरिहा, कुल्लीभाठ, चतुरी चमार, सुकुलकी बीबी, रेखाचित्रो, कथाओ, उपन्यासो तथा 'नये पत्ते' कुकुरमुत्ता आदि की व्यग्य-प्रधान कविताओ से जनवादी साहित्य की अद्भुत देन दी है। व्यष्टिवादी चेतना जिसका पूर्ण अभ्युदय सन ३८ तक हो चुकता है अब 'समष्टिवाद' के अंचल मे क्राँतिकारिता के सूत्र पर अपनी नूतन व्यग्यमयी मुद्रा से प्रलयकर ताण्डव करने मे लवलीन है। किन्तु साथ ही आत्म-वादी चिन्तक, करुणा, श्रद्धा, विनय और रहस्य स्पर्शसे सम्बन्ध भी बनाये रखना चाहता है यथा "अर्चना के गीतो मे" जिसके सब गीत १६५० के ही लिखे हुये हैं, कुछ तो गीत 'गीतिका' की परम्परा मे है, कुछ क्रांतिकारी स्वर मे बांधे गये है। एक ओर "नर को नरक त्रास से उबारते' चलने की भी प्रार्थना की गई है, तो दूसरी ओर वही कवि पुकारता है:—

'भजन कर हरि के चरण मन, पार कर मायावरण, मन
कठिन यह ससार, कैसे विनिस्तार

सत्य मे झूठ, कुहरा भरा ससार

× × ×

आँख लगाई—
तुमसे, जबसे हमने चैन न पाई — अर्चना

कहीं निर्विकार को फटकार बताई गई है, कहीं उसी के प्रति आत्म समर्पण है, यह परम्परा का निर्वाह नहीं, कवि का 'दिव्यसत्ता' पर अडिग विश्वास है, जहां से वह अद्भुत दृढ़ता साहस और संयम् प्राप्त करता रहता है।

निराला और औचित्य वाद—विचार के इस विकास के साथ साथ विचार का स्वरूप इतना सीधा नही है जो हम उसे सहसा पगतिशील या प्रतिक्रिया वादी के घेरो मे बन्द कर कर सकें, क्योंकि आदर्शवादी विचारधारा से पूर्ण विलगाव तो निराला जैसे ब्रह्म वादी का होना असम्भव है। प्रगतिवाद के सम्बन्ध मे निराला जी का विचार यह है कि प्रगति वाद संघवद्ध साहित्यिक चेष्टा है, और संघवद्धता को वह पुण्य मानते है—

"हम उसे ही पुण्य मानते है जिसमे अधिक सख्यक मनुष्य को लाभ हो, जिससे वे सुखी हो।" (अ)

साथ ही वे कहते हैं—'परन्तु इतने वैषम्य के भीतर एक साम्यावस्था है, आज तक संसार के बड़े बड़े मनुष्यो ने उसी की खोज की है, जीवन की अमरता और बचने का रास्ता वहीं से निकलता है।"

यही नहीं निराला वर्णाश्रमधर्म को आदर्श व्यवस्था मानते है, पर जन्म से नहीं, कर्म से उसकी सगति मिलाते हैं, उनके अनुसार वर्णाश्रमधर्म एक ऐसी सामाजिक स्थिति है, जो चिरन्तन है कोई समाज इस धर्म को मानता भले ही न हो पर वह संगठित इसी रूप से होगा—

अ—प्रबन्ध पद्य से

आगे वह प्रगतिवादियो के 'साम्य' और अपने चिरप्रिग 'साम्य की व्याख्या करते हुये कहते है--वह स्थान जहाँ मौलिकता की मूल 'साम्य' स्थिति है, यथार्थ स्वतत्रता है, इसी की बाहरी प्रेरणा, बाहर मनुष्यो को अधिकार वाद मे स्वतत्र करती है ''''''यही स्थान हमारे समाज के अन्तकरण मे आज नहीं पाया जाता, इसीलिये उसके मनुष्य मौलिक विचारो से रहित जड़ अधिकारो की रक्षा के लिये व्यस्त हो रहे हैं।'

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि निराला यथार्थ स्वतत्रता आँतरिक साम्य भावना, अद्वैत स्थिति को मानते आ रहे है जिसकी बाह्य प्रेरणा उनके व्यग्यो व जनवादी रचनाओ मे दिखाई पड़ती है, वे केवल बाह्य स्वतन्त्रता और समानता को, जड़वादी विचारक की भाँति नही चाहते, सच्चे आत्म-वादी चिन्तक की भाँति बाह्य व आतरिक दोनो प्रकार की समता प्राप्ति ही उनका लक्ष्य है।

सर्व-हारा-साहित्य के सम्बन्ध मे निराला जी का स्पष्ट मत है—

'अभी हमारा साहित्य इतना पीछे है कि उसी में रह कर उसी के अनकूल चित्र खींचते रहने से हम आगे नही बढ़ सकते, कुछ समाज के ही अनुरूप चित्र खीचने के पक्ष मे है, यह उनकी अदूर-दर्शिता है, हम पक्ष मे भी है और विपक्ष मे भी, जहाँ तक हमें औचित्य देख पड़ेगा, हम पक्ष मे है''''''अनेकानेक भावों से ही साहित्य की नवीन प्रगति है और इसी की वृद्धि साहित्य।''

'औचित्य वादी' निराला इसीलिये अर्चना मे कहता है—

कैसे हुई हार, तेरी निराकार ?
जीवन बिना अन्य के है विपन्नात्र
कैसे दुसह द्वार से करे निर्वार ?
यही पढ़िये--
छूटता है मेरा अधिवास
किन्तु फिर भी न मुझे कुछ त्रास

अन्न की प्रथमता के साथ ही ब्रह्म की प्रमुखता रह सकती है अत ब्रह्म को चुनौती उसकी निरपेक्षता के कारण है।

रोटी की बात भूलने से निर्विकार ब्रह्म की हार निश्चित है इस सत्य को दिखानेके लिये ही ये पक्तिया लिखी गई है निर्विकार ब्रह्म मे आज भी कवि का अडिग विश्वास है।

'सुकुल की बीबी' मे निराला जी ने लिखा है भलाई और बुराई मे भी सच पूछिये तो परमात्मा की दुहाई देना एक चाल हो गई है, परमात्मा को किसी ने देखा नहीं, सिर्फ सुना है, सुनते सुनते लोग संस्कार की रस्सी मे बँध गये है और बात बात मे परमात्मा की रट लगाते है, मै इसे एव समझता हूँ, यो निर्विकार ईश्वर मानना पड़ता है। पर उसे किसी बधाई की क्या अपेक्षा और गलतियो की क्या परवा ?" (१)

यथार्थ से लापरवाह लोगों के लिये कितनी कड़ी फटकार है और साथ ही अपने विश्वास की अभिव्यञ्जना भी। इस सम्बन्ध मे इतना निवेदन और आवश्यक है कि आलोचनाओ मे उनके साथ कहीं कहीं घोर अन्याय हुआ है, जहां भ्रान्तियाँ नहीं है, वहां भ्रान्तियाँ खोज ली गई है, जहाँ अन्तर्विरोध नाम मात्र को भी नहीं है, वहाँ असंगतियाँ और अन्तर्विरोध ढूँढ़ लिये गये है।

गीतिका मे एक कविता है "कौन तम के पार रे कह" इसका बिना अर्थ स्पष्ट किये ही आलोचक महोदय* ने प्रमाणित कर दिया है कि इस कविता मे कवि ने उस दिव्य सत्ता का निषेध किया है, इस जड़ प्रकृति से परे क्या है ? इस गीत मे ज्ञान जन्य सृष्टि के सिद्धान्त को अस्वीकार किया गया है, मनुष्य का ज्ञान, उसकी चेतना, उसका आनन्द जड़ प्रकृति के विकास से ही सम्भव हुये है, प्रकृति मे गुणात्मक परिवर्तन हुये हैं, आतप जल बन जाता है, उपल

१—क्या देखा कहानी से (प्रकाशन समय १९४१)

* देखिये 'निराला' डा० रामविलास शर्मा।

द्रवित होकर नीहार बन जाता है, इसी प्रकार एक गुणात्मक परिवर्तन से चेतना व आनन्द की भी सृष्टि हुई है, अत दैवी सत्ता की कल्पना अवश्यक नहीं है--

इस प्रकार के अर्थ से तो बेदो को भी मार्क्स-दर्शन का व्याख्याता सिद्ध किया जा सकता है, सृष्टि विकास की व्याख्यायें बेदो व उपनिषदो मे विभिन्न प्रकार से दी गई है, इस विराट ब्रह्मांड को ऋषियो ने महान आश्चर्य के रूप मे देखा था। उन्होने परमाणुओ की खोजकर सृष्टि विकास मे उनकी उत्पत्ति का क्रम भी बतलाया, कभी आकाश को प्रथम स्थान दिया, कभी प्राण × को, कभी अग्नि को ^ और कभी जल को❀, और साथ ही यह जिज्ञासा भी प्रकट की गई है कि कोई नहीं कह सकता कि किस तत्व का सर्व प्रथम जन्म हुआ होगा ? उस अनीह, सर्वशक्तिमान, दिव्य सत्ता का रहस्य समझना दु.साध्य है, सृष्टि विकास के सम्बन्ध मे यह जिज्ञासा व रहस्य की भावना आगे कवियो मे भी अभिव्यक्त होती रही।

इस गीत की अर्थ अभिव्यक्ति इस प्रकार है—

कवि प्रश्न करता है, कि तम, अधकार या अज्ञान की सीमा कौन लॉघ सका है। सब कुछ माया के बन्धन मे बधा हुआ है, कौन इस अन्धकार-अज्ञान के पार जा सका है, यह स्थावर, जङ्गम, काल प्रवाह के परिणाम है, आकाश ही घन्नी भूत होकर मेघ धारा बनता है, (सूक्ष्म आकाश स्थूल होकर चारो तत्वो मे परिणत हो जाता है) हृदय के सरोवर के तट कमलो की गंध से व्याकुल है, सरोवर की लहरे ही बाल है और कमल ही मुख है जिसपर किरणें पड़ रही है,

---

× प्रश्नोपनिषद।

❀ आप एव इदमग्र आसु —बृहदारण्यक उप०

^ छान्दोग्य उपनिषद

आनन्द रूपी भौरा स्पर्श का चुभा तीर हर रहा है, यह तीर सौन्दर्य का है (तीर के निकालने से, हरने से भी एक सुखद स्पर्श होता है) आनन्द रूपी भौरा बार बार गुजार रहा है, (यहाँ एक ही सरोवर मे पावों तत्वो का सन्निवेश है, गध क्षिति का गुण लहर जल कमल रूप=अग्नि, स्पर्श=वायु, गूज= आकाश, इस प्रकार पचतत्वो की आनन्द प्रियता मे अन्धकार का प्रदर्शन कलापूर्ण ढग से किया है) दूसरे स्टेंजा मे उदय, अस्त और रात्रि के चित्र लिये गये है और पूछा गया है कि ये हर एक अलग अलग सुख को बोध कराते हुये सार हैं या असार। अन्तिम स्टेंजा मे कहा गया है कि आतप के कारण ही जल बरसता है पाप के कारण ही मनुष्य निष्कलुष होने का अवसर पाता है, कोमल बनता हैं जो पत्थर है अशिव है, वहीं मगल है, शिव है, और गला हुआ जल ही बर्फ तथा कठोर पत्थर बनता है यहाँ कवि ने स्पष्ट सृष्टि की उत्पत्ति माया से दिखाई है, पच भूतो का जन्म और विकास अपने आप नहीं होता, वह माया के कारण हैं, इस माया ने इन पन्चतत्वों के मिश्रण ने विभिन्न सुन्दर वस्तुयें निर्मित कर दी है, यद्यपि यह माया है, अज्ञान है, पाप हैं, भ्रम है, पर कवि के अनुसार भ्रम मे से ही भ्रम को दूर करने का मार्ग खोजना हैं किन्तु यह भ्रम यह अज्ञान, यह तम कौन पार कर सका है—

कौन तम के पार रे कह।

यहाँ वस्तुत स्वाभाविक जिज्ञासा हैं जो सृष्टि के रहस्य के प्रति कवि के मन मे स्वत जागृत हुई है, यहाँ आतप से जल और उपल से नीर बनने की प्रक्रिया बतला कर मार्क्स के गुणात्मक परिवर्तन की व्याख्या कवि ने प्रस्तुत नहीं की है, सृष्टि के पच-भूतो के इन गुणात्मक-परिवतनो पर ऋषियों ने विभिन्न स्थानो पर लिखा है और फिर भी जिज्ञासा प्रकट की है उसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि सृष्टि के विकास को ज्ञानजन्य नहीं माना गया है, ऋग्वेद

के नासदीय सूक्त में कहा गया है। ऋग्वेद कहता है—

को अद्धावेद क इह, प्रवोचत्कुत आजातो कुत इय विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा, को वेद यत आबभूव॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव, यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्ष. परमे व्योमन्त्सो अङ्गवेद यदि वा न वेद॥
ऋ० अ० ८। अ० ७। व० १७।

'सचमुच कौन जानता है और यहाँ कौन कह सकता है कि (यह सब) कहाँ से उपजा, और इस विश्व की सृष्टि कहां से आयी, देवताओ की उत्पत्ति पीछे की है और यह सृष्टि पहले आरम्भ हुई, फिर कौन जान सकता है, कि यह सब कैसे आरम्भ हुई—वह वेदो को ही कैसे ज्ञात हुई, जिससे इस विश्व की सृष्टि आरम्भ हुई, उसने यह सब रचा है, या नही रचा है अर्थात् उसकी प्रेरणा के बिना ही आप ही आप आ गई है? परम व्योम में जिसकी आँखें इस विश्व का निरीक्षण कर रही है वस्तुतः वही जानता है, या शायद वह भी नही जानता।'

क्या यह वेद का, गीतिका के रहस्यवादी गीतो मे अन्त विरोध देखने वालो के अनुसार, संदेहवाद नहीं है? क्या सृष्टि के रहस्य के सम्मुख आत्म समर्पण करता हुआ ऋषि सशयात्मा नहीं बन रहा है? क्योकि जब किसी पर विश्वास नही जम रहा है तो 'जड़वाद' ही अन्तिम शरण है (च)

परन्तु खेद है कि इस प्रकार निराला के विषय में ठीक विश्लेशण न कर, व्यर्थ भ्रम फैला कर हम ज्ञान की प्रगति को रोकते है, वैज्ञा-

---

(च) 'गीतिका के उक्तगीत मे जो आतप से जल आदि की उत्पत्ति बतलाई गई है, वह प्राचीन छान्दोग्य उपनिषद की परम्परा मे ही है वहाँ भौतिक तत्वो मे प्रारम्भिक तत्व तेज को माना गया है उसी से जल और फिर उससे अन्य पदार्थों की उत्पत्ति बताई गई है।

निक विवेचन से कतराते हैं, हमे पूर्व और उत्तर पक्षों को देखना होगा ? क्या गीतिका मे और भी गीत है जिनमे ज्ञान जन्य सत्ता के समानान्तर कवि ने परमाणुओ द्वारा स्वयं विकास दिखाकर सृष्टि क्रम को समझाया हो ? नहीं, तब फिर एक ही पद मे निराला क्यों भटका ? निराला कहीं संशयात्मा नही हुआ, हमने बराबर दिखाया है कि जहां कवि ब्रह्म को सीधी चुनौती देता है वहां अविश्वास उसका कारण नहीं, अपितु वहाँ सापेक्ष्यता और निरपेक्ष्यता का प्रश्न है, समाज से निरपेक्ष्य रह कर कवि के शब्दो मे लापरवाह लोगो का निर्विकार ब्रह्म, यदि कवि के उपहास का प्रतीक न बने तो और क्या हो। जिस ब्रह्म की इच्छा से यह सृष्टि बतलाई जाती है उस सृष्टि के प्रति लापरवाह रहना तो कवि के विश्वास के विरुद्ध है, विवेकानन्द की बात हम तीसरी बार दुहरा रहे है 'पहले रोटी फिर धर्म।' किन्तु यहाँ उस यथार्थ की भी कवि को चिन्ता नहीं है, यहाँ कवि विशुद्ध रहस्यानुभूति के मार्ग पर है, जहां कभी आभास, कभी उस चेतन सत्ता के प्रतिबिम्ब की झलक पाकर कौतूहल-विस्मय कभी आत्म समर्पण, कभी आत्म-प्रिया के विरह व मिलन के अनुभव आदि का वर्णन रहता है,'कौन तम के पार रे कह' गीत भी उन्हीं गीतो मे से एक है, जब आलोचक के अपने साँचे मे कवि नहीं बैठ पाता, तो उसके काव्य शरीर को तोड़ने मरोड़ने मे कवि की आत्मा को कष्ट अवश्य होगा, आखिर ऐसी आवश्यकता ही क्या है कि बलात् निराला को सकीर्ण साचे मे फिट किया जाय ? क्या निराला के प्रगतिवादी होने के लिये अनिवार्य है कि उन्हे जड़वादी ही सिद्ध किया जाय ? हमारा तो विचार यह है कि निराला जड़वादी नहीं है, न सिद्ध किया जा सकता है, और फिर भी मानवता वादी कवि है।

उसका मानवतावाद उसके सम्पूर्ण निजी विश्वासो के साथ क्रांतिकारी स्फुलिङ्गो की समष्टि है, उसका अध्यात्मवाद उसकी प्रगतिशीलता के लिये अधिकांश मे सहायक बनकर ही आया है, क्योंकि वह स्थित प्रज्ञ बनकर समाज से तटस्थ नहीं रहा, अपनी

भैरव हुँकार से समाज विरोधियो को हिलाता रहा, मानव मे साहस और पुरुषार्थ भरता रहा।

निराला की और भी अपनी सीमाये है जो उनकी प्रगतिशील रचनाओ के साथ चलती है परन्तु सन ४० के बाद कवि का स्वर मुख्यत जनवादी हो गया है, इसमे संदेह नहीं है, किन्तु अपने विश्वासों के साथ। उन विश्वासोको हमने ऊपर दिखाया है, निराला मे सबसे प्रगतिशील तत्व है 'मानव प्रेम', कवि मनुष्य की दुर्दशा देख कर पागल हो उठता है, व्यक्तिगत रूप से शत शत आर्थिक-अभावो और दुश्चिन्ताओ मे पला हुआ यह कवि इतना अधिक सवेदनाशील हो गया है कि मनुष्य मात्र के प्रति उसमे ममता का सागर उमड़ रहा है इसीलिये मानवता के अभिशाप, शोषको, थोथे दार्शनिको, लापरवाह ईश्वरवादियो, दम्भी बगुलाभक्तो तथा प्रवञ्चना-पटु नेताओ का वह घोर शत्रु है इसीलिये मनुष्य के मूल आर्थिक प्रश्न को झुटलाने वालो के निर्विकार को वे फटकार पिला देते है। शूद्रो के प्रति जो अनाचार होता आ रहा है उसके वे कटु आलोचक है, उन्होने भारतीय समाज का विश्लेषण बड़ी पैनी दृष्टि से किया है, उनके अनुसार द्वापर से उच्चवर्ण वालों का अभिमान बढ़ता गया बुद्धने उनके दुष्प्रभाव को कम किया, पर शकर की दिग्विजय से ब्राह्मणवाद का पुन अभ्युदय हो गया, रामानुज ने हृदय धर्म की स्थापना की परन्तु अनेक देवी देवताओ की उपासना के साथ भारतीयो का पतन होता गया, उच्चवर्णों के अन्याय सेही शूद्रमुसलमान हो गये, उद्योगो के विकास से''''''चिरन्तन सत्य के ठेकेदारों (उच्चवर्ण वालो) की सन्तान कलकत्ते मे जमादारी व बम्बई मे भैया गीरी करने लगी।"

निराला जी का विश्वास है कि 'शूद्र शक्तियो के उठने से ही भारत का शीश उन्नत होगा भारत तभी तक पराधीन है, जब तक वे नहीं जागते।'

मनुष्यता के वे इतने बड़े हामी है कि "कुल्ली भाट" के रेखा

चित्र मे अपनी छायावादी कला व विचारधारा के सम्बन्ध में कहते है—

'अधिक न सोच सका, मालूम दिया, जो कुछ पढ़ा है, कुछ नहीं, जो कुछ किया है व्यर्थ है, जो कुछ सोचा है, स्वप्न कुल्ली धन्य है, वह मनुष्य है....मै ईश्वर सौन्दर्य, वैभव व विलास का कवि हूँ — फिर क्रॉति कारी !!।

इस प्रकार कवि व्यक्तिवादी अवगुण्ठन से निकल कर यथार्थ सामाजिक भूमि पर बढ़ता जाता है, सन ४० के बाद की रचनाओं का मुख्य स्वर 'जनवादी' है, उनकी अपनी सीमायें है किन्तु उनको अवगौण स्थान प्राप्त हैं, वे सामाजिक सम्बन्धो को समाज के आर्थिक आधार को खूब समझते हैं, आज की व्यवस्था के दोष उन पर स्पष्ट है। अत. उनके विरुद्ध मुक्त होकर सीधा विद्रोह करना केवल एक कवि निराला का कार्य है, 'पन्त व महादेवी' मे मानवतावादी स्वर अवश्य है पर निश्चित रूप से उनमे वह आग नहीं है जो 'निराला' मे है। कला का मधुर कोमल अचल छोड़कर अनगढ़ यथार्थ के रोड़ो से टकराता हुआ निराला के सृजन-नद मे रूढ़ियो के कगारों को काटता हुआ, समाज के अवॉछनीय तत्वो पर कीचड़ उछालता हुआ, विकृतियो को व्यग्य लहरो से पीटता हुआ हर हर करता बढ़ रहा है, यह बात दूसरी है कि उसका गन्तव्य चेतना का वह महासागर है जिसे कवि अपने विश्वास से इस प्रपञ्च का मूल कारण समझता है।

कला और कृतियाँ

निराला का प्रथम सग्रह 'परिमल' है जो सन् १९२९ मे प्रकाशित हो सका, इसमे १९१६ से २९ तक की रचनाये सग्रहीत है, यह प्राय. कवि का सर्वश्रेष्ठ सग्रह माना जाता है। छायावादी चेतना के साथ, राष्ट्रवादी धारा का भी यह प्रतिनिधित्व करता है, राष्ट्र की नूतन आशा, आकांक्षाओ को इसमे वाणी दी गई है। इस सग्रह मे निम्न-लिखित कवितायें प्रमुख है—

प्रथम खण्ड—यमुना के प्रति, युक्ति, तरगो के प्रति, जलद के प्रति, तुम और मै, माया, अध्यात्मफल।

द्वितीय खण्ड—अधिवास, विधवा, कविता, भिक्षुक, सध्या-सुन्दरी, शरदपूर्णिमा, बहू, प्रताप के प्रति, करण, बादल-राग।

तृतीय खण्ड—जुही की कली, शेफालिका, जागो फिर एक बार, महाराज शिवाजी का पत्र, पचवटी प्रसग।

परिमल के उक्त तीन खण्ड, छन्द-विधान की दृष्टि से किये गये है। 'परिमल' का कवि नवीन काव्य को एक विद्रोह के रूप म मानता है किन्तु यह 'विद्रोह' लक्ष्यभ्रष्ट नही है, उसका लक्ष्य है, पूर्ववर्ती युग (द्विवेदी युग, रीति-युग) की मान्यताओ के विरुद्ध नवीन भावनाओं का प्रसार तथा अन्त मे उस परम शक्ति-सिन्धु मे कवि की चेतना की परिसमाप्ति—

"परन्तु ऐसा जान पड़ता है, कि इस नवीन जीवन के भीतर शीघ्र ही ऐसा आवर्त बँध कर उठने वाला है, जिसके साथ साहित्य के अगणित जल कण उस एक ही चक्र की प्रदक्षिणा करते हुए उसके साथ ही प्रवाह मे बह जायेंगे, और लक्ष्य भ्रष्ट या निदाघ से शुष्क न हो, एक ही जीवन के महासागर मे विलीन न होगे। ❀

❀'परिमल' की भूमिका पृष्ठ १०।

यह विद्रोह की भावना स्थूल नैतिकता को छोड़ कर व्यक्तिगत आशा-आकाँक्षाओ की मुक्त-अभिव्यक्ति के रूप मे प्रकट हुई, उस समय प्रचलित विश्व की रहस्यमयी चिन्ता-धारा से प्रभावित होकर तथा भारत के नूतन जागरण काल मे उस प्राचीन-दर्शन के स्पर्श से मुक्त होकर, 'निराला' ने एक ओर तो प्रकृति के कण-कण मे एक ही शक्ति का स्वच्छन्द प्रवाह देखा और उस शक्ति की कल्पना प्रियतमा के रूप मे होने के कारण उसके सौन्दर्य मे अभिमण्डित प्रकृति के रूपो मे मानवीय भावनाओं का आरोप किया तथा दूसरी ओर प्राचीन काव्य-नियमो के विपरीत छन्दानुशासन से मुक्त काव्य का सृजन किया, इसी कारण 'परिमल' विद्रोही काव्य की समष्टि है। इसमे छन्द-विधान के अनुसार सग्रहीत कविताओ को तीन खण्डो मे बाँटा गया है, प्रथम खण्ड मे सम मात्रिक सान्त्यानुप्रास कवितायें है। जिनके लिए हिन्दी के लक्षण ग्रन्थों के द्वारपालो को 'प्रवेश निरुद्ध' या भीतर जाने की सख्त मुमानियत है" कहने की जरूरत शायद न होगी।'

दूसरे खण्ड मे मात्राओ मे समता तो नही है परन्तु अन्त्यानुप्रास अवश्य है यथा पन्त जी की कविताओं मे मिलता है,

तीसरे खण्ड मे स्वच्छन्द छन्द हैं, इनमे न मात्रायें सम हैं न अन्त्यानुप्रास का ही विधान हैं, यही मुक्त छन्द हैं।

'परिमल' की कविताओ के पश्चात् दूसरा सग्रह है 'अनामिका' इसमें कुछ तो रवीन्द्र, अरविंद की रचनाओ का अनुवाद है, मौलिक रचनाओ मे प्रमुख रचनायें ये है--

१—सम्राट एडवर्ड अष्टम के प्रति, खडहर के प्रति, दिल्ली, तोड़ती पत्थर, बनबेला, नाचे उस पर श्यामा, प्रेयसी, हिन्दी के सुमनों के प्रति, उक्ति, सरोज स्मृति, मुक्ति, ठूँठ, कविता के प्रति, वे किसान की बहू की नवीन आँखे, राम की शक्ति पूजा, नर्गिस, बादिद-वन्दना। इसमे कुछ कवितायें 'परिमल की भी सम्मिलत है, अनामिका नाम से दो सग्रह है, हमने 'नवीन संग्रह' से ऊपर

कवितायें दी है जिसका प्रकाशन १६३७ मे हुआ, तीसरा संग्रह है 'गीतिका' (१६३६) जो प्राय रहस्यवादी गीतो का सग्रह है) 'तुलसीदास' कवि का अन्तर्मुखी पद्धति पर लिखा गया 'काव्य' है, इसके बाद कुकुरमुत्ता, बेला, नये पत्ते, वर्षा गीत आदि सग्रह है जिसमे कवि के काव्य पर किये गये अनेक प्रयोग सम्मिलत है, एक और संग्रह है अर्चना (१६५०) तथा साहित्यकार ससद (प्रयाग) द्वारा प्रकाशित 'अपरा' नामक सग्रह प्रकाशित हुआ है जिसमे कवि की चुनी हुई कविताये सग्रहीत की गईं है, पर 'कुकुरमुत्ता' तथा अन्य 'भदेस' प्रयोगो को तोड़ दिया गया है।

'परिमल' की कविताओ को हम निम्नलिखित धाराओं मे बांट सकते है— १—रहस्यवादी २—राष्ट्रीय ३—आख्यान-प्रधान ४—लौकिक शृ गार प्रधान ५—चिन्तन प्रधान।

आख्यानात्मक—परिमल मे 'पचवटी प्रसग' आख्यान को लेकर चलने वाली कविता है, जिसमें राम, लक्ष्मण, सीता, व शूर्पणखा के चरित्रो पर प्रकाश डाला गया है, किन्तु परिमल काल मे कवि पर दर्शन का अधिक प्रभाव होने के कारण, राम, लक्ष्मण, सीता के सम्वाद दार्शनिक विचारों से भारावनत हो गये है, हमने "विचार व विकास" में एक लम्बे उद्धरण में, ब्रह्म, कवि, जगत के सम्बन्ध मे राम, लक्ष्मण, के विचार दिये है।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से कवि ने इस प्रसंग मे कोई नवीनता उत्पन्न नहीं की, राम, लक्ष्मण के प्रति शूर्पणखा के व्यवहार को दानवीय बनाकर मैथिलीशरण गुप्त ने पचवटी मे राम के अनुचित व्यवहार का मार्जन कर दिया है, इस प्रकार की कोई चेष्टा इस 'प्रसग' मे निराला ने नहीं की, यहां तो रामचरित-मानस के राम व लक्ष्मण का ही पूर्ण रूप से अनुकरण किया गया है। शूर्पणखा राम के पास उसी प्रकार इन्हे पति बनाने का प्रस्ताव करती है, और वह लक्ष्मण के पास पुनः भेजते है, शूर्पणखा को क्रोध हो

आना स्वाभाविक है और तब उसके नाक कान काट लिये जाते हैं।

'लक्ष्मण' के चरित्र में इतनी नवीनता अवश्य है कि वह मातृ भक्ति का आदर्श उपस्थित करते हैं. उन्होंने 'माता' को निखिल जगत में व्याप्त महा-शक्ति के रूप में देखा है, जैसे वह स्वा० राम-कृष्ण की 'काली' की वन्दना कर रहे हों, मातृभक्ति का लक्ष्मण अद्वैत-पद्धति पर निरूपण कर वे अपने लिए भक्तिभाव को पाने के इच्छुक है—"मुक्ति नहीं जानता मै, भक्ति रहे काफी है।"

शूर्पणखा का चित्र भव्य होकर भी अधिक आकर्षक नही हो पाया।

'पचवटी प्रसग' काव्य की विशेषता है, भाषा का सुगठित तत्व अर्थ-सौरस्य और नूतन-छन्द विधान। भाषा अत्यन्त प्रौढ़ और संस्कृत शब्द निष्ठता को सीमा तक पहुँचाने वाली है, अर्थ सौरस्य की दृष्टि से विचार कस कस कर पदावली मे दबाये गये है। साथ ही कथा के प्रवाह, व वार्तालाप के तारतम्य मे बाधा नही आती। मुक्तछन्द के अद्भुत प्रवाह के बीच राम व लक्ष्मण के दार्शनिक संवादो के कारण ' पचवटी प्रसग" एक दुरूहतामय वातावरण उपस्थित कर देता है, वक्तव्य की सहजता तथा उक्ति की मार्मिकता के स्थान पर विचारो की सघनता इस काव्य की मुख्य विशेषता है, परिमल के 'इस काव्य' की पूर्णता "राम की शक्ति पूजा" मे होती है, कवि ने पौराणिक आख्यानो को लेकर मनोवृत्तियो का जो दोलन प्रस्फुटन और उन्नयन दिखाया है उसका चरम उत्कर्ष "राम की शक्ति-पूजा" मे होता है।

राष्ट्रीय कविताओं मे प्रमुख है "महाराज शिवाजी का पत्र" यह कविता भूषण-काव्य की परम्परा मे है, जिसमे हिन्दू-हिन्दूधर्म के नाम पर शिवाजी के सगठन की प्रशसा की जाती है और 'विधर्मी" औरगजेब की घोर निंदा होती है, अन्तत. विश्वात्मवादी

कवि 'निराला' और हिन्दूधर्म का असहिष्णु रूप एक साथ कैसे सुसगत सिद्ध होगा ?

किन्तु यहाँ परस्पर विरोध नहीं है, कहा जा सकता है कि कवि मे सम्प्रदायवादी तत्व प्रबल है, नहीं, निराला ने इस कविता तथा तुलसीदास मे मोगल-शासन का कुत्सित रूप चित्रित कर, आर्य रक्त मे उबाल उत्पन्न करना चाहा है, परन्तु कवि का उद्देश्य हिन्दू मुस्लिम घृणा प्रसार नहीं, अपितु स्वतन्त्रता-प्रिय शिवाजी के पत्र की प्रशसा है, इस समय देश की स्थिति वह नही है जो शिवाजी के समय मे थी, तब मुसलमान 'विदेशी' थे और स्वतन्त्रता के युद्ध 'धर्म' का नाम तब अस्वाभाविक न था। अत 'निराला' ने इस कविता मे सुप्त, दासानुदास भारतीयो के हृदयो मे राष्ट्रीय-चेतना जागृत करने का ही प्रयत्न किया है, अहिन्दुओ के विरुद्ध विष वमन करने का नहीं।

'मात्र भावोत्तेजन' इस कविता का प्राण है, उत्साह व क्रोध की भावनाओ के जगाने के लिए कवि ने 'स्मृति, चिन्ता और मति' इन तीन सचरियो से अधिक कार्य लिया है, अर्थात् कवि शिवाजी द्वारा, उत्साह व घृणा जगाने के लिये कभी औरगजेबी अत्याचारो की स्मृति दिलाता है, कभी वीरधीरो के कर्त्तव्य की याद दिलाता है, कभी देश, धर्म, जाति के भविष्य के विषय मे सोचने को विवश करता है, कभी मुगलो की दासता स्वीकार करने के कारण 'जयसिंह' को धिक्कारता है, और कभी अपने वीरत्व की ओजस्वनी व्यजना द्वारा आतक उत्पन्न करता है। निराला उपदेश देने को कला के लिए कलक मानते है यद्यपि 'उपदेशतत्व' का यहाँ अभाव नही है तथापि वह भाव जगाने का साधन मात्र बनकर आया है, 'पंचवटी प्रसग' जैसी प्रवचन-पद्धति यहाँ नही है। युग की दृष्टि से यह कविता गुप्त जी के स्कूल की है, 'सिद्धराज' विकट-भट आदि काव्यो की परम्परा मे इसे रक्खा जा सकता है। किन्तु नूतन-युग के प्रवर्तक कवि की रचना होने के कारण नवीन उपमाओ का भी विधान है यथा—

हाय री यशोलिप्सा
अंधे की दिवस तू—
अंधकार रात सी।

समास पद्धति, शब्द सौष्ठव व अनुप्रासमयी भाषा की भी यत्र-तत्र छटा है यथा—

कीर्ति शोणिमा में यह, कालिमा कलंक की
गन्ध-व्याकुल-समीर-मन्द-स्पर्श सरस—
भीरु, पीनोरु, नत-नयना नवयौवना पर—
गौरव-प्रलम्ब-ग्रीवा

किन्तु प्रधानतया भाषा सामान्य बोलचाल की ही है, शिवाजी के अन्तर्द्वन्द्व को बड़ी ही मनोरम पद्धति पर अभिव्यक्त किया गया है—

द्विधा में पड़े हैं प्राण
अगर मैं मिलता हूं
'डर कर मिला है'
यदि लूं तलवार
तो धार पर बहेगा खून
दोनों ओर अपना ही

भारतीय समाज के पतन के सुन्दर चित्र भी हैं भाइयों के लिये शेर और क्रीतदास तुर्कों के इस उद्धत और विवेक शून्य राज राजेश्वरों के विरुद्ध यह कविता हमारी घृणा को जगाती है, कवि संगठित हो जाओ के नारे से जैसे सन् १९२२ में सारे विक्षुब्ध राष्ट्र को विदेशियों के विरुद्ध खड़ा करने के लिये ललकार रहा है, 'क्योंकि इसी उपाय से हिंदुस्तान मुक्त होगा, घोर अपमान से' जितने विचार आज मारते तरंग हैं।

साम्राज्यवादियों की भोग वासनाओं में
नष्ट होंगे चिरकाल के लिये।

साम्राज्यवादियों के रूप में औरंगजेब को रख कर ही कवि ने

देश धर्म को जगाया है जातीयता के तत्वों का पूर्ण विस्मरण कभी कल्याण कर नहीं होता अपनी सस्कृति पर ही मनुष्यता का भवन बनता है पर यह आवश्यक नहीं है कि जाति-प्रेम हिटलर शाही को जन्म देकर ही रहे।

अत कवि जातीयता की भावनाओ को भी उत्तेजित करता है।

उठता नही है कभी मेरा हाथ, नरनाथ,
देख कर हिन्दुओ को रण में, विपक्ष मे,
कैसी है दासता पेट के लिये ही,
करते है, भाई भाई—

यहाँ यदि कवि शिवाजी के मुख से विवेकानन्द जी का अद्वैत वादी समता का उपदेश दिलवाता, तो न इतिहास के साथ न्याय होता न मानवीय उदारता के साथ।

पचवटी प्रसग की तरह यह कविता भी मुक्त छन्द के प्रवाह से उद्दीप्त है, एक वीर की भावनाओ के मुक्त व्यक्तिकरण के लिये यहाँ छन्द अत्यन्त सहायक हुआ है।

'निराला' ने अतीत के रमणीय खण्डो मे भी भ्रमण किया है, जलते हुये जगत मे बसने वाले छायावादियो के लिये वृन्दावन की कसकती हुई स्मृति आवश्यक थी इससे उनका विद्रोह स्वर और भी तीव्र होता था। वर्तमान के असतोष को कम करने के लिये भविष्य की आशा और अतीत की मधुर स्मृति आवश्यक है। ऐसी कविता मे कवि प्रत्यभिज्ञा के बल पर अतीत के विगत चित्रो मे से एक एक को स्मरण करता है वर्तमान से उनकी तुलना करता है, रोता और आँसू बहाता है और अपनी हानि स्थिति को दूर करने के लिये विप्लवी बनकर अवाँछनीय तत्वो के विरुद्ध उठकर खड़ा हो जाता है इस प्रकार की कविताओ मे जब कवि का अतीत के चित्रो की मधुरता मे मन डूबा रहता है तो वह श्रान्त मन के लिये।

शीतिल बयार" का ही काम करती है और कभी वर्तमान की

तुलना में उनमें विप्लव का शब्दालोडन भी होता है. 'यमुना के प्रति' कविता में प्रथम तत्व अधिक मिलता है, वर्तमान के खिन्न जीवन ने इस कविता के अन्त में एक विषाद व निराशा को शरण दी है एक मौन-उदास रागिनी, यमुनाके तट पर गूंजती रह जातीहै जो मन को एक अव्यक्त क्षीण प्रकाश से भरती है, कविता में फिर भी कल्पना-विलास अधिक है पंत की छाया, अनङ्ग, अप्सरा, तथा निराला की माया, तुम और मैं आदि की परम्परा में यह 'यमुना के प्रति' भी कविता आती है,इसमें कविने किसी वस्तु को देखकर विविध अप्रस्तुतों की योजना करता है अप्रस्तुतओं का आधार सदा 'सादृश्य' या साधर्म्य ही रहे यह आवश्यक नहीं दुरारूढ़ कल्पना के बल पर कवि नक्षत्र को 'शुचि उलूक' और स्याही की बूंद को पंत के समान गोलतारा भी बना सकता है, केवल रूप रंग आकार या व्यापार को ऊपर से देख कर भावना पर उनका प्रभाव परखे बिना ही रख दिये जाते हैं, फिर भी छायावाद में सादृश्य या साधर्म्य के स्थान पर प्रभाव-साम्य की ओर ही कवियों का अधिक ध्यान रहा है कहीं कहीं केवल सूक्ष्म, आंतरिक साम्य को लेकर ही अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया गया है,यहाँ उपमान के लिये लाई हुई वस्तुयें प्रतीक के रूप में आई हैं छाया, अनङ्ग, माया, यमुना के प्रति आदि कविताओं में पन्त व निराला ने मनमाने आरोप भी किये हैं, वैचित्र्य उत्पन्न करने के लिये, कारण यह है कि इन बाह्य वस्तुओं पर मानसिक वृत्तियों के आरोप का प्रचलन छायावाद में अधिक रहा। यथा यमुना के प्रति में—

मुग्धा के लज्जित पलकों पर—
तू यौवन की छवि अज्ञात,
आँख मिचौनी खेल रही है—
किस अतीत-शिशुता के साथ।

अब यहाँ कवि ने यमुना को देख कर उसकी कल्पना एक मुग्धा के रूप में की है, और उसकी छवि को नव-यौवन-मुग्धा की

दृष्टि-छवि के रूप में देखा है, अप्रस्तुतो का विधान चाहे सादृश्य को लेकर चला हो या प्रभाव को लेकर परन्तु उनके अन्तर मे कोई भाव अवश्य होना चाहिये अन्यथा सारे उपमान रग विरगे खिलौनो के समान लगते हैं, यमुना के प्रति कविता की सबसे बडी विशेषता यह है कि यहाँ सारे उपमान-विधान के नीचे एक भाव-धारा प्रवाहित रहती है, यमुना को देखकर कवि अतीत जीवन का स्वर्गीय मुक्त आनन्द की स्मृति मे विभोर उठता है यह आत्म— विभोरता कवि के बाह्य आरोपो को एक पुष्ट आधार दिये रहती है। वर्तमान जीवन का दैन्य इस कल्पना विलास को भावना संयुक्त करके हमारी रागात्मिक वृत्तियो का अनुरजन करता है और यही कारण है कि पन्त की छाया और निराला की यमुना के प्रति कविताओं को साथ साथ पढ़ने से निराला की कला की अपेक्षाकृत स्वाभाविकता की प्रशसा करनी पड़ती है रूपो और चित्रो की समष्टि जब किसी हृदय स्थित भाव से कट कर सम्मुख आती है तो वह केवल Menalt Bombast मानसिक-स्फीति मात्र रह जाती है। यमुना के प्रति मे कवि ने अतीत के मधुर-चित्रो का विधान भारतीय सहज अनुराग को स्पर्श करते हुये, नूतन अभिव्यजना-पद्धति पर किया है, लाक्षणिक प्रयोगो द्वारा इसमे एक अद्भुत आकर्षण आ गया है—

बता कहाँ अब वह वशीवट, कहाँ गये नटनागर श्याम।
चल चरणो का व्याकुल पनघट, कहाँ आज वह वृन्दाधाम।

यहाँ 'पनघट' को व्याकुल कहा गया है, पनघट व्याकुल नहीं अपितु 'पनघट' पर एकत्र ब्रजवासियो की व्याकुलता की ओर सकेत है। इसी प्रकार कवि लहरो मे कहीं अतीतगूढ़ हुलास देखता है कहीं गूढ़ मर्म को वह निशीथ की 'नग्न-वेदना' को नही भूल पाता जिससे गोपियाँ विह्वल रहती थी।

रोमांटिक कवियो की एक विशेषता यह है कि वे सामान्य वस्तुओं मे असामान्य सौन्दर्य के दर्शन करते है, और फलस्वरूप वह

सामान्य वस्तु एक अलौकिक स्तर पर जा बैठती है यथार्थ कैसे अयथार्थ मे बदल जाता है यह देखने के लिये हमे रोमाँटिक काव्य का अध्ययन करना चाहिये । वड्सवर्थ, की Solitaiy Reafer ऐसी ही कविता है निराला की ठूठ कविता ऐसी है यमुना के प्रति मे भी अतीत के सौन्दर्य को असाधारणता का आवरण दिया गया है कवि ने केवल यमुना के तट पर होने वाले रास, अभिसार बशी बादन आदि मोहक स्मृति चित्रो का ही उल्लेख किया है अन्य सारी घटनाओ की ओर पाठको को नही जाने दिया गया है । यद्यपि जागृति के इस नव जीवन का स्मरण कवि को रहता है परन्तु वह यमुना को छाया का माया मन्त्र बना कर देखना चाहता है गोपियो की अविकार शृ'गारिक प्रेम कीड़ाओ की ओर किये गये सकेत अत्यन्त काव्यमय बन पड़े है—

वह कटाक्ष-चचल यौवन मन
बन बन प्रिय अनुसरण-प्रयास
वह निष्पलक सहज चितवन पर
प्रिय का अचल, अटल विश्वास
असफल छल की सरल कल्पना,
ललनाओ का मृदु उद्गार
बता कहा विश्रब्ध हुआ वह,
दृढ़ यौवन का पीन उभार

किन्तु ये 'मादक' चित्र स्मृति के रूप में चित्रित होने के कारण करुणा के उद्दीपक बनते है न कि शृंगार के यथा कामायिनी मे देव-विलास के चित्र ।

कुसमित कुंजो में वे पुलकित, प्रेमालिगन हुये विलीन,
मौन हुई है मूर्च्छित ताने, और न सुन पड़ती अब बीन
अब न कपोलो पर छायासी, पड़ती मुख की सुरभित भाप
भुजमूलो में शिथिल बसन की, व्यस्त न होती है अब माप

१—कामायनी—'चिन्ता' सर्ग

इसी प्रकार "यमुना के प्रति" कविता मे :—

कहां छलकते अब वैसे ही, ब्रज नागरियो के गागर
कहाँ भीगते अब वैसे ही बाहु उरोज अधर अम्बर ॥

× × × ×

वह अज्ञात-पतन लज्जा का स्खलन शिथिल घू घट का देखा

उक्त स्थूल चित्रो के साथ कवि ने 'सकेतात्मकता' से अधिक कार्य लिया है विगत अतीत के ज्ञात अज्ञात रहस्यो को कवि ने एक निगूढ़ खिन्नता के वातावरण मे जो वर्णन प्रस्तुत करता है वह स्पष्ट चित्र मस्तिष्क मे न बना कर विषाद से हृदय को धूमिल करने वाला है।

अत यह कविता विवरणात्मकता Matter of Factness से बच सकी है, नन्दन बन के कल्पित क्रीड़ा-विहार की रूप-योजना के स्थान पर कवि ने वर्तमान जीवन के उजड़े अरण्य की शून्यता भी प्र तुत की है, जैसे सुन्दर चित्रो के ऊपर धुयें के स्तर जमाकर दिये गये हो अत बार बार कवि पूर्ण परिचित यमुना को पहचानने का सा प्रयत्न करता चलता है जिससे एक मोदक विस्मय जागृत हो जाता है। कौतूहल की भावना (Jntellectual Curiosity) ने यमुना को सूक्ष्म मार्मिक छवियो का वरदान दे डाला है।

जीवन की इस सरससुरा मे कह यह किसका मादक राग।
फूट पड़ा तेरी ममता मे जिसकी समता का अनुराग ॥

कहीं कही उस अलक्षित शक्ति की मधुर संकेत है—

कलियों की मुद्रित पलको मे सिसक रही जो गन्ध अधीर।
जिसकी आतुर दुख गाथा पर, ढुलकाते दृग पल्लव नीर ॥
बता, करुण-कर किरण बढ़ा कर, स्वप्नो का विचित्र संसार।
आँसू पौछ दिखायो किसने, जगती का रहस्यमय द्वार।

नूतन युग के प्रारम्भ काल मे यह कविता अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है, इसके प्रयोग लाक्षणिक, और उपमान नवीन है

और प्रतीको के रूप मे भी आये है, सूक्ष्म सौन्दर्य चेतना का प्रतिनिधित्व करने के साथ, मौसल मौन्दर्य का सयोग भी यहाँ मिलता है।

प्रयोगो के 'विरोध' व वैचित्र्य ने छायावादी शैली का एक सुन्दर रूप यहाँ प्रस्तुत होता है।

किस अतीत का दुर्जय जीवन,...... .. कनकपुष्प सा गूथ लिया....... .... ।

अमूर्त के लिये मूर्त उपमान—क्या आँसू सा ढुलक गया वह, विरह विधुर उर का उद्‌गार।

विशेषण विपर्यय—किस विनोद की तृषित-गोद मे, आज पोछती वे दृग नीर (इसी प्रकार, शिथिल, सेज निद्रित जीवन, करुण कर आदि का प्रयोग हुआ है।)

मूर्त के लिये अमूर्त उपमान—निखिल विश्व की जिज्ञासा सी (यमुना के लिये)

'मानवीयकरण—मुग्धा के लज्जित पलको पर, तू यौवन की छवि अज्ञात, आँख मिचौनी खेल रही है, किस अतीत शिशुता के साथ।'

ध्वन्यर्थ व्यजना—टलमल पद, विलोल-हिल्लोल, मत्त भृङ्ग सम, सङ्ग सङ्ग तम,

शब्द सहिति—पावस की प्रगल्भ धारा मे,

उक्त नूतन प्रयोग कवि ने रवीन्द्र की कविताओं से प्रेरणा लेकर किये हैं।

जो छायावादी शैली को गुप्तजी, मुकुटधर पाँडेय की इतिवृत्तात्मक शैली से अलग कर देता है, शुक्ल जी के अनुसार छायावाद सहसा भूकम्प के रूप मे हिन्दी काव्य क्षेत्र मे आया था 'यमुना के प्रति" कविता को भूकम्प के रूप मे लिया जा सकता है। एक दो पद अवश्य ऐसे है कि जो काव्य की प्रकृत पद्धति से अलग होकर शब्द सहिति

के सौन्दर्य प्रदर्शन मे अर्थ-सौरस्य का उपहास करते चलते है परन्तु ऐसे प्रयोग विरल है, इसीलिये सध्या-सुन्दरी, यमुना के प्रति आदि कविताओ के सृष्टा को नूतन युग के प्रवर्तन का श्रेय मिलता है न कि गुप्तजी व मुकुटधर पाण्डेय आदि को जो केवल 'रुचि' दिखाने के लिये कह उठे थे—

'सबको है तेरी ही चाह—ताक रहे सब तेरी राह' यमुना के प्रति कविता महाराज शिवाजी के पत्र के बिल्कुल विपरीत किनारे पर है जो सम्मोहन और सूक्ष्म तरल सौन्दर्य की व्यजना के कारण जहाँ चित्रो का एक अभिनव रूप हमारे सम्मुख खड़ा करती है, वही 'भावना' को स्पर्श कर एक नीरव विषाद मे भी डुबो देती है, यमुना उस विरहिणी पथिक-प्रिया के समान है, जिसका प्रियतम सदा के लिये चला गया है, और आज उसकी लहर-अधरो से निकले हुये अतीत के गान हमे एक विषण्ण-मुग्धता मे निमग्न किये बिना नही रहते, निराला की कला का पूर्ण उत्कर्ष (सन २२ मे ही) इस कविता मे दिखाई पड़ता है।

संध्या सुन्दरी

मुक्त छन्द मे लिखी हुई यह कविता प्रकृति के एक अभिराम दृश्य का शृंगारिक—पृष्ठ-भूमि पर मनोरम चित्र उपस्थित करती है, यह "विरहाकुल-कमनीय कण्ठ" से निकली हुई एक झकार ही जैसे सुन्दरी का रूप धारण कर "सन्ध्या" के वेश मे उपस्थित हो गई है, विरह-दग्ध कवि प्रकृति के सुन्दर दृश्य को देखकर तादात्म्य के क्षणो मे अपनी अतृप्ति का जब प्रक्षेपण करता है तो उषा "नवल नागरी" बन जाती है और सन्ध्या सुन्दरी। कविता मे दो तत्व प्रधान है (१) चित्र (२) वातावरण वस्तुत चित्र मे वातावरण और वातावरण मे चित्र को चमकाया गया है। 'पन्त के 'तारा' मे भी वातावरण अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है और यहाँ सन्ध्या सुन्दरी का

भी। सन्ध्या की रगीनी ने परी का रूप धारण किया है, वह धीरे-धीरे मेघमय आकाश से उतरती है, तिमिर अचल है, सुन्दरी की मुद्रा जरा गम्भीर है (सन्ध्या के समय प्रकृति की स्तब्धता की ओर सकेत) हँसने वालो मे केवल तारा है जो सुन्दरी के काले बालो मे गुँथा हुआ है, जो अभिषेक का प्रतीक है। सुन्दरी अलस लता मे कोमल-कली के समान खिली नीरवता के कधे पर बाँह डालकर छाया के समान अम्बर पथ से चल पड़ी है। वीणा, अलाप और मुखर खुरों की रुनझुन से रहित अशब्द आकाश से उतर रही है ऐसा लगता है जैसे चुप रहने के लिये सारी सृष्टि का नियति-इगित कर रही हो, सुन्दरी मादकता का वितरण करती हुई, विस्मृति के मीठे स्वपनो मे संसार को निमग्न करती रही है।

चुपचाप आती हुई सुन्दरी के चित्र पर वातावरण की अनुकूलता की रक्षा में गाम्भीर्य और नीरवता के झीने पर्दे डाल दिये गये है फलत अनुभावो का चित्रण यहाँ नहीं हो सका, न कवि का यह अभीष्ट ही था, साथ ही सुन्दरी के चित्र मे अवयवो का गठन भी कवि ने नही दिखाया, तारा भी अभिषेक के लिये आया है, जो बाह्य वस्तु हैं, परो सी शब्द कह कर आगे मौन हो गया है, केवल तिमिर के अचल की ओर अवश्य चला है, अत कलाकार उभरी रेखाओ से काम न लेकर केवल मेघमय आकाश मे तिमिराञ्चल मे लिपटी आकृति को जो छाया के समान सूक्ष्म है, हमारे सम्मुख लाता है, न मुख का उपमान खोदा गया है, न उरोजो का न पदो का, एक धुंधली छाया के रूप में सध्या-रानी के आगमन की अनुभूति कवि करता है और वह अनुभव करता है मानो पद्मों से पुजीभूत सरोवरों, सरिता कीलहरो, हिमश्रगो और तरगायित समुद्रों मे 'चुप चुप चुप' शब्द गूंजने लगा है क्यो ? संध्या सम्राज्ञी जो पधार रही है, सारी सृष्टि उसकी गौरव-रक्षा के लिये उसके सौन्दर्य दर्शन का लाभ उठाने के लिये तथा सुन्दरी के दिग्व्यापी प्रभाव की व्यजना के लिये जैसे निःशब्द होकर रह जाती है। यहाँ यदि कवि सौन्दर्य को मूर्त करता

तो सृष्टि-व्यापी प्रभाव मे कमी आती, सृष्टि का सूक्ष्म स्पन्दन कवि ने देखा और तब वह अर्ध रात्रि मे एक विहाग गा उठा—

सध्या की मानवीय क्रियाओ द्वारा उस अमूर्त सौन्दर्य को कवि ने सर्व-सुलभ और स्वभाविक बनाया है, सध्या स्नेह-दान करती है, मादकता का सचार करती है और मीठे स्वपनो की थपकी द्वारा सारी सृष्टि को सुला देती है।

चित्रकला कहाँ असफल होती है यह यहाँ दृष्टव्य है, चित्रकार पूरा चित्र उतार देता परन्तु धूमिल आकृति का आगमन और अव्यक्त शब्द चुप, चुप को दिखाना असम्भव था, साथ ही स्नेहदान की क्रिया और मादकता का वितरण भी है। कवि इसीलिये चित्र-कार से बड़ा है, एक शब्द मे अनेको चित्रो और अर्थों की व्यजना वहां छिपी रहती है, चित्र की गति हीनता और अव्यक्त को व्यक्त करने की शक्ति के अभाव के कारण काव्य के सम्मुख तभी झुकना पड़ता है इसीलिये मात्र रूप रचना से काव्य को ऊपर माना जाता है, केवल मूर्त विधान काव्य नही है, पन्त मे मार्मिक छवियो को आस पास की पूर्ण परिस्थितियो गतियो, और चेष्टाओ के साथ दिखाया जाता है, निराला की इस कविता मे इन सबके बिना भी सध्या का चित्र अपनी सूक्ष्मता और गति शीलता के कारण वातावरण को सवाक कर सका है।

अत इस कविता का चित्रण अपनी अव्यक्त व्यजना के कारण छायावादी कला का एक सुन्दर उदाहरण है।

महादेवी की 'रजनी' का चित्र इसके सम्मुख हलका पड़ता है केवल रूपक अलकार मात्र।

धीरे धीरे उत्तर क्षितिज से—आ बसन्त रजनी
तारक मय शशि वेणी बन्धन
शीश फूल कर शशि का नूतन
रश्मि वलय कर-सित अवगुंठन
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे, चितवन से अपनी-
पुलकती आबसन्त रजनी।

परिमल की शृंगार प्रधान कविता

'जुही की कली'

'जुही की कली' कवि की वियोगावस्था की मधुर कल्पना है मनोहर देवी के स्वर्गवास के पश्चात विभ्रान्त कवि एक रात्रि मे श्मशान मे सती रहित शूली के समान, भ्रमण कर रहा था, उसने वृन्त पर पुष्पिता, त्रियक-नयना जुही की कली को देखा, कवि की कल्पना जाग उठी, प्रणय-स्मृतियो ने कली की रति क्रीड़ा का चित्र कवि के अन्तर्मन मे खचित किया और उसकी चिन्तन शक्ति ने लौकिक-प्रेम मे अलौकिक रति का सकेत भर दिया—जुही की कली के सृजन की यही पृष्ठ भूमि है। कीटस ने नाइटिंगल मे और शैले ने 'स्काईलार्क' मे ऐसी ही कल्पनायें प्रस्तुत की है, परन्तु उक्त कवियों मे अपना राग-विराग अधिक व्यक्त हो गया है जबकि जुही की कली में केवल एक मधुर-क्रीड़ा का चित्र मात्र है—'कीटस ने अपनी सीमावद्धता की तुलना नाईटिंगल की स्वतन्त्र स्थिति से की है, वह 'बुलबुल की प्रसन्नता को देख कर स्वयं अपने दु:खो को विस्मृत करने की चेष्टा कर रहा है।

My heart aches and drowsy numbness pains
My sense, as thongh of Hamlock, I have drunk
....
It is not through envy of thy happy lot
But being two happy in thine happiness."Keats'

और जुही की कली में कवि अपने दु:ख की बात नहीं करता

विजन-वन-वल्लरी पर—
सोती थी सुहागभरी-स्नेह-स्वप्न- मग्ना—
अमल कोमल तनु, तरुणी-जुही की कली,

दृग बन्द किये शिथिल पत्राङ्क मे।

'जुही की कली' हिन्दी काव्य मे एक प्रकाश स्तम्भ है मुक्त-छन्द, ललित भावनाओ की स्वच्छन्द अभिव्यक्ति और एक अव्यक्त सकेतात्मकता के कारण यह कविता आचार-प्रधान नियमानुशासित, इतिवृत्त-प्रधान द्विवेदी युगीन काव्य के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में आती है। रीतिकाल की प्रतिक्रिया मे जिस संकीर्ण सुधार वाद (Puritanerin) का राज्य उस युग मे रहा उस मे हृदय के मुक्त उदगारो और निजी अभिव्यक्तियो के लिये स्थान नहीं था अत नवीन युग नूतन सौन्दर्य बोध कल्पना-विलास और हृदय के उच्छ्वासो का लेकर चला जिसमें कवि विराट सृष्टि मे व्याप्त सूदम चेतना को दिव्य नारी के रूप मे चित्रित करने लगा कविगण अपने अन्तर-मन की आनन्द विपाद मयी अनुभूतियो का चित्रण प्रकृति के सहारे करते हुये उनकी परिसमाप्ति उस अव्यक्त अनुभूत चेतन सत्ता मे करने लगे इस नूतन दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति के लिये सकेतात्मक भापा की आवश्यकता थी अत भाषा अभिधा से लक्षणा की ओर बढ़ती गई नवीन प्रयोगों का स्वागत हुआ जिनका आधार योरोप व बगाल था यही आन्दोलन छायावाद था।

जुही की कली मे यौवन की सारी उद्दामता एवम् ऊष्मा अभिव्यक्त हो उठी है। साथ ही कवि ने रति क्रीड़ा के चित्र को एक प्रतीक के रूप मे परिवर्तित कर दिया है। यही कवि की रूप में अरूपता की उपासना है जिसे सध्या सुन्दरी मे भी हम देख चुके है और यहाँ भी देखेंगे कवि ने स्वय लिखा है—

"अभी अभी हिन्दी साहित्य सम्मेलन मे एक नेता ने उसे साहित्य कहा है जो मानव जाति को उठाता हो, यहाँ जुही की कली मे जो कला है वह ऐसी ही है या नही, देख लीजिये तमसो मा ज्योतिर्गमय की काव्य मे उतारी हुई (यह) तस्वीर है......क्योकि मन के अन्धकार के बाद है जागरण, आत्म परिचय प्रिय साक्षात्कार

मन का प्रकाश·· ···कली मोते सी जगी हुई, प्रिय से मिली हुई, खिली हुई पूर्ण मुक्ति के रूप मे, सर्वोच्च दार्शनिक व्याख्या सी लगती है या नहीं देखें रचना मे केवल अलकार रस या ध्वनि नहीं है, उनका समन्वय है।

वस्तु स्थिति यह है कि कवि की उक्त दार्शनिक व्याख्या 'जुही की कली' के पार्थिव सौन्दर्य के सम्मुख अन्तर्निहित सी हो जाती है, इसकी प्रतीकात्मकता उतनी स्पष्ट और मूर्त नहीं है अत. जुही की कली का मूर्त-सौन्दर्य ही कवि की कला के उत्कर्ष दिखाने को पर्याप्त है।

निर्जन अरण्य मे सौभाग्य शालिनी-पति-प्राणा 'जुही की कली' स्नेह स्वप्न मे डुबी हुई है सौन्दर्य की कल्पना कालिदास की तरह वन से प्रारम्भ होती है, प्रसाद से नहीं, परन्तु प्रासाद के पर्यंक से पत्राँक कम शोभनोय नही। उसका प्रियतम, मलियानिल इस समय प्रवासी है, उसे प्रवास मे कान्ता की आनन्द कम्पिता देह-लता का स्मरण हो आता है, और तब मलियानिल, चलने की शीघ्रता मे 'पवन' बन जाता है, 'उपवन-सर-सरित, गहन-गिर-कानन कुंज लतादि को पार करता है, यहाँ 'उपवन सर-सरित' आदि की सख्या अधिक गिना कर पवन के औत्सुक्य व बेग की ओर संकेत किया है। बिरह-विधुर द्वारा कली के अनन्त यौवन की व्यंजना की गई है इसमे प्राकृतिक सत्य कवि के अनुसार यह है कि कली प्रति वर्ष खिलती है, वर्ष भर के पश्चात जब मलियानिल आता है तो वह कली को यौवना वस्था मे ही पाता है।

अधीर पवन, कुंजादिको को पार करता हुआ कली से केलि करता है—कली प्रिय आगमन को पहले से ही समझ लेती है वह बिहारी की नायिका के समान उर के उछाह है और 'तन की फूल' को समझ कर 'पलटन लगी दुकूल' की स्थिति मे उल्लसित हो उठती है, पवन आता है और तब—

नायक ने चूमे कपोल,
डोल उठी बल्लरो की लड़ी जैसे हिंडोल।

किन्तु स्नेह चुम्बन के पश्चात (कवि के अनुसार दिव्य शक्ति की अनुभूति के पश्चात) कली जागृत अवस्था मे होती हुई सुषुप्ति की अवस्था मे ही रहती है (सुषुप्ति की अवस्था मे चैतन्य जग उठता है—उपनिषद्) वह अलसित नेत्रो को बन्द किये शिथिल अवस्था मे रहती है वह प्रिय के आने पर भी सोती रहने के लिये क्षमा नहीं माँगती शायद सुख की अनुभूति को जग कर नष्ट नही कर देना चाहती। निर्दय नायक (निर्दय कहने मे कली का गर्व-व्यजित है) अपनी निष्ठुरता दिखाता है यहाँ प्रेम का आदेश है, कली चौक पड़ती है, और शय्या के पास प्रिय को देखकर नम्रमुखी होकर हसती है।

'रति-रग मे प्रिय के साथ तन्मय होकर खिल जाती है।'

कवि के अनुसार जूही की कली का पहले सुप्तावस्था मे होना, प्रियतम के सुख की अनुभूति प्राप्त करना, चकित होकर देखना, प्रिय को निकट देखकर आत्म लीन हो जाना, सब आत्मा की रहस्यानुभूति की निर्देशक घटनाये हैं। किन्तु सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली, मसल दिये गोरे कपोल, गोल को पढ़ कर पाठक का ध्यान प्राय. प्रतीक की ओर न जाकर मूर्त रति-क्रीड़ा में उलझ जाता है। कवि रहस्यानुभूति न सही, लौकिक शृङ्गार की अभिव्यक्ति मे पूर्ण सफल हुआ है, जुही की कली और मलियानिल की यह क्रीड़ा मानवीय भूमि पर होने से मार्मिक अवश्य है। अश्लीलता के आक्षेप में दो उत्तर हो सकते है।

कवि ने इस रति क्रीड़ा द्वारा दार्शनिक सत्य की भी व्यंजना कराना चाहा है और उसकी स्वयं व्याख्या की है, कबीर के बहुत से पद 'बहुरिया' के प्रिय दर्शन सम्भोग व विरह की अनुभूतियो को लेकर चलते हैं वहां पाठक कभी विस्मरण नहीं करता कि वह दिव्य रति के प्रसग मे है—

बाल्ला आव हमारे गेह रे
तुम बिन दुखिया देह रे
सब कोई कहे तुम्हारी नारी• मोको इहै अदेह रे।
एक मेक ह्वै सेज न सोवे, तब लगी कैसा नेहरे

अतः जब कबीर 'बिटिया' द्वारा बाप से कहलवाते हैं कि हे बाप! जबतक मेरा विवाह न हो तबतक तूही मुझसे विवाह करले तो हम घृणा से मुख फेर सकते हैं अतः यह रहस्यानुभूति लौकिक रति मे वर्णित होने पर भी अलौकिक ही रहेगी।

+ कवि ने शृङ्गारात्मकता को सीमा पर पहुँचा कर भी तट, स्थता का परिचय दिया है,

यह तटस्थता निराला के काव्य की प्रमुख विशेपता है, आत्म-वादी कवि अत्यधिक मॉसल उक्तियो मे भी अलिप्त रखने और रहने की शक्ति रखता है अत. 'जूही की कली' दोष रहित है।

इस कविता मे शब्द रचना देखने ही योग्य हैं—

विजन वन वल्लरी, अमल कोमल तनु, तरुणी, कान्ता कम-नीय गात, गहन, गिरि कानन, निद्रालस वकिम विशाल जैसी पदावलियो का निर्माण बगाल की पद्धति पर हुआ है, पूरे पद के सौष्ठव का अ.धेक ध्यान रक्खा गया है।

प्रकृति के कोमल व्यापारों का इतना सूक्ष्म निरीक्षण 'जूही की कली' ही प्रस्तुत कर सकी है, आगे बनवेला नामक कविता भी इसी कोटि में आती है प्रकृति मानव की सहचरी है, उसकी क्रियाओं और दृश्यो में मानवीय वृत्तियों और व्यापारों का प्रतिबिम्ब देखना स्वाभाविक ही है, अत जूही का मानवीय करण इतनी कलात्मकता के साथ (१९१६ मे ही) निराला जैसे कवि द्वारा ही सम्भव था, कल्पना शक्ति का पूर्ण वैभव यहाँ दर्शनीय है, कल्पना के द्वारा ही सबेदनशैली कवि जूही की स्वाभाविक क्रियाओं को नायिका की

क्रीड़ा प्रक्रिया द्वारा इतना अनुरंजित कर सका है हम आँखें रखते हैं पर देखते नहीं, कान रखते हैं पर सुनते नहीं।

यह कवि ही है जो जड़ प्रकृति की चेष्टाओं को इतना मनोरम बना सका है उसकी अन्तचेतना को पहचान सका है। सन्ध्या सुन्दरी के समान यहाँ भी कवि वातावरण के सृजन मे पूर्ण सफल हुआ है। पूरा चित्र अत्यन्त स्थूल होने पर भी अन्त मे अज्ञात स्पर्श से अपने को रहस्यमय बना लेता है, 'जूही की कली' के पार्श्व मे खड़े होकर कवि ने अपनी अनुभूति से जैसे जागृत स्वप्न,सुषुप्ति की अवस्थाओं को पार कर तुरीआ अवस्था की ओर जाने का संकेत किया है तभी तो वह स्वय कहता है तमसोमा ज्योतिर्गमय परन्तु अधिकाँश पाठक इस दार्शनिक व्याख्या से यदि न भी सतुष्ट हों तो भी 'कलाकार' की जूही की कली अपने सौरभ से उन्हे अवश्य मुग्ध कर देगी।

The poets are "Makers see" Because, we have eyes yet see not, ears that hear not, and hearts neither feel nor understand. 'Browning'

तरंगों के प्रति

कवि ने लिखा है 'हिन्दी के नवीन पद्य साहित्य' में विराट चित्रो के खींचने की और कवियो का उतना ध्यान नहीं जितना छोटे छोटे सुन्दर चित्र की ओर है युक्त प्रान्त, बिहार, मध्यभारत आदि ऐसी प्रकृति की गोद मे है जहां विराट के दृश्यों की अपेक्षा बाग तथा उपवनों के छोटे चित्र ही बिशेषता समझते हैं। बड़ी बड़ी नदियो, समुद्र तथा आकाश के उत्तमोत्तम चित्र नहीं मिलते, काव्य मे सहित्य के हृदय को दिगन्त व्याप्त करने के लिये बिराट रूपो की प्रतिष्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है। रूप की सार्थक लघु विराट कल्पनायें ससार के सुन्दरतम रंगो से जिस तरह अकित हों, उसी तरह रूप तथा भावनाओ का अरूप में सार्थक अवसान भी आवश्यक है।

'कला की यही परिणति है।'

कवि के अनुसार हिन्दी मे इस कोटि की कला का प्रारम्भ छायावादी कवियो से हुआ है।

पन्त जी के चित्रो की अभीप्सिता नवीनता की प्रशंसा निराला ने बराबर की है।

पन्त के 'नौका-विहार वीचि-विलास आदि कविताओं के साथ हम निराला की यह कविता 'तरगों के प्रति' रख सकते हैं। कवि ने इस प्रकार की चित्र-प्रधान कविताओं मे ऊपर दो विशेषतायें इगित की है—

*लघु-विराट चित्रों का विधान।

*रूपो और भावनाओ का
'अरूप' मे सार्थक अवसान।

"तरगों के प्रति" कविता मे ये दोनो तत्व पूर्णतया मिलते है प्रथम चित्रो की विराटता देखिये—

किस अनन्त का नीला अचल, हिला हिला कर—
आती हो तुम सजी मण्डलाकार।
सोह रहा है हरा क्षीण कटि मे अम्बर शैवाला

दूर से आती हुई मण्डलाकार तरग-माला अनन्त के हिलते हुये नीले अन्चल सी जान पड़ती हैं, तरंग-रूपी सुन्दरी के कटि प्रदेश मे नोला आकाश जल के शैवाल के समान जान पड़ रहा है।

मानवीयकरण तो इस कविता मे अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है—

तिमिर तैर कर भुज मृणाल से, सलिल काटती
आपस मे तुम करती हो परिहास।
गला शिला का कभी ऐंठती, कभी डाँटती,
कभी दिखाती हो जगती को त्रास।

किन्तु कवि केवल रूप को लेकर नहीं चलता, यहां पन्त व निराला की कला का अन्तर स्पष्ट देखा जा सकता है, निराला रूप

चित्रण कम और भावनाओ की व्यंजना अधिक करते है वे इस दृष्टि से 'प्रसाद'के अधिक निकट है, पन्त रूप-विलास के लिये प्रायः भावनाओ की चिन्ता नहीं करते, निराला रूप-चित्रण से प्रारम्भ कर भावनाओ में डूबने उतराने लगते है, इसके प्रमाण स्वरूप पन्त की 'उच्छ्वास' और 'आँसू' कवितायें देखी जा सकती है इन कविताओ में प्रकृति चित्रण प्रधान हो गया है और कवि का हृदयोच्छ्वास कल्पना के विलास मे छिप गया है, कोमल कल्पनाओ ने मसृण भावनाओ को गौण स्थान दे दिया है, 'आँसू' मे पन्त अपने जीवन को पावस ऋतु सा बता कर फिर पावस का वर्णन करने मे डूब जाते है जो उद्दीपन की पुरानी पद्धति पर है, पर मूर्ति उपस्थित कर देने की कला के कारण अभीप्सित नवीनता आ गई है तरंगों के प्रति कविता मे निराला ने उपर्युक्त चित्र देकर भावना का सूत्र पकड़ लिया है, और वे तरगो के 'अरूप' मे सार्थक पर्यवसान के लिये पुकार उठते है।

किसके स्वर मे आज मिला दोगी वर्षो का गान ?
आज तुम्हारा किस विशाल वक्ष स्थल मे अवसान ?

इस कविता मे कवि का विषण्ण स्वर चीत्कार कर उठा है, लोक-जीवन की ओर सहसा उसकी दृष्टि उठ जाती है, निराला की कला की एक मुख्य पहचान यह है कि असाधारण चित्रो का विधान करते करते वे सहसा लोक जीवन पर आ जाते है और इस प्रकार वैयक्तिक अनुभूतियाँ समष्टि के साथ मिल कर आकाशचारी कवि को पृथ्वी पर बने हुये नीड़ मे लौटा लाती है, सरिताओं और समुद्र के किनारे बहुत से शव जलाये जाते है, कवि का ध्यान उधर जा पड़ता है, मानवीय सवेदना, सौन्दर्य के उपकरण चुनने की क्रिया को वहीं छोड़ कवि से कहलाती है—

बहती जाती साथ तुम्हारे स्मृतियाँ कितनी,
दग्ध चिता के कितने हाहाकार।
नश्वरता की थीं सजीव कृतियाँ कितनी—

अबलाओं की कितनी करुण पुकार।

अन्त में कवि असीमता में तरंगों का अवसान कर बिदा लेता है—

उस असीम में ले जाओ।
मुझे न कुछ तुम दे जाओ॥

भिक्षुक—हमने अभी कहा था कि निराला जन-जीवन से नाता तोड़ कर कल्पना के कोरे विलास में मस्त रहते वाला कवि नहीं है, सध्या सुन्दरी, जुही की कली तथा भिक्षुक कविता को एक ही प्रचलित विचार-धारा के युग मे किसी कवि ने लिखा होगा, यह सहसा अनुमान में नहीं आता क्योंकि रहस्य के प्रति 'प्रसाद' का अत्यधिक आकर्षण उन्हे प्रेम यौवन उच्छ्वास, आँसू व्यथा के पथ पर प्रभावित किये हुये था, करुणा से थका हुआ उनका चरण एकाङ्गी हो रहा था,पन्त को पत्तों और पर्वतों के रंग देखने तथा ग्रन्थि खोलने से तब अवकाश न था, निराला भी नये नये लघु-विराट रूपों की सृष्टि कर रहे थे तथापि निराला कभी कभी यथार्थ की भूमि पर भी आता था. 'भिक्षुक' उनका ऐसा ही प्रयास है जो आगे चल कर प्रगति वादी कविताओं की प्रारम्भिक रचनाओं में गिनी गई, कवि स्वय भिखारी की स्थिति मे वर्षों रहा है, अतः उस संघर्ष काल मे रवीन्द्र की कला पद्धति पर रहस्यमय गीत भी लिखता था और कभी कभी यथार्थ चित्र देने लगता था, मनुष्य का मन भी जहाँ खिन्नता और विषाद के वातावरण से कट कर कल्पित ससार में रमण करता है वहाँ कल्पना की छलना कभी २ टूट जाती है और कवि अपने यथार्थ जीवन को देखता है, निराला ने उसे देखा और लिखा—

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर······
दाता-भाग्य विधाताओं के विरुद्ध जो असंतोष बढ़ने लगा था

'उसकी झलक इस कविता मे मिलती है, मात्र चित्रण- यथा तथ्य चित्रण होने पर भी कविता में प्रभाव की प्रेषणीयता अवश्य है। कविता का मूल स्वर मानवता-वाद पर प्रतिष्ठित किया गया है, ये कविताये किसो सगठित संघबद्ध प्रगति शीलता के प्रोत्साहन स्वरूप लिखी जाने वाली नहीं थीं, अपितु मनुष्य के हृदय मे, मनुष्य के प्रति जागृत करुणा ने भिक्षुक कविता का रूप धारण कर लिया है।

विधवा----परिमल की यह कविता अत्यन्त करुण है, मध्य युगीन रूढ़ियो ने हमारे समाज मे जो विकृतियाँ उत्पन्न कीं उनके फलस्वरूप 'मानवी या तो केवल योनिमात्र रह गई या अद्भुत आध्यात्मिक अन्ध-विश्वास के अनुसार जन्म जन्मान्तर मे भी 'पति' का अन्चल, न छोड़ने वाली विवशता और आश्रयहीनता की मूर्ति बनकर उपस्थित होती रही बहुपत्नीवाद के होते हुये भी पुरुष ने नारी को अपनी मृत्यु के बाद जीने का भी अधिकार नहीं दिया, मातृ सत्तात्मक युग से पितृ सतात्मक युग का यह परिवर्तन कितना रोमांच-कारी और अस्वाभाविक है? कवियो ने नारी की इस अशक्तता आश्रयहीनता और दासता को कोमल भावनाओ के रूप मे लिया, नारी को केवल करुणा, ममता का ही प्रतिनिधि बना दिया गया और हमारे राष्ट्र कवि ने नारी की इस विषम करुणा स्थिति पर करुणाद्र होकर लिखा—

नारी जीवन, हाय, तुम्हारी यही कहानी।
अञ्चल मे है दूध, और आँखो मे पानी॥

किन्तु 'निराला' ने नारी की इस हृदय द्रावक स्थिति को 'यशोधरा' के पूर्व ही अपनी वाणी का विषय बनाया—

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी,
वह दीप शिखा सी शान्त-भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी

वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।

यहाँ छायावादी कला के अनुसार केवल मूर्त के अमूर्त उपमानो का विधान मात्र नहीं है, यहाँ कवि ने एक कलात्मक स्तर पर 'रूप व रस' को एक साथ स्वर मे बाँधा है, "दलित भारत की ही विधवा है" मे कितना कठोर व्यग्य है, प्रथम तो दलित शब्द से भारत का पतन दिखाया है और फिर "भारत की ही विधवा है' से स्पष्ट है कि विश्व की विधवा नारियों मे दलित भारत की विधवा ही सबसे अधिक आर्त और पगु है किन्तु भारत तब भी अपनी सस्कृति के अभिमान मे चूर है विधवा का रूप देखिये—

है करुणा रस से पुलकित उसकी आखे,
देखा तो भीगीं, मन, मधुकर की पाँखे।
मृदु रसावेश मे, निकला जो गुञ्जार
वह और न था कुछ, था बस हाहाकार।

विधवा की सृष्टि व्यापी करुणा से द्रवित होकर किसी में इतना आत्मबल नहीं रहा—

कौन उसको धीरज दे सके
दु:ख का भार कौन ले सके ?

जो बात समझ मे न आये उसे ईश्वर के सिर पर डालना प्रत्येक विचारक का चिर-प्रिय उद्देश्य रहा है, किन्तु निराला' ऐसे कपोत-वृत्ति के नियति वादियो मे से नहीं है, वह उस देव को भी ललकारता है—

देव, अत्याचार कैसा घोर कठोर है।
क्या (तुमने) कभी पोंछे किसी के अश्रु जल
या किया करते रहे सबको विकल

भावना की मर्मस्पर्शिता के साथ, यहाँ मूर्त विधान भी सुन्दर हुआ है।

विधवा को टूटे तरु की छुटी हुई छिन्न-भिन्न लता से उपमा देना रूप और भावना दोनो के 'प्रभाव' को लेकर चला है, अमूर्त उपमानो मे विधवा को व्यथा की भूली हुई कथा काल-ताण्डव की स्मृति रेखा व इष्टदेव की मन्दिर की पूजा के समान बताया गया है करुणा शब्द की कई बार आवृत्ति खटकने वाली है।

बादल-राग—'परिमल की सर्वश्रेष्ठ कविताओ मे 'बादल राग' का स्थान अत्यन्व महत्वपूर्ण है, यह कविता कला व सदेश दोनो दृष्टियो से प्रभावोत्पादक है, सौन्दर्य के नवोन्मेपी युग मे जब सॅध्या, तरॅगों, बीचियो, इन्द्रधनुष अप्सरा, गगा, उषा, बादल की विभिन्न रूप योजनाओ का प्रचलन था तब कवि का केवल चित्र कला मे ही अपने का सीमित कर देने का भ्रम रहता है, जैसा कि हम पन्त जी की बादल कविता मे देखते है, वहाँ केवल बादल को विभिन्न छवियो का अंकन मात्र है वे किसी प्रकार की भावना से हमारे हृदय को स्पन्दित नही करते, यही कारण है कि चित्रण की दृष्टि से पन्त की बादल शीर्षक कविता अत्यन्त मनोरम होकर भी मात्र:चित्र होकर रह जाती है उसमे हमारी कल्पना का तो व्यायाम होता है किन्तु संवेदना का सहलाव नही होता निराला के बादलो मे घनता स्वर की निर्घोषता तथा स्वच्छन्दता अधिक है।

परिमल मे 'बादल राग' को छ खण्डो मे बाटा गया है।

पन्त को पल्लव और स्वर्ण अत्यन्त प्रिय हैं वह रंगो का कवि है रोमाँटिक कवि शैले तरंगावित समुद्र को बड़ा प्रेमी था इसी प्रकार निराला को बादलो से स्वभाव गत प्रेम है। बंगाल मे वर्षा अधिक होने से वहाँ के बादल अधिक मत्त और सघन रहते है कवि पर सम्भवत: इसी का प्रभाव पड़ा है, दूसरे के स्वच्छता विप्लवी मन के लिये घन निर्घोष भी आकर्षक रहा हैं अत: कवि ने बादल राग मे अपनी कला का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है।

"पावस के घन" मे कवि ने रूप योजना प्रस्तुत की है परन्तु प्रस्तावना मात्र के लिये, मुख्य स्वर "पावस ऋतु" का हृदय पर पड़े हुये प्रभाव की व्यजना का है—

अलि, घिर आये घन पावस के,
लख, ये काले काले बादल
नीलसिन्धु मे खुले कमल-दल
हरित-ज्योति चपला अति चचल
सौरभ के, रस के

यहां कवि "बादलवर्णन' को गीति परम्परा मे रख कर आगे बढ़ता है—

द्रुत समीर कम्पित, थर थर थर
झरती धारायें झर झर झर
जगती के प्राणो मे—स्मर शर
बेध गये कस के

"गर्जन से भर दो वन" मे कवि ने "ध्वन्यर्थ व्यजना" के विधान द्वारा बादलो की गरज, निर्घोष जन्य, आतक, जल का बरसना, आदि दिखाया है, इसे पढ़ कर देव का "छहरि छहरि छोटी बूंदन छहरिया" का स्मरण हो आता है—

गरजो, हे मन्द्र, वज्र स्वर
थर्राये, भूधर, भूधर
झर झर झर झर धारा झर

यहाँ भी बादलो को जीवन दाता विप्लवी के रूप मे चित्रित किया गया है।

"बादल राग शीर्षक कविता मे शब्द सगीत एवम् बादलो का विद्रोही स्वर प्रस्तुत किया गया है। कवि 'जग के मुग्ध हृदय पर निर्दय विप्लव की माया' को देख कर बादलो के आतंक का वर्णन करता है, विश्व के मोह निद्रा में निमग्न अंकुर बादलो की रण-भेरी से जाग उठते हैं और अपना शीश ऊँचाकर अपने 'जीवन-

दाता" की ओर देखते हैं, यहाँ बादल को जनता को जगाने वाले विप्लवी के रूप मे चित्रित किया गया है,

इसी प्रकार बादलों की प्रचण्ड गर्जना मे छोटे "अपार शस्य" हसते है, शक्तिवान क्रांतिकारी को देख कर लघु-जन जीवन मे नवीन आशा का सचार होना आवश्यक है और वे जानते है—

विप्लव रव से छोटे ही है शोभा पाते ।

विद्रोह वह है जिससे शोषितो और दलितो को मुक्ति मिले, कवि की विशेषण शक्ति यहाँ दर्शनीय है, फ्रांस की राज्य क्राँति, उच्चवर्ग की क्राँति थी, यद्यपि स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के नारे आकाश मे निनादित हुये तथापि राज्यशाही, पूजीवादी-नेतृत्व मे कैसे परिणत हो गई यह सर्व विदित है, निराला उस विद्रोह को विद्रोह नही मानते जिनसे 'लघुता' को 'महत्ता' प्राप्त न हो। अत बादलो के भय से अमीरो की अट्टालिकायें आतकित हो रही है, कायर धनपति "अङ्गना अङ्ग से लिपटे हुये भी आतक से थर थर काँप रहे हैं, और दूसरी ओर कवि ने बड़ा ही मार्मिक चित्र दिया है, श्रान्त, क्लान्त, जीर्ण, शीर्ण अधरि कृषक अपने दुर्बल हाथों को ऊपर उठा कर विप्लव के वीर बादलो को बुला रहे हैं, जो अस्थि मात्र ही शेष रह गये हैं।

सन २० मे राष्ट्रीय चेतना जागरूक हो चुकी थी, गाँधी जी के आन्दोलनो की चर्चा हम युग और परिस्थितियो मे कर चुके है, विदेशियों के विरुद्ध राष्ट्रीय रोष प्रति क्षण बढ़ रहा था, प्राणों के साथ हंस कर क्रीड़ा करने वाले क्राँतिकारी यत्र-तत्र विस्फोटो द्वारा अपने तृप्त अभिमान का प्रदर्शन कर रहे थे, सामान्य जनता कृषक मजदूर आज जैसे ही सर्वत्र व्याप्त दुर्दान्त विषमता के दन्तो से पीसे जा रहे थे तब 'निराला' ने बादल 'राग मे जनता की इस दशा को देखा था, अट्टालिकाओं पर शयन करने वाले वैभव के विष्णुओ और विदेशियो के साथ गठबन्धन करने वाले लक्ष्मी-पतियो को ललकारा था—

रुद्ध-कोश, है क्षुब्ध तोष
अङ्गना, अङ्ग से लिपटे भी
आतङ्क अङ्क पर काँप रहे हैं,
धनी, वज्र गगन से, बादल
त्रस्त नयन मुख ढाँप रहे हैं
जीर्ण बाहु, जीर्ण शरीर
तुझे बुलाता कृषक अधीर ।।

"बादल राग" मे कवि की शब्द-शक्ति निर्माण की समर्थता पर आश्चर्य होता है, "निराला" मे जैसा हम बराबर देखते आ रहे है सामाजिक पद्धति पर, संगीत मय अर्थ युक्त दीर्घ पदावली सृष्टि की अद्भुत शक्ति है। बादल राम व तुलसीदास व राम की शक्ति पूजा इन दोनो कविताओ मे यह प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँचती है।

प्रकृति के विविध रूपों की झाँकियाँ प्रस्तुत करने का कार्य निराला ने कम किया है, वे पूरे चित्र को एक साथ मन मे भर कर तज्जनित प्रभाव की व्यंजना अपनी सजग कलाकारिता के साथ करते है। बादल राग के प्रथम भाग मे जिन "ध्वनियो व गतियों" का वर्णन कवि अपने शब्द विधान द्वारा करता है उसके सम्मुख "टैनीसन' की ध्वन्यर्थ व्यग्य भी फीकी पड़ जाती है। भाव और परिस्थिति के अनुसार शब्द विधान की दृष्टि से निराला का "बादल राग" हिन्दी म अपना अन्यतम स्थान रखता है, निराला स्वयं कहते है कि शिथिलता के विरुद्ध लड़ना सभ्य होना है अत: उनकी कला की एक विशेषता है अशिथिल सृष्टि चाहे शब्द विधान हो या भाव विधान इस कवि मे शैथिल्य नहीं मिलता, बादल राग में जिस प्रौढ़ संगीत मय नादानुकूल पदावली का विधान किया गया है वह अत्यन्त कहीं नहीं मिलती, कोमल शब्द विधान तो पन्त में मिलता है पर गम्भीर मन्द भैरव-संगीत

निराला मे सर्वश्रेष्ठ है। पद मैत्री और सस्कृत समास पद्धति के तो वे आचार्य ही है।

जागो फिर एक बार

परिमल काल की इस प्रसिद्ध कविता को दो खण्डो में बांटा गया है, प्रथम खण्ड आत्मानुभूति के आधार को 'जागरण" का कारण बनाया गया है और दूसरे खण्ड वीरोचित कर्म योग को। प्रथम खण्ड मे कवि वासना के क्रीटदास बने हुये प्राणियों को जगाता है, कमल कोरकों मे फस कर जनता की आखें अलियों के समान बन्द हो गई हैं। गुंजर समाप्त प्राय है, कवि आगे यौवनोन्माद कारी भाषा मे "आत्मा' की अज्ञात प्रियतम से रति क्रीड़ा का वर्णन करता है उसी दिव्य अनुभूति के द्वारा मानवात्मा मे जागृति का ज्वार उत्पन्न होगा सारी सुषुप्ति, सुख का उन्माद बन जायगी, बुद्धि, बुद्धि से, मन, मन मे और जी जी मे एक ही अनुभव प्रवाहित होने लगेगा, ज्ञान का अरुण दिवाकर उदित होगा, कवि अनुभव करता है कि कवि कठ मे भारती रति आ गई है उस दिव्य अनुभूति के द्वारा प्रकृति का मायामय क्षण-क्षण पर होता हुआ परिवर्तन उसके लिये नगण्य हो रहा है, वह जानता है कि आत्मा को जगाने वाली यह वाणी सहस्रो वर्षो से गूंजती आ रही है परन्तु हमने उसको विस्मृत कर दिया है—

दर्शनाभासों के अतिरिक्त इस कविता का कलात्मक रूप दुरूह होने पर भी मुग्ध कर है। विरह विदग्धा आत्मा की रति का लौकिक रूपक मे सुन्दर व्यक्तिकरण हुआ है, रहस्यानुभूति का आकर्षण मुख्यत लौकिक रूपको पर ही आधारिता रहता है, कबीर की बहरिया आत्मा के इसी लौकिक रूप का प्रतीक है। ऐसी स्थिति में कवि प्रायः अलौकिक को या तो अति लौकिक बना देते है या वह पूर्ण रूप से अलौकिक ही बना रहता है, निराला ने जागा फिर एक बार मे उस अनुभूति को लौकिक रूप दिया है और साथ ही

पूर्ण रूप से तटस्थता का निर्वाह किया है। अतः स्वप्निल आवेश में नग्न करने के लिये प्रार्थना करता हुआ माया के आवरण का हटाने की व्यजना मे पूर्ण सफल हुआ है, निराला का दिव्य शृङ्गार इसीलिये पूर्ण शृङ्गारिक रहने पर भी स्वस्थ रह सका है।

दूसरे खण्ड मे जागृति का शख पहले तो वीरत्व की स्मृति के आधार पर चला है और फिर प्रत्यक्ष भावोत्तेजन पर यथा—

"सवा सवा लाख पर, एक को चढ़ाऊँगा,
गोविन्दसिंह निज नाम जब कहाऊँगा।
फाग था खेला रण, बारह महीनो मे शेरो की माद मे,
आया है आज स्यार—जागो फिर एक बार

प्रत्यक्ष भावोत्तेजन—सिंहो की गोद से छीनता है शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती, वह रहते प्राण ?
रे अन्जान
एक मेष माता ही रहती है निर्निमेष —
किन्तु क्या !
योग्य जन जीता है
पश्चिम की उक्ति नहीं,
गीता है, गीता है,
स्मरण करो, बार बार जागो फिर एक बार

अन्त मे कवि ने पुन सदा मुक्त आत्मा की बाधा-विहीनता का वर्णन करता हुआ वैदिक आत्मवादी परम्परा का उल्लेख करता है, और भय आशंका दीनता दासता की चिन्ता न करने का उपदेश देता है—

"तुम हो महान, तुम सदा हो महान
है नश्वर यह दीन भाव
कायरता, काम परता
ब्रह्म हो तुम

पद-रज भर भी नहीं
पूरा यह विश्व भार जागो''''''।

इस कविता मे 'प्रवचन-पद्धति' अवश्य मिलती है, फिर भी 'गोविन्दसिंह' आदि की वीरता की स्मरण-भावना पर आधारित होने के कारण वह सीधा उपदेश होने से बच गया है।

चिन्तन प्रधान-कविताओ मे 'जागरण' व 'तुम और मैं' कवितायें आती है, पचवटी मे राम-लक्ष्मण सम्वाद भी दार्शनिक चिन्ताओं से ओत प्रोत है। उपर्युक्त कविताओं के विषय मे हम कवि के 'विचार व विकास' मे चर्चा कर चुके हैं। 'तुम और मैं' म दार्शनिक सत्य क साथ साथ ब्रह्म व जीव के सम्बन्धों की काव्यात्मक पद्धति पर व्याख्या है, इस कविता में दर्शन मे काव्य और काव्य मे दर्शन है।

'परिमल' मे अन्य कवितायें भी सुन्दर है, पतनोन्मुख कविता मे कवि का विषाद ध्वनित हुआ है तथा--

हमारा डूब रहा दिन मान
विकल डालियो से, झरने ही पर है पल्लव प्राण

कवि को इस बात का अभिमान है कि वह सघर्षों के शूलो पर चलता हुआ भी अतीत के गान गा रहा है - किन्तु क्या अतीत को भी मेरा ध्यान होगा ? 'सापेक्ष्यतावाद' को यहाँ कितने सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त किया गया है।

कठिन शृङ्खला बजा, बजाकर, गाता हूँ अतीत के गान
मुझ भूले पर उस अतीत का, क्या ऐसा ही होगा ध्यान ?
शिशु पाते है, माताओं के, वक्षस्थल पर भूला गान
मातायें भी, पातीं शिशु के, अधरों पर अपनी मुस्कान ॥

सृजन के क्षणो मे 'परिमल' के कवि में पलायन की भावना भी दृष्टिगोचर होती है—

हमे जाना है जग के पार
जहाँ नयनो से नयन मिले।

ज्योति के रूप सहस्र खिले
सदा ही बहती है रस धार
वही जाना इस जग के पार ॥

कही कही निराली मन स्थितियों का वर्णन है—

स्वर्ण किरण कल्लोलो पर, बहता रे यह बालक-मन

प्रकृति नामक कविता ने कवि की मानवी शक्ति पर पूर्ण विश्वास प्रकट किया है, वेदान्ती होने के नाते कवि ने ससार को अस्थिर और नश्वर मानते हुये भी मनुष्य निहित शक्ति का सदा ही वन्दन किया है।

बहती कैसी पागल धारा
हाथ जोड़ कर खड़ा देखता दीन, विश्व यह सारा
बड़े दम्भ से खड़े हुये ये भूधर, समझे थे जिसे बालिका
आज ढहाते, शिला खण्ड-चय देख, काँपते थर थर
उपल खण्ड, नर मुण्ड मालिनी, कहते उसे कालिका।

'श्यामा व कालिका' का स्तवन कवि इसी क्रान्तिकारिणी शक्ति के कारण करता है। 'ज्योत्सना' मे पन्त ने प्रकृति के पदार्थों से भावी सुख स्वप्नो की रचना की है, साथ ही मानवीय व्यापारो का आरोप भी उन पर वे करते गये है। निराला ने 'बन कुसुमो की शैया' मे ऐसा ही एक मनोरम चित्र उपस्थित किया है। जहाँ शरद शिशिर बहनों के मद शिथिल अंग पर समीरण धीरे धीरे बह रही है और बड़ी बहिन वर्षा उन्हे धीरे से जगा रही है प्रकृति मे चेतना का यह आरोप छायावादी कवियो का मुख्य लक्षण रहा है।

'कण' नामक कविता मे 'धूल के कण' की सहन शक्ति की भर्त्सना की है। यह कविता दलितो और शोषितो के लिए क्राँति के आवाहन रूप में है—

बीत गये कितने दिन कितने मास
पड़े हुए सहते हो अत्याचार

पद पद पर सदियो के पद-प्रहार
बदले मे—पद मे कोमलता लाते
किन्तु हाय, वे तुम्हे नीच ही है कह जाते
तुम्हे नही अभिमान ·· ····
इससे सदा मौन रहते हो
क्यो रज, विरज के लिये ही इतना सहते हो ?

'कण' कविता परिमल का एक रत्न है जो हमे हमारी पराजय अपर्याप्तता के विरुद्ध खड़ा करती है, धूल के कण को उसका शत्रु कुचलता है, और बदल मे वह कण शत्रु के पद को सहलाता है, यह पतन की पराकाष्टा है। 'निराला' इसमे अन्याय के विरुद्ध यही प्रतिशोध करना चाहता है। मनुष्यता न कुचलने मे है न कुचले जाने मे।

'परिमल' मे निराला की बहुस्पर्शिनी प्रतिभा का परिचय हमने उक्त कविताओ मे विश्लेषण मे पाया होगा। सम्पूर्ण कविताओ मे जो एक 'साम्य' मिलता है वह 'मानवतावादी' तत्वो का "जागरण व पञ्चवटी" के वार्तालियो मे भी कवि तत्यतः अद्वैतवाद का समर्थन करता हुआ व्यवहारिक दृष्टि से 'सेवा व भक्ति' का महत्व प्रतिष्ठापित करता है, भक्ति को कवि हृदय की सद्प्रेरणा के रूप मे लेता है जो कर्म मे प्रेरणा को जगाती है। सौन्दर्य व कला प्रधान कविताओ मे भी कला-कला के लिये नही मिलती, कवि अरूप का उपासक होकर भी मानवीय-भावनाओ का अ चल नही छोड़ता वह मनुष्य के दु खो की ओर से निश्चित नही है मानवता का सारा अपमान जैसे उसके हृदय को कुरेद रहा है। यौवन विलास के उन्छङ्खल वर्णनो मे भी कवि के विश्वास के अनुसार तथा युग की मांग के अनुसार व्यक्ति राग विराग का उसी 'पूर्ण व्यक्तित्व' मे पर्यवसान हो जाता है अतः अश्लील-चित्रो मे भी कवि पूर्ण तटस्थता निभा सका है।

द्विवेदी युगीन काव्य के समानान्तर रूप और भावना के

मे भाषा के दोनो रूप मिल जाते है। साथ ही अन्धानुकरण की प्रवृत्ति कवि मे नही मिलती है। यारोप के लाथरिक प्रयोगो का जैसा अविकल-अनुवाद पन्त मे मिलता है वैसा निराला मे नहीं परन्तु मार्जन की दृष्टि से 'निराला' पीछे है, कोमल अनुभूतियो व परिष्कृति की सृष्टि से पन्त का काव्य अत्यधिक मनोहर बन पड़ा है। निरालाजी ने दिखाया है कि पन्त मे Female graces अधिक है, उनमे श ण ल प वर्णों का प्रयोग अधिक मिलता है जो हिन्दी के विरुद्ध है, हम इस विषय की चर्चा करेंगे यहाँ इतना ही पर्याप्त है कि श ण ल प के रहने पर भी पन्त की परिष्कृत कला, कल्पना-विलास संगीतमय, सानुप्रास तुकान्त गीतो का महत्व भी उतना ही है, जितना निराला के शक्ति-पौरुष और सौन्दर्य से भरे हुये अनमिल स्वरो का दोनो कवियो के प्रयोग क्षेत्र अपने है और व्यक्तित्व भी अपना है।

अनामिक

पल्लव के पश्चात का दूसरा कवि संग्रह है अनामिका, परिमल का कवि मुख्यता सौन्दर्य और 'दर्शन' का कवि है। उसमे अपार्थिवता अधिक है, 'अनामिका' उसी परम्परा की पूर्ति है। इसमें मुख्य कवितायें इस प्रकार है—प्रेयसी, सम्राट अस्टम एडवर्ड के प्रति, खण्ड-हर के प्रति, प्रगल्भ प्रेम, दिल्ली, रेखा, तोड़ती पत्थर, बनबेला, नाचे उस पर श्यामा, हिन्दी के सुमनो के प्रति, सरोज-स्मृति, ठूँठ, बेकिसान की नई बहू की आँखे, राम की शक्ति पूजा और नर्गिस। अनामिका मे बहुत सी कवितायें रवीन्द्र विवेकानन्द जी के भावानुवाद के रूप मे प्रस्तुत की गई है जिससे कवि की रुचि व प्रेरणा स्रोत का परिचय प्राप्त होता है।

'प्रेयसी' में रहस्यानुभूति दिव्य-मिलन-जन्य आनन्द का वर्णन है।

आई मै (आत्मा) द्वार पर सुन प्रिय कण्ठ स्वर
अश्रु जो बजता रहा था झङ्कार भर
जीवन की वीणा में,
सुनती थी मैं जिसे
पहचाना मैंने हाथ बढ़ कर तुमने गहा।
चल दी मैं मुक्त साथ।

मुक्तावस्था के साथ प्रेयसी का प्रारम्भ मनोहर-पद्धति पर नूतन उपमान विधान द्वारा हुआ है।

"सम्राट अष्टम एडवर्ड के प्रति' में कवि ने प्रेम के लिये सम्राट की निर्भयता एवम् आदर्श त्याग की प्रशंसा की है। किन्तु एक था राजा की पद्धति पर नहीं जैसे कि गुप्त जी लिखा करते थे अपितु ललित, सुगठित पदावली द्वारा अन्तर्मुखी भूमि पर यथा—

वीक्षण अराल—बाल रहे जहाँ
जीवन का स्वर भर छन्द ताल
मौन में मन्द

छायावादी कवियों ने नारी व प्रेम का एक गौरव मयी परम्परा दी है, निराला प्रणयलता को उस स्पर्श से खिला हुआ मानते हैं जिसके प्रकाश से सूर्य व चन्द्र प्रकाश कर रहे हैं सारा विराट दिशा देश की परिधि में बंध रहा है प्रेम के उस स्पर्श से गौरवान्वित प्रेमी के लिये संसार का मानव धन तुच्छ ही है मनुष्य वह नहीं है जो विभिन्नताओं को ही शाश्वत मानता है।

जो गंध, मधु का वर्जन
वह नहीं अमर
मानव-मानव से नहीं भिन्न
निश्चय हो श्वेत कृष्ण अथवा, वह क्लिन्न भेद कर पङ्क
निकलता कमल जो मानव का वह निष्कलंक
हो कोई सर

यह विश्व मानवता वाद छायावाद की ही देन है इसके पूर्व था तो आचार प्रधान स्थूल नैतिकता थी जिसमे एक सीमा तक संकीर्णता थी जातीयता का पक्ष प्रबल था—

हत भाग्य हिन्द जाति तेरा पूर्व दर्शन है कहां

की पुकार थी आगे युग के प्रभाव से रवीन्द्र ने पूर्व व पश्चिम की एकता का स्वरसधान किया। इसी विश्व एकात्म्यवाद को छायावादी धारा की पृष्ठ भूमि समझना चाहिये अतः इसको सर्वथा एकांगी, अनुभूति और पलायनवाद के रूप में नही लिया जा सकता राष्ट्रीय जागृत चेतना के स्वर को इसी आदर्शवादी दर्शन ने फासिस्ट साम्प्रदायिक 'राष्ट्रीयता' होने से बचाया।

अनामिका की 'दान' कविता में कवि ने उस समाज-विरोधी 'पूंजीवाद' पर प्रहार किया है जिसमें बन्दरों को पुये खिलाये जाते हैं और भिखारियों की ओर दृष्टि भी नहीं उठाई जाती। रामायण का परायण करने वाले और श्री मन्नारायण का नाम मूर्ख तोते के समान रटने वाले इन भावुक भूतों को देखिये—

झोली से पुये निकाल लिये
बढ़ते कपियों के हाथ दिये
देखा भी नही, उधर फिर कर
जिस ओर रहा, वह भिक्षु इतर ॥

छायावादी कला के अनुसार उस अव्यक्त सत्ता-सिंधु में विलयन के लिये जगत के प्रति विस्मृति की बड़ी इच्छा रहती है। चिन्ता ग्रस्त मन को कष्ठ-गाथाओं की स्मृति सदा चुभने वाली होती है। अत. जागरण की अपेक्षा, मूर्च्छा का, चेतनता की अपेक्षा अचेतनता का आवाहन प्राय. कवि करता है क्योंकि यथार्थ से आँख मिला कर सीधे खड़े होने की शक्ति नहीं रह जाया करती—प्रसाद ने कहा है—

अरी चेतना तू जा, चल जा,
यहाँ नहीं कुछ तेरा काम

और 'निराला' भी 'प्रलाप' में कहते हैं --

भूल जाऊँ अपने को, कर दे मुझे अचेतन
....
भूलूँ मैं अपने मन को भी

'प्रगल्भ प्रेम' नामक कविता में भी कवि ने कहा है—

सकल चेतना मेरी हो ये लुप्त
और जग जाये पहली चाह
लखूँ तुझे ही चकित चतुर्दिक
अपनापन मैं भूलूँ ॥

जिस रहस्यानुभूति ने कवियों जाति, देश, काल, संस्कार से ऊपर उठकर अभेद ज्ञान की ओर बढ़ाया। मानव-मात्र के लिये प्रेम उत्पन्न किया, जिसने हीनता की भावना को मिटाकर जागरण काल में शताब्दियों के सुप्त राष्ट्रीय 'अह' को जगाया उसी ने कवियों को व्यक्ति-गत मोक्ष की कारा में बन्द भी कर दिया 'रहस्य-वादी कला के इन दोनों पक्षों का रूप हमें विस्मरण कर देना चाहिये।

"प्रेम के प्रति" कविता में कवि ने कामायिनी के समान ब्रह्म की साम्यावस्था से विषयावस्था की ओर आने और इस प्रकार सृष्टि के विकास का विवरण दिया है

"चिर-समाधि मे अचिर प्रकृति जब,
तुम अनादि तत्व केवल तम
अपने ही सुख इङ्गित फिर
हुये तरंगित सृष्टि विषम।
तत्वों में त्वक बदल, बदल कर
वारि-पुष्प ज्यों फिर बादल
विद्युत की माया उर मे, तुम
उतरे जग मे मिथ्या-फल।

कवि की इतनी स्पष्ट व्याख्या के पश्चात भी कहा जाता है कि कवि ज्ञान-जन्य सृष्टि के विकास के प्रति सन्देह करता है, 'कौन तम के पार रे कह' के ।वेवाद की चर्चा हम कर चुके है ।

सच है, कविता मे कवि ने हिन्दी के प्रति अपने अगाध प्रेम का परिचय दिया है ।

यह सच है
तुमने जो दान दिया, दान वह
हिन्दी के हित का अभिमान वह

'छायावद' का 'निराशावाद' भी कवि मे यत्र-तत्र आया है जो कवि के व्यक्तिगत जीवन की असफलता के रूप मे है, महादेवी ने कहा है कि छायावादी युग मे आर्थिक-अभावो, असफलताओ की इतनी कड़ी मार न थी, जितनी आज गाई जाती है, अधिकतर कवि मध्यवर्ग मे थे जिनके स्वप्न योरोपीय शिक्षा द्वारा कवियो के व्यक्तित्व को प्रेम-मय झिलमिल पर्दों में बन्द करते जा रहे थे । अतः हम कैसे कह सकते है कि इस युग मे पलायनवादी साहित्य लिखा गया और फिर चक्की पीसती हुई नारी वसन्त स्वर्ग, राधा या मीरा के उन्मुक्त रोमाँटिक प्रेम की तान मे डूब जाती है, क्या यह पलायन वाद कहा जायगा ? मध्यवर्ग के इन स्वप्नवादी रंगीन युवको की क्या दशा थी इसके उदाहरण हैं प्रसाद, निराला और पन्त ।

कम से कम निराला के सम्मुख आर्थिक अभावो की लम्बी परम्परा रही । अत निराला की कविता पर अभाव-जन्य सम्वेदना का भारी प्रभाव पड़ा जैसा कि 'सरोज-स्मृति' मे दिखाई पड़ता है, दैव ने सरोज को कवि से छीन लिया और कवि के मन मे एक ही कसक है कि उसने अपनी बेटी के प्रति अपने कर्तव्य को, आर्थिक अभावो के कारण पूरा न कर पाया । वेदना आवेग को जन्म देती है, एक दीर्घ समय तक हृदय मे रह लेने के पश्चात वह उस व्यक्ति द्वारा प्राय: स्वीकार करली जाती है, यथार्थ जगत मे स्थूल आधार पर जब कलाकार अपनी वेदना को दूर नहीं कर पाता तब वह उसे

स्वीकार कर लेता है और वेदना-जन्य घुटन और आवेगों को शाश्वत अनुभूत के रूप मे गाया करता है, महादेवी की पीड़ा का भी लौकिक आधार है जो उनके चिन्तन और सयम से दिव्य होता गया है परन्तु वह अपनी झलक प्राय उनके काव्य मे अवश्य दे जाया करता है, निराला व पन्त, प्रसाद के करुणा-क्रन्दन का भी लौकिक आधार है।

'प्रसाद' ने आनन्दवादी दर्शन में अपनी करुणा, और वेदना का पर्यवसान कर दिया, पन्त ने वेदना के प्रेम मय उच्छवसित रूप को छोड़कर लोक-जीवन की भित्ति पर, उसके लौकिक-आधार को स्वीकार किया था। (युगॉन्त, युगवाणी, ग्राम्या-काल) किन्तु अन्त मे वे भी स्वर्ण-किरण के प्रकाश अपने दु.ख की छलना का खोने का प्रयत्न करने लगे, महादेवी ने 'पीड़ा' को आराध्य से भी मिलन से भी अधिक महत्व दिया किन्तु 'निराला' जाति को 'मोया' भ्रम समझ कर भी लोक जीवन की ओर झुकता गया। कवि जहां विश्वास प्रकट करता है वहाँ वह उस अभिर्वचनीय अनुभूति सागर में आज भी निमग्न हो जाता है। (*) परन्तु जब वह यथार्थ के आधार पर खड़ा होता है तो वह जैसे अपने वेदान्ती अह से और भी महिमान्वित होकर, समाज की विकृतियों पर प्रहार करता है तथा अपने मन के विषाद की खुल कर व्यंजना करता है अतः जहाँ जागरण के विरुद्ध कवि अचेतनता की प्रार्थना करता है वहाँ कवि जले हुये जीवन की एक कराह को कविता मे बांधता है, 'सरोज के प्रति' ऐसी ही कविता है। यह चक्की पीसती हुई नारी का वृत्ति-रजक-कारी गायन नहीं है, न यहां महादेवी की तरह सुख की अतिशयता के कारण दु:ख को प्यार करने का प्रयत्न हैं, यहाँ जैसे उस पतनोन्मुख वृक्ष की चरमराहट है। जिस पर एक साथ कई विद्युत-प्रहार हुए हो, 'निराला' ने अपने कल्पित-सुख को 'मुक्ति' की कामना के रूप में और अभाव जनित दु:ख को अधिकारों के लिये लड़ने वाली ओजमयी वाणी या आभिजात्यों पर किये गये

व्यङ्ग के रूप में रक्खा है।

"सरोज की स्मृति' मे सजग-कलाकार के स्थान पर हृदय-वादी, वेदना-दग्ध कलाकार है जिसकी अनुभूति का निश्छल-प्रकाशन ही उच्चकोटि की कविता के रूप मे ढल गया है, काव्य का रथ सत्य की भूमि पर चलता है, छलनामय, कृत्रिम, अस्वाभाविक विचित्र अनुभूतियो के प्रकाशन के अतिरिक्त और काव्य को सर्वथा जीवन से अलग करके देखने के कारण छायावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वाभाविक थी, काव्य जहॉ वेदना को क्रोड़ मे सुहलाता है, (यथा छायावाद मे) जहाँ वह सम्मान्य-मानव-वृत्तियो का रजन करता है वहाँ वह जीवन के लिये प्रेरणा भी देता है अत. चक्की पर बैठ कर सर्वदा "सिंहासन और अभिसार' के स्वप्निल-गान ही काव्य नही है, ढीले-श्वास-प्रश्वास के क्षणो मे 'जागो फिर एक बार' का सिंहनाद भी काव्य है। न मनुष्य प्रेम करना भूल सकता है न अन्याय का बदला चुकाना, छायावाद ने प्रेम की वृत्ति को चिन्तन से बॉध कर स्वर्गीय रूप दे दिया,किन्तु अन्यायी से बदले की भावना कुण्ठित होती गई, उसने सामञ्जस्य की ओर हमे मोड़ दिया यह असम्भव था अत. मानव यथार्थ की ओर झुकता गया। व्यवस्था का लक्ष्य कवि इसी यथार्थ को न भुलाकर चीख उठा था—

धन्ये, मैं पिता निरर्थक था ॥
कुछ भी तेरा हित न कर सका।
जाना तो अर्थागमोपाय ।
पर रहा सदा सकुचित काय ॥

....

लिखता अबाध गति मुक्त छन्द ।
पर सम्पादक-गण निरानन्द ॥
लौटा रचना लेकर उदास ।
ताकता हुआ मैं दिशाकाश ॥

बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर।
व्यतीत करता था गुन गुन कर॥
सम्पादक के गुण, यथाभ्यास।
पास की नोचता हुआ घास॥

"प्रसाद' ने प्रेमी द्वारा कहलवाया है—

मैं रो रो बिलख बिलख कर, कहता था प्रेम कहानी।
तुम सुमन नोचते सुनते, जानी करते अनजानी॥

यहाँ "निराला" का कवि भी "घास नोचता रहा है" दोनों कविताओं की भावनायें परस्पर कितनी विरुद्ध है? अत सम्पादक के यहाँ से लौटी हुई रचना लेकर कवि कब तक पुष्पों के हास, उषा की मुस्कान और वीचियों के विलास का वर्णन करता रहता?

कन्ये गत कर्मों का अर्पण।
कर, करता मैं तेरा तर्पण॥

अत. सरोज स्मृति, 'तोड़ती पत्थर' आदि कवितायें निरालाजी में यथार्थ के प्रति जागरुक रहने की भावना में जन्म ले सकी हैं, 'निराला' ने जो अनुभव किया है वह लिखा है, कृत्रिमता व कल्पना का इन्द्रजाल वहाँ नही है, जब रहस्य अनुभूति का अनुभव किया, निर्भय हो कर लिखा। जब मानवीय दुख दैन्य का अनुभव किया तब उसे अभिव्यक्त किया, इसी लिये हमने देखा है, कि भावना के प्रति सच्चे रहने के परिणाम स्वरूप ही एक ओर कलात्मक, कविताओं की सृष्टि हुई तो दूसरी ओर क्रान्तिकारी यथार्थवादी कविताओं का वैयक्तिकता व समष्टि-वादिता दोनों के प्रति 'निराला' सबसे अधिक सजग कलाकार है।

'सरोज स्मृति' में कवि की भावनाओं का चित्रण है, यह एक मार्मिक दु.खगीति Elegy है। उर्दू में इसे 'मरसिया' कहते हैं, दबीर व अनीस के मरशिये वहाँ बहुत प्रसिद्ध हैं, मरशिये किसी की मृत्यु पर लिखे हुये काव्य हैं, स्फुट कविता के रूप में भी ये अस्तित्व में आते हैं और कथाबद्ध दीर्घ काव्यों में भी। 'सरोज स्मृति' में त्रिव-

रण की प्रधानता है। पुत्रीकी मृत्युके पश्चात् कवि अपनी साहित्यिक समर्थता के होने पर भी आर्थिक क्षेत्र मे असफलता की घोषणा करता है।

कवि ने पुत्री को उसकी नानी की गोद मे छोड़ दिया था, 'सरोज' के शैशव, एवम् किशोर अवस्था का सुन्दर चित्रण कवि ने किया है। अपने विधुर जीवन मे पुन. विवाह करने के प्रसङ्ग को भी कवि ने लिया है कि किस प्रकार 'मैं मङ्गली हूँ' कह कर कवि ने दूसरा विवाह टाल दिया था। यहाँ कविता अत्यन्त साधारण बन पड़ी है।

आगे सरोज के 'तारुण्य' का वर्णन है, पिता द्वारा पुत्री के तारुण्य-लावण्य का यह वर्णन अत्यन्त मोहक और पवित्र है, यह निराला का ही कार्य है कि अपनी पुत्री के शृङ्गार का भी वर्णन किया। कवि 'सरोज' मे दिगत प्रिया की मधुरिमा देखा करता था—

फूटा कैसा कण्ठ—स्वर
माँ की मधुरिमा व्यञ्जना भर

कवि ने बिना बरात बुलाये, एक कान्यकुब्ज-किशोर साहित्यिक से 'सरोज' का विवाह कर दिया, कवि ने स्वयं आचार्य व पिता दोनो का कार्य किया, 'कण्व व शकुन्तला'का आदर्श निभाया गया। जिस कवि ने स्वयं 'पुष्प सेज' चुनी उसी को चिता भी चुननी पड़ी। तब कवि का धैर्य टूट गया—

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूं आज, जो नहीं कहीं।

'सरोजस्मृति' हिन्दी साहित्य की सर्वश्रेष्ठ दु ख गीत है

राम की शक्ति पूजा

यह एक पौराणिक आख्यान है, इस मे छायावादी-कल
चरम-उत्कर्ष परिलक्षित होता है, सूक्ष्मता, साँकेतिकता
भावनाओ के उत्थान-पतन व अन्तर्द्वन्द्व का जैसा सुन्

वेधान यहाँ मिलता है वैसा अन्यत्र कठिन है। 'निराला' ने लघु-लघु आख्यानों को काव्य बद्ध कर छायावादी मनोरम शैली की प्रबन्ध-क्षेत्र में भी सफलता का सफल निर्देश किया. दार्शनिक-दुरूहता, दीर्घ-समास-गुम्फित पदावली तथा सूक्ष्म-मानसिक भावनाओं के सूत्रों पर नृत्य करने वाली कवि की अभिव्यञ्जना ने उसे हिन्दी का 'ब्राउनिङ्ग' बना दिया, छोटे-छोटे आख्यानों को 'बायरन' भी पद्यबद्ध किया करता था, इस दृष्टि से उसके साथ भी निराला की तुलना हो सकती है। किन्तु दार्शनिक स्वर अधिक मुखर होने से राम की शक्ति-पूजा, जागरण, पञ्चवटी प्रसङ्ग और तुलसीदास के कवि की तुलना 'सारडेलो' के लेखक ब्राउनिङ्ग से ही की जा सकती है।

'शक्ति' के सम्बन्ध में हम लिख चुके है कि स्वा० रामकृष्ण परमहंस इसके अनन्य भक्त थे, यह देवी प्रचण्डता, करालता, असुर-विनाशकारिणी शक्ति की प्रतीक मानी जाती है, चरित्र की दृढ़ता और ओजस्विता की प्राप्ति के लिये इसकी उपासना होती है, एक ही चिरन्तन सत्ता के ये विविध कल्पित रूप है, जिनकी उपासना इच्छा-शक्ति को दृढ़ करके व्यक्ति में प्रलय-कारी आत्म-विश्वास भर देती है, ऐसा वेदान्तियों तक में विश्वास चला आता है, स्वा० विवेकानन्द जी में भी ऐसी ही भावना मिलती है। 'निराला' ने उस अनियन्त्रित सत्ता को कभी 'श्यामा, जननी' कहकर पुकारा है और यहाँ राम उसी की उपासना में सफल हो कर रावण पर विजयी होते है।

राम की शक्ति पूजा की सफलता कला के अतरग पक्ष की दृष्टि से राम की मनोभावनाओं के उत्थान-पतन में है।

कथा तो छोटी सी है परन्तु 'राम के अन्तर्द्वन्द्व' को दिखाने में कवि को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है। विरोधों से प्रताड़ित कवि द्वारा शक्ति की उपलब्धि का प्रयत्न जैसे पौराणिक-कथा के रूप में यहाँ साकार हो उठा है।

राम रावण का युद्ध हो रहा है, राक्षसों की पराजय दुष्कर

दिखाई पड़ती है, राम की सेना चिन्तित है क्यो कि अजेय रावण पर 'राम' के वाण प्रभाव हीन हो जाते हैं, राम की दशा देखिये—

"कहुँधनु, कहुँ निपङ्ग कहुँ तीरा" से भी अधिक आकर्षक—

रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत चरण

श्लथ धनुगुण है, कटिवध सुस्त—तूणीरि धरण

दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रति लट मे खुल, फैला पृष्ठ पर,

वक्ष पर विपुल उतरा ज्यो दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार।

काली केश-राशि राम के पृष्ठ पर इस प्रकार फैली है जैसे दुर्गम पहाड़ पर रात्रि का अन्धकार फैलता है, यहाँ चित्र की विराटता दर्शनीय है।

ऐसे विकल राम को घेर कर सब वानर-दल बैठला है। आगे कवि ने ओजस्विनी शैली मे शब्द-सकुलता की सीमा को पार कर, भयपूर्ण वातावरण का सृजन किया है।

बिना समझे ही 'राम की शक्ति पूजा' का यह प्रथम चमत्कार है कि वह पाठक के मन मे एक आतङ्कपूर्ण परिस्थिति का सृजन कर सकती है—यहाँ गगन द्वारा अन्धकार का उगला जाना, प्रभञ्जन का चलना, विशाल समुद्र का रह-रह कर गरज उठना, पहाड़ो का ध्यानावस्थित होना, केवल यत्र, तत्र मशालों का उल्का के समान दीप्त होना और इस वातावरण में राम के संशय ग्रस्त मन की अवस्था आदि सब ने मिल कर जो पृष्ठ-भूमि प्रस्तुत की है वह अत्यन्त काव्यानुकूल है।

राम को आशङ्का है कि कहीं असुरो से पराजय न हो जाय जिस जानकी के लिये इतना अनवरत सघर्ष, उसका मिलना असम्भव। राम दुर्बलता व आशङ्काओ के नीड़ बन रहे है इस स्थल पर अनुभाव-विधान भी यदि और होता तो चित्र और भी सवाक् हो उठता यहाँ तो कवि केवल नायक 'राम' के मन की तहों को उघारता हुआ भीतर घुस रहा है, उसने देखा कि शङ्काग्रस्त "राम" के हृदय क्षितिज पर स्मृति की विद्युल्लता ने सीता का प्रथम-मिलन का

दृश्य उपस्थित कर दिया है--

लता के भीतर प्रथम मिलन, नयनों का गुप्त भाषण, उन्मद पलकों का गिरना, अधरों का कम्पन, आशाओं के विहगों का मधुर कलरव सब स्मरण हो आता है।

इस प्रथम मिलन की स्मृति ने राम के मन में प्रतिक्रिया उत्पन्न की, राम के मन में पुन. वही दुर्दमनीय ओज जग पड़ता है जो धनुर्भंग के समय पर जाग पड़ता है, उनका शिथिल हाथ पुन धनुष की कोटि पर पड़ता है,और विश्व की विजय की भावना उनके मन मे पुन आती है। सीता-विषयक कोमल अनुभूति ने उनके मन को शङ्का से रहित किया अत आनन्द की अनुभूति के क्षणों में उन्हे सारे मन्त्र स्मरण हो आते है जो उन्हें ऋषियो ने दिये थे, ताड़का, सुबाहु, खरदूषण के शीश उनकी स्मृति मे भू लुण्ठित दृष्टिगोचर होते है।..... ....

पुन: पट परिवर्तन सा होता है.......—राम को एक भयङ्कर मूर्ति आकाश पर दिखाई पड़ती है, जिसमे राम के द्वारा फैंके हुए बाण बुझ कर क्षीण हो गये है, राम अपने प्रहारो को व्यर्थ देख कर पुनः शङ्काकुल हो जाते हैं, उन्हे पुन. सीता की स्मृति हो आती है जो उन्हीं के ध्यान मे मग्न है, दुर्बलता के आते ही आत्म-विश्वास लुप्त हो जाता है, अत. राम को ऐसा आभास होता है जैसे रावण क्रूर अट्टहास कर रहा है, राम जीवन मे प्रथम बार रो पड़ते है—

राम के पार्श्व में स्थित हनूमान अपने आराध्य की यह दुर्दशा नहीं देख सकते, वे उछल कर आकाश में पहुँचते हैं, प्रलय के उनचास पवन चल पड़ते हैं, भाप और कुहरा छा जाता है लहरें किनारों से टकराने लगती हैं, बजरंगी—हनूमान आकाश में पहुँचते हैं—यह वातावरण द्वितीय चित्रण है। निखिल सृष्टि व्यापी आन्तक जैसे मूर्ति मान होकर हमारे सम्मुख प्रस्तुत हो जाता है।

अब तक आकाश में भयंकर मूर्ति के रूप में दुर्गा थी अब

हनूमान के पहुँचने पर शिव को आशंका होती है कि हनूमान बज्र शरीरी है, दुर्गा की निश्चय हार होगी अत वे दुर्गा को समझा रहे है कि कवि को क्रोधित न किया जाय, वे उसकी माता बन कर उसे टाल दे—

वे कहते है—

देवि तुम्हारी विषम हार
विद्या का ले आश्रय इस मन को दो प्रबोध,
झुक जायेगा कवि, निश्चय होगा दूर रोध ॥

शक्ति परिस्थिति के सम्मुख झुक जाती है, वह अंजना का रूप धारण कर हनूमान को ऊंच नीच समझा कर लौटा देती है, कपि नम्र होकर पुनः प्रभुपद सेवा मे लीन हो जाते हैं। विभीषण राम के सम्मुख भेद खोलते हैं कि क्यो रावण दुर्जय हो रहा हैं यदि राम शक्ति की पूजा द्वारा उन्हे प्रसन्न करले तो शत्रु का वध निश्चित है, अब राम व रावण दोनो की इच्छा शक्ति, धारण, ध्यान और सयम की परीक्षा होती है राम ने देखा वह महा शक्ति (दुर्गा)रावण को अंक मे लिये हुये थी जैसे चन्द्रमा कलंक धारण कर रहा है।

और इसीलिये मन्त्र पूत उनके वाण व्यर्थ हो रहे है, विभीषण के परामर्श पर लक्ष्मण को नायक बनाकर राम युद्ध से विरत होकर 'शक्ति पूजा' मे लीन हो जाते है—वे नत होकर प्रार्थना करते, चित्त वृत्ति को सुधारते और अविभाज्य दृष्टि से निर्निमेष दुर्गा पूजा में रत रहते है, राम की इस आराधना करती हुई मूर्ति का कवि ने बड़ा ही मनोहर वर्णन किया है। ध्यान मग्न होकर अनुभूति के क्षणों मे कवि ने कालिदास के समान भूधर में काली की मूर्ति के दर्शन कराये है। राम कहते है—

'पारवती कल्पना है,इसकी मकरन्द बिन्दु'
'गरजता चरण प्रान्त परसिंह वह, नही सिंधु'

यह पर्वत नहीं पार्वती—दुर्गा का रूप है जो सिंधु रूपी सिंह पर आसीन है, सिंह रह रह कर गरज उठता

है। दश दिशाये उसके हाथ हैं, वह दिगम्बरा है, सूर्य चन्द्र नयन है। राम पुन. हनूमान से १०८ इन्दीवर प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करते हैं वे पुष्पो के लिये जाते है छ. दिन तक इधर राम की अनवरत साधना चलती है, उनका ध्यान त्रिकुटी पर आकर्षित हो चुका है, आठवें दिन विभिन्न स्तरो को भेदता हुआ ब्रह्माण्ड मय हो जाता है। सभी इन्दीवर जाप के साथ दुर्गा को अर्पित कर दिये जाते हे केवल एक इन्दीवर शेख बच जाता है, साधना सफल होती है, दुर्गा आकर उस अवशेष इन्दीवर को चुरा लेती है—राम जब उसे भेट करने को हाथ बढ़ाते है तो पुष्प को न पाकर पुन. चिन्ता ग्रस्त होते हैं।

धिक जीवन जो पाता ही आया है विरोध
धिक साधन जिसके लिये सदा ही किया शोध

यह 'राम के रूप' मे कवि ने अपने मन: स्थिति की व्यजना की है, राम (निराला) का जो मन दैन्य व विनय नहीं जानता था, पराजित नहीं हुआ वह भ्रम को भेद कर आत्मानुभूति के क्षणो मे एक उपाय सोच ही लाया—राम सोचते है—"माता मुझे राजीवि नयन कहती थी, यदि मैं अपने नेत्र को भेंट कर दूं तो वह इन्दीवर की ही भेंट हुई" बस क्या था राम दाहिना नेत्र जैसे ही निकालना चाहते हैं दुर्गा हाथ पकड़ लेती है—

"होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन"

इस प्रकार यह कविता वस्तुतः बाह्य-विरोधों से विचलित मन की स्थितियों का दिग्दर्शन करती है और उसमे पुनः आत्म-विश्वास जगा कर दृढ़ और दुर्जेय बना कर विश्वमन को इस विषम गावणीय व्यवस्था के बीच मे छोड़ देती है जिसमें राम जैसी मानव की मुक्ति के लिये लड़ने वाली शक्तियों की विजय अवश्य होगी।

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने निराला जी की रचनाओं को तीन भागो मे बाँटा है (१) बौद्धिक या दार्शनिकता-प्रधान (२) विशुद्ध-प्रगति यथा जुही की कली, विधवा, जागो फिर एक बार

सरोज स्मृति (२) आलङ्कारिकता-प्रधान गीतिका के कुछ गीत, राम की शक्ति-पूजा।—

हमने "राम की शक्ति-पूजा" को अन्तर्मुख-'निबन्ध-काव्य' के रूप में लिया है, 'तुलसीदास' भी इसी कोटि का प्रबन्ध काव्य है। हमने इस ओर संकेत किया है कि निराला ने अपेक्षाकृतदीर्घ कवितायें अन्तर्मुखी पद्धति पर कथा के पतले सूत्र के आश्रय पर अधिक लिखी हैं और इस क्षेत्र में वे हिन्दी में अन्यतम कलाकार हैं।

'राम की शक्ति पूजा' मात्र अलंकृत काव्य नहीं है, जैसा हमने पहले कहा, इस निबन्ध काव्य की विशेषता है, अन्तर्द्वन्द का मनोवैज्ञानिक चित्रण, वातावरण की काव्य मय सृष्टि और साथ ही प्रौढ़ पद विन्यास। गुप्तबन्धुओं, हरिऔध, आदि कवियों का ध्यान, कथा के आकर्षण, नाटकीय वार्तालाप और प्रत्यक्ष भावोत्तेजन पर रहता है, जबकि निराला ने इस कथा-प्रधान कविता में अपनी कला का प्रदर्शन 'राम' की मनस्थिति के विश्लेषण में किया है।

विचार-पक्ष की दृष्टि से नारी को गौरवान्वित करने का प्रयत्न कवि ने यहाँ भी किया गीतिकाल में नारी माँसल प्रेम की आधार बन कर रह गई थी, छायावाद में नारी में सौन्दर्य का उपकरण उसकी महिमा मयी प्रेरणा रही है, यथा राम की शक्ति-पूजा में, जब राम फूल-वाटिका के लता-अन्तराल के मिलन समय को स्मृति में लाते हैं तो उनको क्लान्तकर धनुष की कोटि पर पहुँच जाते हैं ओजस्विता पुन: लौट आती है, यही रूप आगे हम 'तुलसीदास' में देखेंगे जहाँ 'रत्नावली' को 'भारती' के रूप में दिखाकर कवि के मन का अज्ञान दूर किया गया। 'शक्ति पूजा' के उद्देश्य के विषय में हम पहले लिख चुके हैं।

काव्य के बाह्य पक्ष की दृष्टि से यह कविता सजग-कलाकार के व्यक्तित्व की समर्थता को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त है। इस कविता का प्रारम्भ 'बाण' की समास प्रधान शैली पर होता

है—तीक्ष्ण-शर विधृत-क्षिप्त-कर,

शत-शेल-सम्वरण-शील, विच्छुरित-वह्नि राजीव-नयन,

विद्धाङ्ग—बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर रुधिर-स्राव जैसी सुगठित पदावली का प्रयोग मिलता है, शिथिलता का समावेश कवि की शब्दावली में नाम मात्र को भी नहीं है, ऊर्जस्वित प्रचण्ड-शब्दावली, वीर भावो-मेष के लिये जहाँ उपयुक्त प्रमाणित होती है वहां दुरूहता का भय साथ ही लगा हुआ है, कहीं कहीं तो ऐसा लगता है कि कवि का ध्यान अर्थागम की ओर नहीं है जितना गुम्फित-पद-वल्लरियों के पौढ़—विधान का। परन्तु यह दोष आगे 'गीतिका' में अधिक आया है। युद्ध-परिस्थिति के आतंक के साथ यह प्रकाण्ड शब्द-व्यूह जैसे "शिव का ताण्डव-स्तोत्र" का स्मरण दिया जाता है।

कविता में अप्रस्तुत विधान की ओर ध्यान नहीं दिया गया, पर्वत में पार्वती की कल्पना मनोहर है चेष्टाओं और भंगिमाओं के चित्रण निराला में कम मिलते हैं क्योंकि कवि "संकेत" अधिक करता है, पाठक की कल्पना पर जो कवि विश्वास न कर सब कुछ कह देना चाहता है वह महान कलाकार हो ही नहीं सकता। निराला तो कथा विधान में भी "संकेतों" से काम लेता है:—

"नयनों का नयनों से-गोपन प्रिय सम्भाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन"

यहाँ 'नव' और "प्रथम-उत्थान" शब्द अत्यन्त सार्थक हैं। नव से सीता की मुग्धावस्था और 'प्रथमोत्थान' से प्रथम मिलन इंगित किया गया है। निराला तो केवल—"काँपते हुये किशलय, झरते पराग समुदय' कहते हुये रह जाते हैं परन्तु यदि कोई अन्य कवि होता तो उपमाओं का एक अम्बार यहाँ एकत्र कर देता जो चित्रों के रङ्ग को गहरा भले ही कर देता परन्तु जो सूक्ष्मता और व्यञ्जनात्मकता अब है वह सर्वथा लुप्त हो गई होती।

संयम और शक्ति निराला की कला में सर्वत्र व्याप्त है, राम

का विलाप यहाँ प्रस्तुत है वह अन्यत्त सक्षिप्त और परिस्थिति के अनुकूल है। प्रियप्रवास की यशोदा व अन्य ब्रज जन जैसे हा हाकार करते नहीं थकते, संज्ञा शून्य हो जाते है और पुन रोने की होड़े लगाते हैं उसी प्रकार यहाँ भावुकता की अतिशयता नहीं है, बजरंगी हनुमान जिसका पद, चाप करते हो, भीमा मूर्ति जिसके सम्मुख अट्टहास कर रही हो, वह निराला का 'राम' क्षण मात्र के लिये शिथिल होकर पुन शक्ति-साधन मे लग जाता है।

"तुलसीदास"

तुलसीदास कवि का "अन्तर्मुख प्रबन्ध-काव्य" है। कोरी कथा का आकर्षण यहाँ नहीं है। "फिर क्या हुआ" का कौतूहल जो कथाकार सर्वदा पाठक के सम्मुख प्रस्तुत करता रहता है, वह निराला का इष्ट नहीं है इस पद्य-काव्य में कवि ने "राम की शक्ति पूजा" के समान ही मन की ऊर्ध्व-विषम-सम गतियों का विश्लेषण किया है। अन्तर्दर्शन की काव्य में यह पद्धति राग-विराग अभिव्यन्जक-गीतों के रूप में तो प्रचलित थी ही, किन्तु उसका कथा के रूप में निर्वाह करना निराला का ही कार्य है। मानवीय हृदय की अनेकश: स्थितियों को सूक्ष्मता से पकड़ सकना उसी कवि का काम है जो मानव मन के रहस्यों से अपनी अनुभूति की समर्थता से परिचित होता है, यह अन्तर्भेदनी प्रज्ञा, भावना का आवरण ओढ़ कर यदि कहीं प्राप्त हो सकती है तो निराला में ही। 'प्रसाद' जी की कामायनी भी इसी पद्धति पर है परन्तु वहाँ मानवीय वृत्तियों का विकास-विन्यास तो है, परन्तु संस्कृति का ऐतिहासिक उत्थान-पतन "तुलसीदास" जैसा नहीं है, भारतीय-समाज शास्त्र का विश्लेषण निराला ने बड़ी ही बारीकी से किया है।

आज 'तुलसीदास' के कृतित्व की हम आलोचना करते है हमारे सम्मुख प्रश्न यह है कि अतंन्त: तुलसीदास ने अपने युग को कहाँ तक आगे बढ़ाया, कोरे कलाकार तो वे थे नहीं, कोई नहीं होता, अपनी युग-चेतना से सर्वथा अपरिचित रह कर कोई कवि महान स्रष्टा नहीं हो पाया न होमर न वाल्मीकि न शेक्सपियर न तुलसी। आज विभिन्न दृष्टिकोणों से तुलसी-साहित्य की व्याख्या की जा रही है। किन्तु निराला ने तुलसी की देन को अपनी इस लघुकविता में स्पष्टतया घोषित किया है। तुलसी की सफलता

का रहस्य है मुसलमानी सँस्कृति के विरुद्ध वैदिक साँस्कृतिक-शिविर की स्थापना। तुलसी ने इसके लिये उसी पौराणिक-पद्धति का आश्रय लिया है जिसका आधार अनेक धर्म प्रचारक लेते आरहे थे। युग की सारी चेतना को समझ कर तुलसी ने, मुस्लिम वैभव के प्रति आकर्षित होती हुई हिन्दू जाति के सम्मुख जिस कल्पित रामराज्य का आदर्श रक्खा वह उस परम्परा में पली हुई जनता के लिये सर्वथा अनुकूल पड़ा उसमें शक्ति व शील का विधान अधिक रहा. सूर के सौन्दर्य व माधुर्य का कम क्यों ? समाज में मुस्लिम-सत्ता के समानान्तर शक्ति को आवाहन के लिये 'राम' जैसे शक्तिवान राजा की कल्पना आवश्यक थी।

अब देखें कि तुलसी का ध्यान सेवक-सेव्य भावना की ओर अधिक रहता है, क्यों? अकबर के प्रति श्रद्धालु जनता की भक्ति के लिये राम जैसे लोक नायक की सृष्टि का तुलसी ने 'अनपायनी' भक्ति के विधान द्वारा साँस्कृतिक-शिविर की रचा की। वर्तमान को व्यक्ति तभी तुच्छ समझता है जब या तो भव्य अतीत का स्मरण उसे दिलाया जाय या भविष्य की मधुर कल्पना की जाय, भविष्य के सुख स्वप्न के लिये हमारे यहाँ गीता में लिख दिया गया है कि जब जब धर्म की हानि होती है तब मनुज-रूप-धारी स्रष्टा स्वयं जन्म लेता है, किसके लिये, वेद व ब्राह्मणों के उद्धार के लिये वेद व ब्राह्मणों के नायकत्व में देशी व्यवस्था विदेशियों द्वारा आतंकित थी, क्योंकि विजेता विजित की साँस्कृति को सर्वथा हेय समझता है, साथ ही सिद्धों, वज्रयानियों सहज-यानियों, गोरखपन्थियों, दादू, कबीर, नानक के पंथियों ने वर्णाश्रम प्रथा—(वेद-ब्राह्मण-प्रधान) की प्रधानता का अस्वीकार कर के एक सामान्य मानवतावाद का प्रचार किया था, सन्तों ने 'मानवतावाद' के उद्धार के लिये एक ही मार्ग सोचा था, हिन्दू, मुस्लिम आचार-प्रधान दोनों धर्म अपनी आचार-प्रधानता छोड़ें, धर्म के आधार पर खड़े किये गये विविध भेदों को तिलांजलि दें, एक ही सत्ता में विश्वास करें, रूपों की उपासना न करें, यही एक

मार्ग था जिस पर एकता हो सकती थी, तुलसी ने यह नहीं कहा, निराला ने भी यह नहीं कहलाया, तुलसी ने रामानुज रामानन्द द्वारा बिकसित बिचार-धारा को अपना कर निम्न जातियो के असन्तोष को कम करने के लिये अपने 'राम' को एक सीमा तक मानवतावादी बनाया, उनके राम निषाद भिल्लो से गले मिलने लगे-शबरी के बेर "उदारतावश" खाने लगे, वे शम्बूक के पास वध के लिये नहीं पहुँचाये गये, ये सब क्या था ? निम्न जातियो को आश्वासन कि वेद व ब्राह्मणो के नायकत्व मे चलने वाली व्यवस्था, तुम्हारे साथ अब अधिक उदारता बर्तेगी, तुम्हे हम बराबरी का दर्जा तो नहीं दे सकते क्योकि शूद्र हो, नीच हो परन्तु तुम दया के पात्र हो, दण्ड के नहीं, सामान्य व्यवहार मे तुम्हे ताड़ना मिलनी ही चाहिये परन्तु सिद्धान्ततः तुम भी मनुष्य हो, तुम हमारी व्यवस्था मे श्रद्धा रक्खो, हम तुम्हे अभयदान दे देगे, तुम्हारा कर्तव्य उच्चवर्णो के लिए उत्पादन करना है, तुम उससे विलग मत होओ, राम भूभार-हरण के लिये उत्पन्न हुये है वे अन्यायियों को अवश्य मार डालेगें। वे रवि, पावक, और सुरसरि के समान समर्थ है, उनके कार्यों को हम समझ नहीं सकते, वे परम समर्थ हैं, उनके सिर पर कोई नहीं हैं साक्षात ब्रह्म है, उनकी शरण मे चलो अर्थात् मुसलमानो से मिलने का प्रयत्न न करो, कबीरदास बनकर प्रचलित विषय समाज की आलोचना मत करो; राम अशरण शरण है, तुम सब पापी हो, पर वे पतित पावन हैं, सबका उद्धार होगा पर तभी, जब उनकी शरण मे चलोगे, वेद ब्राह्मण के विरुद्ध मत बोलो, यह मर्यादा है, इसे मत तोड़ो।

तुलसी ने इसके लिये एक ओर तो भक्ति भावना का वह उदार सूत्र पकड़ा जो रामानुज के द्वारा प्रतिपादित हृदय वाद पर खड़ा हुआ है, भक्ति-धर्म निराश और हारे हुये भारतीयो का पलायन वाद नहीं है, अपितु उच्च वर्णों के विरुद्ध असन्तोष व बिद्रोह के रूप में प्रकट हुआ है, इसका आधार है केवल कुछ वर्गों के लिये रक्षित ज्ञान के विरुद्ध सामान्य सहज सुलभ भावना के द्वारा आरा-

धना का प्रचार जिसमे जाति, रग, वर्ण का विचार नहीं। यह वैष्णव धर्म परम उदार और अपने समय के लिये अत्यन्त प्रगतिशील विचार धारा का वाहक रहा है। इसने निम्न जनता को पर्याप्त सहूलियतें दीं यद्यपि समाज का ढाँचा वही स्वीकृत रहा जो विषमता के आधार पर संगठित था, तुलसी भी इसी भक्ति-धारा के अनमोल रत्न थे, अत उनकी मानवता वादी प्रेरणा ने निश्चय ही मनुष्य मे उदारता व सहानुभूति उत्पन्न करने मे योग दिया। सूर के ही समान।

तुलसी का दूसरा पक्ष था समाज सुधारक का जिसका रूप हम ऊपर दे आये है, यह रूप प्राचीन व्यवस्था के पुर्नरुद्धार के रूप मे था इसमें मुस्लिम राज्य के समानान्तर वर्ण व्यवस्था पर आधारित प्राचीन हिन्दू राज्य का समर्थन था जिसमे ऊँचनीच, जाति, पाति छुआ छूत की पूरी छूट तो थी पर फिर भी पहले से काफी सहूलियतें देने की घोषणा करदी थी सिर्फ एक शर्त पर कि वे ब्राह्मणों का नेतृत्व स्वीकार किये रहें।

इसके लिये तुलसी ने अपने महान व्यक्तित्व का परिचय दिया है, सारी दार्शनिक विचार धाराओ का समागम और समन्वय करके उन्होंने शैव, वैष्णवों, शाक्तो आदि को एकता का आधार दिया किन्तु सिद्धो नाथो और सन्तो की आचोलना कटु से कटु भाषा में की—

'तुलसी अलखहिं का लखहिं, राम नाम जपुनीचु'मे ये तुलसी द्वारा कहे गये 'नीच लोग समाज की तत्कालीन व्यवस्था के घोर शत्रु थे परन्तु विरोध व विद्रोह के विश्लेषण में हम एक बात बराबर भूलते है और वह यह है कि हम उस युग मे यह देखते हैं कि नाथ पंथी एकाङ्गी साधक व पारिवारिक प्रथा के शत्रु थे,सिद्ध वाम मार्ग मेभ्र ष्ट हो गये थे, सन्त मूर्ख और पथ भ्रष्ट थे उस युग में परम्पराओ की जड़ो पर कुठाराघात करने मे नाथपन्थी सिद्धों, सन्तो आदि ने कुछ भी नहीं उठा रक्खा, उन्होने विरोध डट कर किया यह बात दूसरी है कि जो रचनात्मक विचार बदले मे उन्होने हमे दिये उसमे

से कितने वैज्ञानिक और स्वस्थ हैं और कितने त्याज्य व विगर्हणीय। भेद भाव पर आधारित वर्णाश्रम व्यवस्था के विरुद्ध खड़े होने वालों ने मनुष्य के प्रेम व समानता के सिद्धान्तों का प्रचार किया वे आज भी ग्रहणीय हैं, किन्तु युग की सीमाओं में विवश होकर वे व्यवस्था पर प्रहार तो कर सके किन्तु साथ ही एकाङ्गी साधनाओं में दूर तक जाते जाते आगे स्वयं पथ भ्रष्ट हो गये अतः उनके क्राँतिकारी रूप को हमें न भूल कर तुलसी के 'वर्ण समर्थन वाद' के दृष्टि कोण को समझना चाहिये। तुलसी ने ऐसे लोगों के लिये "दम्भी निज मत कल्प कर प्रगट कीन्ह बहु पथ" कहा है क्योंकि तुलसी के अनुसार एक ही पथ उस समय आवश्यक था, वर्णाश्रम धर्म पर आधारित हिन्दू सामन्त वाद जिसका नायक मानवता वादी व व्यक्तिगत त्याग व तपस्या का विश्वासी था। सामन्तवादी मुस्लिम शासन में शासक मानवता वाद के शत्रु हो गये थे, सर्वत्र घृणा, हीनता, तिरस्कार बलात धर्म परिवर्तन का होने वाला था अतः तुलसी की अचूक दृष्टि ने देखा कि यदि भारतीय समाज के सम्मुख ऐसी सामन्त व्यवस्था का आदर्श रक्खा जाय जिसमें बड़ों का हित तो अक्षुण्ण रहे छोटों को भी कुछ अधिकार मिल जायें तो एक मोर्चा कायम हो सकता है और यही हुआ, तुलसी की विचार धारा ने उत्तरी भारत को एक विशिष्ट रूप दे ही डाला।

मुगलों के द्वारा स्थापित शान्ति काल में ही ऐसी कल्पना सम्भव थी क्योंकि तुर्कों के प्रहारों के समय देश को सिर उठाने तक का समय न था।

निराला ने तुलसीदास में रहस्यवादी पद्धति पर प्रतीक के रूप में मुगल शासन का वर्णन किया है, जब राष्ट्र सोया हो तो जो व्यक्ति सर्व प्रथम राष्ट्र व्यापी चेतना फैला कर उसे उद्‌बोधित करता है, वह महान है। तुलसी भी ऐसे ही महान लोक नायक थे, और गाँधी भी किन्तु विचारक त्रिकालदर्शी नहीं हो सकता, यदि हो भी तो उसे अपने समय के अनुसार ही समाज को गति देनी पड़ती है

तुलसी की देन यह थी कि यद्यपि उन्होंने पौराणिक प्रचार द्वारा वर्णाश्रम प्रथा के आधार पर ही समाज का संगठन किया, जिसमें शोषण व भेद भाव के लिये बराबर स्थान रहा है, तथापि वे मानवता वादी प्रचारक थे, अत उन्होंने दया व सहानुभूति का प्रचार किया, दासता की नींद मे उन्मत्त जनता मे जागरण के स्वर फूँक और उसके मन में हीनता और पराजय की भावना नष्ट की, उनके सम्मुख अपनी समझ म एक आदर्श राज्य का चित्र रक्खा और इस प्रकार विदेशी सत्ताधीशों के विरुद्ध उन्होंने राष्ट्र को खड़ा कर दिया. उनकी सीमाओं के विषय मे हम कह चुके हैं किन्तु उनका सुधार कार्य नगण्य न था. प्रत्येक व्यक्ति अपने दृष्टि-कोण व शक्ति के अनुसार ही लोक-वाद के पथ पर बढ़ता है. तुलसी व गाँधी भी इन्हीं में से थे।

निराला ने 'तुलसीदास' की जागृत चेतना को पहचाना है. इसलिये वे उनके आज भी सबसे बड़े भक्त हैं। 'तुलसी' आक्रमण कारी विदेशी सत्ताधारियों के विरुद्ध खड़े होने के पहले स्वयं किस प्रकार ज्ञान के आलोक से आलोकित हुये. व्यक्तिगत रूप से उनका सुधार कैसे हुआ, देश की मोह ग्रस्त, दास जनता को जगाने से पे स्वय वासनादि के ऊपर कैसे उठ सके, यही "तुलसीदास" नामक कविता का विषय है।

देश के सांस्कृतिक पतन की ओर कवि ने बड़ी ओजस्विनी भाषा में इंगित किये हैं. भारतीय आकाश का संस्कृति-सूर्य तमाच्छादित है, मुसलमान देश की छाती पर शासन कर रहे हैं. धीरे २ यवन सारे उत्तरी भारत को विजित कर लेते है, राजपूत, सूत व मागध के समान बन जाते हैं, उसी समय राजापुर में 'तुलसीदास' का जन्म होता है. अपनी युवावस्था मे वे चित्रकूट के भ्रमणार्थ सखाओं के साथ जाते हैं, तुलसी की स्थिति का यहां अत्यन्त सूक्ष्म चित्रण हुआ है उन्हे ऐसा लगता है जैसे तृण, लता, वीरुध सब हस रहे हैं, कवि को उस चेतन का स्पर्श होता है, जिसके बिना सब

जड़वत् रह गया है, प्रकृति से उन्हे सदेश मिलता है जड़ से--चेतन की ओर चलने का······जिस माया ने सत्य को छिपा रक्खा है, उसका उन्हें आभास मिलता है जिस चेतन शक्ति के कारण सब मे जीवन का सागर उमड़ रहा है उसका लोप हो गया है, प्रकृति जड़वत् रह गई है, यहाँ भारतीय समाज की दुर्दशा की ओर भी सकेत है, कवि उस मूल सर्व व्यापक चेतन शक्ति का अनुभव करता है और कवि के मन की गति ऊर्ध्वगामिनी हो जाती है,

दूर-दूर तर दूर तम शेप,
कर रहा पार मन नभोदेश
सजता सुवेश, फिर फिर सुवेश जीवन पर।

कवि इस उच्च अवस्था मे पहुँच कर देखता है कि भारतीय सांस्कृतिक सूर्य पर राहु छाया हुआ है, कवि अनुभव करता है कि विधि की इच्छा बलवान है, यवनों के आगमन के पूर्व ही वर्णों के गाँठ टूट चुके थे. द्विज चाटुकार हो गये थे, शूद्र गण क्षुद्र-जीवन-सेवल हो गये थे, वे अपने को द्विजगणों का 'ग्रास' समझ चुके थे, यदि वर्ण व्यवस्था भ्रष्ट न हो जाती तो मुगलों को इतनी शीघ्रता से सफलता न मिलती, निराला को वर्ण व्यवस्था मे विश्वास है अतः वे यह नहीं समझ पातेकि भेद-भाव ववर्ग स्वार्थपर आधारित वर्ण व्यवस्था संगठित रह ही नहीं सकती, उसका विशृंखल होना स्वाभाविक ही था अतः देश के पतन का कारण वर्ण व्यवस्था ही का अस्तित्व था।

कवि इस गम्भीर चिंतन मे पड़ कर अपनी वृत्ति को एक अत्यन्त उच्च स्थिति पर पाता है, उसने अनुभव किया कि देश जड़ हो गया है, माया (वासना, वैभव की प्यास, स्वार्थ लोभ आदि) का प्रभाव बढ़ रहाहै, जनता जगत के भ्रममय सुखों को ही सत्य समझ बैठी है अत वह उस मूल चेतना को विस्मृत कर चुकी है। जिसके अनुभव से मनुष्य में अपरिमित बह उत्पन्न हो जाता है वह दिशा काल के ऊपर उठकर बंधनों से मुक्ति पा लेता है, पार्थिव

ऐश्वर्य का उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ाता है (निराला पर भी पार्थिव ऐश्वर्य का कभी प्रभाव नही पड़ा पर उसने पार्थिव दुखों को अपनी सबेदना का विषय बनाया है) तुलसी के कवि मन मे विश्वास जगा कि उसी को यह अधकार दूर करना है।

इसी प्रकाश के क्षण मे 'रत्नावली' का चित्र कवि की स्मृति मे आ जाता है, प्रिया का यह रूप उसकी 'मुक्ति' मे बाधा बन कर आता है, और कवि एक बार पुन रूप के मोह मे आवद्ध होकर सारी प्रकृति को नारी के रूप मे देखने लगता है, देश को अंधकार से मुक्त करने के लिये जो ऊर्ध्व चेतना जागृत हुई थी वह लुप्त हो जाती है, माया से युक्त कवि देखता है—

यह वही प्रकृति, पर रूप अन्य
जग मग, जगमग, सब वेश वन्य
सुरभित दिशि दिशि कवि हुआ धन्य, मायाशय

जब मन अपनी पूर्व स्थिति पर आ जाता है, तो प्रकृति का रूप भी अपने प्रकृत रूप मे सम्मुख आता है। इसके पश्चात् कवि चित्रकूट का भ्रमण करता है तुलसीदास का कवि अब भी प्रिया के ध्यान मे मग्न है। उसी की अलके आकाश के रूप मे फैली है, उसके मुख ने चन्द्र का रूप धारण कर लिया है, कवि यहाँ सारी सृष्टि की मूल चेतना का प्रतीक अपनी प्रिया को मानता है। सारा ससार उन्हे उसी की आँखो मे दिखाई पड़ता है। प्रिया के प्रति मन के इस सहज आकर्षण को तुलसी 'मुक्ति' मान बैठते है। कवि अपने मन की जगी इच्छा को मन के अनुसार तर्क देकर उपयुक्त सिद्ध करना चाहते हैं, 'रत्नावली' के मोह से कवि के मन मे अनेक भावनाओ का जन्म होता है।

कवि से बिना आज्ञा प्राप्त किये, रत्नावली का भाई उसे मातृगृह ले जाता है, मोह ग्रस्त तुलसी ससुराल जा पहुँचते हैं, वे प्रिया का वियोग सहन नहीं कर सकते भाभियाँ कवि की दुर्बलता पर हंसती है रत्नावली को क्रोध हो आता है, और उस ओजस्विनी

नारी को कवि भारती के रूप मे देखना है।

धिक ! आये तुम यों अनाहूत
धो दिया श्रेष्ठ कुल धर्म धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाये
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम
वह नहीं और कुछ हाड चाम
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आये ॥

इन शब्दों के साथ कवि के मन का एक पवित्र संस्कार जग पडता है, कवि ने इस नवोन्थित ज्ञान के प्रकाश मे देखा कि उनकी वामा अनल गरिमा बन गई थी, तड़िमा-तोह छूट गया। अब कवि को उसकी प्रिया वरदात्री सरस्वती के रूप में दिखाई पडती है, कवि का मन ऊपर उड़ता है, शून्य दिखाई पड़ता है, रत्नावली तारिका के रूप मे परिवर्तित हो गई है कुछ क्षण पश्चात प्रकाश देकर वह तारिका भी अस्त हो गई—

चमकी तब तक तारा नवीन
द्युति नील नील जिसमें नवीन
हो गई भारती, रूप क्षीण महिमा अन
आभा भी क्रमश हुई मन्द
निस्तब्ध व्योम, गति रहित छन्द
और तब ....
आनन्द रहा, मिट गये द्वन्द्व, बन्धन सब।

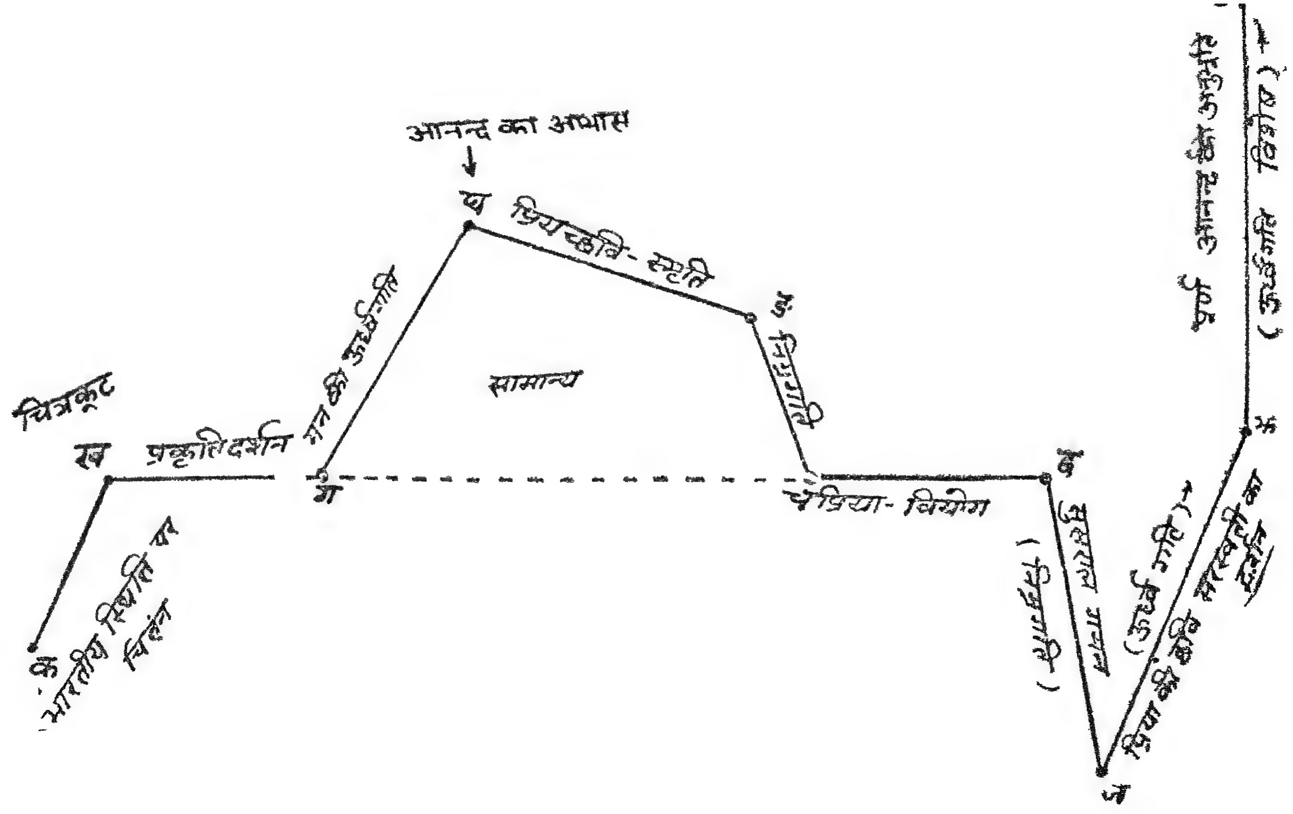
इस प्रकार प्रिया को ही आदि शक्ति के रूप मे देखकर कवि द्वन्द्वो से ऊपर उठ जाता है, कवि का प्राण उसकी असीमता में स्थित हो जाता है। मोहान्धकार दूर होने से चेतना का प्रवाह निर्बाध हो गया, सृष्टि पर भी इसका प्रभाव पड़ा—

गूँजा जग का कानन मण्डल, पर्वत-तल।
सूना उर ऋषियो का सुना
सुनता स्वर, हो हर्षित दूना

आसुर भावो से जो भूना, था निश्चल

अब जड़ता से चेतना का युद्ध होगा, एक ओर चैतन्य कवि है दूसरी ओर सबल माया-करो और सचित कौशलो से पूर्ण जड़ पार्थिव सत्ता धारी। कवि इस नूतन प्रकाश को लेकर वैराग्य लेता है और इस प्रकार "तुलसीदास" उस साँस्कृतिक सूर्य के ऊपर आवृत वारिद जाल को विच्छिन्न कर एक वार फिर ज्ञान छटा को विच्छु रत करता है।

हमने यह दिखाया है, कि तुलसीदास को कवि ने राष्ट्रीय जागरण के प्रतीक के रूप मे चित्रित किया है कवि ने बाह्य घटनाओ को विस्तार न देकर 'तुलसी' के गम्भीर अतल मे प्रवेश किया है मन की प्रक्रिया को समझने के लिये हम घटना को दो भागो में बांट सकते है। १ चित्रकूट, २रत्नावली मिलन (ससूराल) चित्रकूट में कवि हृदय और प्रकृति का बिम्ब प्रतिविम्ब भाव चित्रित है, और रत्नावली-दर्शन मे मन की उस गति का जो स्तरो को भेद कर एक अत्यन्त उच्च आदर्श पर स्थित हो जाती है। कवि का पूर्ण प्रयत्न स्खलन से उन्नयन की ओर जाने वाली वृत्ति की पकड़ मे है। इन गतियो का अध्ययन हम इस प्रकार कर सकते हैं—



चित्रकूट
क
भारतीय स्थिति का चिंतन
ख
प्रकृति दर्शन
ग
मन की ऊर्ध्वगति
घ
आनन्द का आभास
सामान्य
ङ
प्रिया- वियोग
(ऊर्ध्व गति)
प्रिया की छवि सरस्वती का दर्शन
पूर्ण आनन्द की अनुभूति
(ऊर्ध्वगति विशेष)

यहाँ हम उन पदो को उद्धृत कर रहे हैं जो उक्त मानसिक स्थितियो के सूचक है—

क, ख—सामान्य कथात्मक-अश प्रधान—

ख,7ग—प्रकृति दर्शन मे अचिन्त्य अनुभूति का प्रारम्भ—

तरु, तरु, वीरुध वीरुध तृण तृण
जाने क्या हंसते, मसृण, मसृण
जैसे प्राणो से हुये उऋण, कुछ लखकर।
+ + + + + + +
तुम रहे छोड़ गृह मेरे कवि
देखो यह धूलि धूसरित छवि
छाया इस पर केवल जड़ रवि खर दहता।

ग7घ—ऊर्ध्वगति—(प्रथम बार)—

दूर, दूर तर, दूर तक शेष
कर रहा पार, मन नभोदेश
सजना सुबेश, फिर फिर सुबेश जीवन पर।
....
सद्य ज्योति. ज्यो सुविस्तार अम्बर तर

घ—आनन्द की झलक—करना होगा यह तिमिर-पार।
देखना सत्य का मिहिर-द्वार
बहना जीवन के प्रखर ज्वार मे निश्चय

घ7ङ=प्रियो-स्मृति—उस क्षण, उस छाया के ऊपर
नभ तम की सी, तारिका सुघर
आ पड़ी, दृष्टि से, जीवन पर सुन्दर तम

ङ7च-पतन—यह वही प्रकृति, पर रूप अन्य
जग मग, जगमग, सब वेश अन्य
सुरभित दिश दिश, कवि हुआ धन्य, मायाशय।

च =पतनोन्मुखता-देखा, वह नही प्रिया, जीवन
नत,नयन, भवन, विषण्ण आँगन

आवरण शून्य वे बिना वरुण मधुरा के।

छ7ज =पतन—खींचता छोर, यह मौन और
पैठा उनमें जो अधम चौर
खुलता अब अचल, नाथ, पौर साड़ी का।

ज7झ, दृष्टिकोण में परिवर्तन=जागा, जागा, संस्कार प्रबल
रे गया काम तत्क्षण वह जल
देखा वामा वह न थी, अनल प्रतिमा वह।

झ7ञ ऊर्ध्वगात=दृष्टि से भारती से बचकर
कवि उठता हुआ चला ऊपर
+ + +

ञ— आनन्द रहा खुल गये द्वन्द्व, बंधन सब

अन्तर्पक्ष को स्पष्ट करने के पश्चात हम 'तुलसीदास' के बाह्य पक्ष पर दो शब्द कहेंगे। इस काव्य में एक सर्वथा मौलिक छन्द का प्रयोग किया गया है, जिसमें दो लड़ियां अन्त्यानुप्रास का पूर्ण निर्वाह करती है और तीसरी कड़ी कुछ अधिक दीर्घ योजना के आधार पर स्वतन्त्र रहती है, यह तीसरी कड़ी, द्वितीय पद्य खण्ड तीसरी कड़ी से अनुपात की दृष्टि से मिलती चलती है, तब एक मनोहर नाद सौन्दर्य और स्वर-सामञ्जस्य उत्पन्न हो जाता है।

यथा—(क) वीरों का गढ़, वह कालिंजर +
सिंहों के लिये आज पिंजर +
नर है भीतर, बाहर किन्नर गण गाते +
(ख) पीकर ज्यों प्राणों का आसव +
देखा असुरों ने दैहिक दव ×
बन्धन में फंस, आत्मा बांधव दुख पाते ×

काव्य के प्रारम्भ में सादृश्य मूलक अलंकारों का प्रयोग किया गया है परन्तु वह भी प्रतीक रूप में, अन्यथा कवि का ध्यान भावना की गहराई पर अधिक है बाह्य अलंकरण पर नहीं, परन्तु शब्द विधान में अपने स्वभावानुसार कवि अत्यधिक सजग है, शब्द काव्य के

शरीर हैं, शब्द से अर्थ व ध्वनि दोनों का निवास है, कवि चयन-शक्ति के बल पर, परिस्थिति के अनुसार शब्द सामञ्जस्य मे ध्वन शक्ति भी उत्पन्न करता है और अर्थ निर्वाह की भी अवेहलना नहीं करता—

भारत के नभ का प्रभा-पूर्य
शीतलाच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे, तमस्तूर्य दिग्मण्डल

किन्तु सौष्ठव की ओर अधिक ध्यान होने से, उसमे प्रौढ़ता अवश्य है, पर कोमलता का अभाव है, निराला बाण के पुत्रो से उस पुत्र के समान है जो "नीरस तरुरिह विलसति पुरतः" न कह कर 'शुष्कस्वृक्ष स्तिष्ठत्यग्रे' कहना किसी सीमा तक अधिक समीचीन समझता है, किन्तु प्रायः ओज गुण के निर्वाह मे ही। कोमल भाव मे शब्दावली कुछ अस्पृष्ट हो ही जाती है।

"भाषा भावो की अनुगामिनी है", स्वयं कवि की वृत्ति जिस अवस्था मे होती है, तब वैसी ही शब्द लहरी निकलती है। अत एक ओर तो 'अस्तमित आज रे तमस्तूर्य दिङ्मण्डल' है तो दूसरी ओर 'लेते सौदा जब खड़े हाट, तुलसी के मन आया उचाट' जैसी पंक्तियां है, पन्त की ग्रन्थि भी एक प्रेम-कथानक को लेकर चली है, किन्तु 'ग्रन्थि' मे कवि ऐसी सामान्य पंक्तियाँ नही लिखता सामान्य शब्दा-वली मे भी पन्त जी का कवि मृदुलता का अञ्चल नहीं छोड़ता, किन्तु ग्रन्थि मे जहाँ कवि का ध्यान मात्र 'सज्जा' की ओर है वहाँ तुलसीदास का स्वर गम्भीर और चिन्तन प्रधान है, ग्रन्थि मात्र भावोच्छ्वास को लेकर चलती है, यदि ऊपरी अलकरण और वाक् चातुर्य को एक ओर रख दे तो काव्य एक अपरिपक्व किशोर को भावुक-कल्पना का कौतूहल प्रधान प्रथम-प्रयत्न सा जान पड़ता है जब कि निराला मे सामान्य घटना को भी इतने उच्चस्तर पर पहुँचा दिया गया है कि प्रकृति-दर्शन, प्रिया-दर्शन आदि घटनाएँ प्रतीक रूप मे रह कर अपना आन्तरिक पक्ष ही स्पष्ट करने का साधन-मात्र

रह जाती है, इसी गाम्भीर्य के कारण निराला में मात्र वाग्वैचित्र्य कोरा अलंकरण, थोथी काल्पनिकता, हलका रोमाँस और अस्वस्थ भावनाओं का अतिरेक नहीं मिलता, निराला ने काव्य में बौद्धिक चिन्तन का समावेश सफलता के साथ किया है, यह बौद्धिकता 'राग' को कभी कभी इतना दबा देती है कि विचार-पक्ष की प्रौढ़ता पाठक को प्रभावित करती है परन्तु हृदय के ज्वार-मय भावों का खुलकर प्रकटीकरण नहीं हो पाता, अत किसी सीमा तक 'रसात्मकता' में बाधा अवश्य पड़ती है, बौद्धिकता का स्वर जिन कविताओं में उतना उभरा हुआ नहीं रहता, वहाँ चित्रण का सौन्दर्य मुग्धकारी बन पड़ता है। यथा 'सन्ध्या-सुन्दरी' में या भावना का उच्छ्वसित वेग खुल कर व्यक्त होता है। यथा 'सरोज की स्मृति' में हार्दिकता के स्थान पर बौद्धिकता के अधिक प्रयोग ने 'तुलसीदास' की कला को सामान्य धरातल से ऊपर उठा लिया है, अत भावना का विकास क्रम जब पाठक की दृष्टि से ओझल हो जाता है, तो अस्पष्टता और उलझन की वृद्धि स्वाभाविक है, विचार का सूत्र अत्यन्त पतला पड़ जाने पर पाठक का मन कला में चूक जाने वाले नट के समान कहीं का नहीं रहता।

तुलसीदास, कामायनी की कोटि का काव्य है। एक में यदि मनोविकारों का विकास दिखाया गया है तो दूसरे में उनका उत्थान-पतन। यह प्रतीक पद्धति जहाँ काव्य को असाधारण और उच्च बनाती है वहाँ उसे सर्व-सुलभ भी नहीं रहने देती। 'रामचरित मानस' के चरित्रों की मनोवृत्ति को पाठक समझ लेता है परन्तु निराला के तुलसीदास की मन स्थिति को समझ लेना कठिन कार्य है। यह अन्तर तुलसी व निराला दो स्रष्टाओं की कला व प्रवृत्तियों का अन्तर है।

गीत कला

'कला' के सम्बन्ध मे स्वय कवि ने 'मेरी गीत-कला' शीर्षक निबन्ध मे बहुमूल्य विचार प्रस्तुत किये है, जिससे उसकी कला पर अच्छा प्रकाश पड़ता है, हम कवि की प्रमुख कविताओ का रसास्वादन कर चुके है, विश्लेषण और तुलना द्वारा हम ने यत्र-तत्र कवि की प्रमुख विशेषताओ की ओर पाठको का ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न किया है, अब हम यहाँ कवि की 'गीत-कला' पर विचार प्रस्तुत कर के, कवि की सामान्य प्रवृत्तियो का अकलन करेगे।

कवि ने लिखा है—'भयोसिद्ध कर उलटा जापू' यदि किसी पर घट सकता है तो एकमात्र मुझ पर, कबीर उलट बाँसी के कारण विशेषता रखते है, पर वहाँ छन्दो का साम्य है, उलट बाँसी नहीं, यहाँ छन्द व भाव दोनो की उलटी गङ्गा बहती है। ॐ

यह उलट पुलट मैंने जान बूझ कर नही किया, और यह उलट पुलट है भी नहीं, इसमे सीधा और प्राणो के पास पहुँचता, रास्ता, छन्दो के इतिहास मे दूसरा नहीं। ऽ

तो कवि प्रारम्भ से ही लोक विरोधी परम्परा रहा है, मान्यताओ का विद्रोही। चाहे वह किसी क्षेत्र में क्यो न हो। कवि ने इस व्यापक विद्रोह को 'उलटा जाप' कहा है, इसमे छन्द सम्बन्धी चर्चा हम आगे करेंगे पहले 'कला' सम्बन्धी विचार-धारा को लीजिये।

कवि के अनुसार कला केवल वर्ण, शब्द, छन्द, अनुप्रास, रस, अलङ्कार या ध्वनि की सुन्दरता नही किन्तु सभी से सम्बद्ध सौन्दर्य की पूर्ण सीमा है। इस प्रकार कवि ब्रह्म के समान कला की

ॐ प्रबन्ध पद्म पृष्ठ २६७

ऽ वही

सफलता उसकी पुर्णता मे देखता है, प्रसादजी कला को आत्मा की सकल्पनात्मक अनुभूति मानते थे, वहाँ भी कला मे किसी अङ्ग विशेप पर बल न दिया गया था, प्रसादजी कला को आनन्द की अभिव्यक्ति भी मानते थे, उन्हे 'कला' मे दु खवादी धारा का सदा विरोध किया क्योकि आत्मा की वाणी सदा आनन्दमय होती है, उन्होने सारे भक्ति सम्प्रदायो के काव्य-साहित्य एवम् बौद्ध-चिन्तन आदि को आनन्दवाद का विरोधी बताया था। केवल 'कृष्ण' को आनन्दवादी कहा था। तो 'प्रसाद' ने कला मे जिस आनन्द की साधना की, उसकी पृष्ठ भूमि मे उपनिषदो और शैवागमो का अद्वैत दर्शन था। दर्शन निराला की कला की पृष्ठभूमि मे भी मिलता है, परन्तु 'प्रसाद' ने संसार की वेदनाओं और दुखो का सामन्जस्य 'सुख और दुख' दोनो की सापेक्षता के सिद्धान्त का मान कर स्वीकार कर, प्रस्तुत कर लिया था, आनन्दवाद की भूमिका के लिये जगत की विपमता द्वन्द्व आवश्यक थे अन्यथा उस 'परम शिव' का व्यक्तीकरण कैसा होता ? किन्तु यह मन समझाने की बात थी, दुख मे आनन्द की व्यजना हो रही है और सुख मे आनन्द का सागर उमड रहा है, उसकी नीली लहरो के नीचे सुख की चमक दार मणियाँ छिपी है, ससार मे कही कोई कष्ट या अभाव नहीं है, यदि कोई अनुभव करता है तो उसे आनन्द की प्राप्ति के लिये उस दु:ख या अभाव को आवश्यक समझना चाहिये, प्रसाद मे इसीलिये दुख या निराशा से काव्य प्रारम्भ होकर उसकी परिस माप्ति 'आनन्द' मे होती है। आँसू में भी सुख या दु.ख का आँख व मन का खेल कहा गया है। निराला दूसरे छोर पर है मूलत. विश्वा बादी दार्शनिक रहे है सारी वेदनायो को माया या भ्रम समझने वाले परन्तु सून चेतना मे अगाध विश्वास होने पर भी जगह के दुःखदैन्य का विरोध करने वाले, क्योंकि निराला सामञ्जस्य-वादी कलाकार नहीं, विद्रोही कलाकार हैं, 'कला' के सम्बन्ध म कवि की मान्यता यह है कला की वैसे तो व्याख्या हो ही नहीं सकती

क्योंकि कला एक पूर्ण वस्तु है (परब्रह्म नाम) "जैसे केवल बीज से, पुष्प की कला विकसित नहीं होती, न अंकुर से, न डाल से, न पौदे से, जड़ से लेकर तना, डाल, पल्लव और फूल के रंग-रेणु गन्ध तक फूल की पूरी कला के लिये जरूरी है वैसे ही काव्य के लिये काव्य के सभी लक्षण और जिस तरह फूलों की सुगन्धि पेड़ के दृश्य समस्त भाग को ढके हुए अपने सौन्दर्य तत्व के भीतर रहती है—पेड़ की काष्ठ-निष्ठुरता दिखती हुई भी छिपी रहती है उसी तरह काव्य-कला आवश्यक, अशोभन वर्ण-सम्प्रदाय को अपनी मनोज्ञता के अंतर डाल रहती है, तन, डाल, पत्ते, फूल के रंगों के भेद और उनके उतार-चढ़ाव की तरह काव्य की भी प्रकाशन धारा है। इसकी त्रुटि कला के एक अंश की त्रुटि होगी।"

उदाहरण से स्पष्ट है कि क्यों निराला के अनगढ़, अमिल स्वर, विचित्र, मुक्त छंद विधान और गूढ़-अर्थ-निर्वाह होते हुए भी उसकी कला पर कोई क्षति नहीं पहुँचाते क्योंकि कवि न तो केवल वर्ण को कला मानता है, न अलंकार को, न केवल अर्थ व्याप्ति को, न रीति को, न रस को बल्कि वह इन सबकी समष्टि को कला मानता है, यदि कविता में 'रस' है, रूप नहीं तो वह कला अवश्य है पर वह अपूर्ण कला है, यदि उसमें अर्थ है, अलंकृति नहीं तो कला में एक अंश की कमी अवश्य है, कबीर महान कवि है क्योंकि वहाँ महान अर्थ, महान भावनाएँ विद्यमान हैं पर वह सजग कलाकार नहीं है क्योंकि वहाँ शब्द, छन्द, अनुप्रास, रस, अलंकार, ध्वनि आदि से सम्बन्ध-सौंदर्य की उच्च-सीमा नहीं मिलती, कबीर की कविता-कामिनी में लावण्य तो है, आत्मा का प्रकाश भी उसके अधरों पर है परन्तु वह 'कामरी' ओढे हुए, ईंट-पत्थरों पर आसीन है, "कमॉंच" के शतरंगी वस्त्रों में आवृत-अलंकृत सिंहासन पर सुसज्जित नहीं है। 'निराला' की कला के कई रूप दिखाई पड़ते हैं, हमें विस्मृत न करना चाहिये कि 'निराला' में जो उक्त 'पूर्णता' आ

गई है वहाँ वह 'सर्वश्रेष्ठ' सृष्टि कर सका है, यथा यमुना के प्रति, तरंगों के प्रति, जुही की कली आदि में, किन्तु जहाँ यह पूर्णता नहीं आ पाई वहाँ कबीर के समान उसका आन्तरिक पक्ष तो प्रौढ़ और प्रभविष्णु है परन्तु वैचित्र्य प्रियता एवं मौलिकता की धुन के कारण रहस्य का सामञ्जस्य आहत अवश्य हुआ है। छायावादी काल के पश्चात् 'प्रयोग' का उन्माद बढ़ता ही गया और सन् '४० के बाद की कविताओं में प्रभाव की प्रेषणीयता की ओर से ध्यान बराबर हटता गया, जिससे नूतन प्रयोगों के कारण जहाँ बहुरूपता आई, वहाँ सरलता नष्ट हुई वहाँ वह प्रयोगों की प्रदर्शिनी मात्र रह गई।

किन्तु निराला में आकर्षण बने रहने का कारण है काव्य में आत्मा की पूर्ण प्रतिष्ठा, कवि काव्य के प्राणों की रक्षा के लिये सदा तत्पर रहा है, पंत की कविता पढ़कर आप यदि पूछें कि अन्ततः यह कविता लिखी ही क्यों गई ? तो सम्भव है कोई उत्तर न मिले, मात्र अलंकृति या चित्रण ही उसका उद्देश्य हो किन्तु निराला की प्रयोग वाली कविताओं में भी निरुद्देश्यता नहीं मिलती। भाव (प्राण) की प्रतिष्ठा के कारण "डार पिछाओ, आओ, आओ" जैसी पंक्तियाँ भी आहत हो जाती हैं क्योंकि युग की आत्मा के स्वरूप को निराला पहचानता है, उसकी अवहेलना वह नहीं करता, पंत जी जहाँ बौद्धिक धरातल पर, दार्शनिक सामञ्जस्य खोजने लगते हैं वहाँ 'निराला' जनता के सुख दुःखमय स्थितियों को सीधी वाणी देते हैं, उसके उत्थान की सूचना देते हैं, अवांछनीय तत्वों पर आघात करते हैं, अपने चिर प्रिय 'निराकार' से भी जन-मन को नरक त्रास से बचाने की प्रार्थना करते हैं अतः काव्य का आन्तरिक-विचार-पक्ष पुष्ट रहने से बाह्य-वैचित्र्य सहनीय हो जाता है।

अतः जो काव्य में 'संदेश' पर अधिक बल देने वाले आलोचक हैं वे 'निराला' की इन प्रयोग-वादी रचनाओं को कभी-कभी सौंदर्य-

वादी रचनाओं से अधिक महत्व देते हैं और समकालीन कवियों में, कवि की व्याख्यानुसार अपूर्णता रहने पर भी, 'निराला की कला' को सर्वश्रेष्ठ ठहराते हैं, काव्य में प्राण-प्रतिष्ठा की दृष्टि से निराला जैसा जागरूक कवि अन्य कवि दृष्टिगोचर नहीं होता, भले ही दार्शनिक शब्दावली में पन्त के पद्य करने वाले स्वयम्भू कवि हों, बच्चन व नरेन्द्र की व्यक्तिवादी कविताओं और 'निराला' के व्यक्तिवादी कविताओं से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है, 'निराला' घोर आदर्शवादी होते हुए भी जीवन का साथ नहीं छोड़ता वह प्रकाश व विश्वास की टाँगों पर चलता है, जबकि अन्य व्यक्तिवादी कवि आत्म-निराशा आत्म-ग्लानता, अस्वस्थ उन्माद, अनुत्तरदायी उच्छृंखलता और प्रतिक्रियावादी भावनाओं का प्रसार करते हैं अतः अपनी सीमाओं के भीतर, निराला काव्य को आत्म—ज्ञान का, मनुष्य जीवन को प्रकाश देने वाले ज्ञान का अंचल नहीं छोड़ता इसीलिये कवि स्वयं कहता है—

"(कला) पूरे अंगों की सन्नद्ध सात की सुन्दरी की आँखों की पहचान की तरह—देह की क्षीणता-पीनता में तरंग सी उतरती-चढ़ती हुई, भिन्न वर्णों की वनो वाणी में खुलकर क्रमशः मन्द मधुरतर होकर लीन होती हुई (चलती है)।"

जैसे जल के एक ही होने पर तरंगों के भिन्न-भिन्न रूप एक ही शक्ति के अनेक आभास हैं उसी प्रकार निराला की काव्य-कला अनेक रूप एवम् अनेक प्रयोगों को लेकर आरंभ से ही चली है परन्तु कला की ये विविध-प्रयोग रेखायें एक ही केन्द्र से खींची गई हैं अतः विभिन्न गीतों के स्वर भावनायें विभिन्न होकर भी एक ही भाव-सत्ता में लीन होती हुई दृष्टिगोचर होता है। अनेकता में एकता का सिद्धान्त कवि ने इसी प्रकार कला-क्षेत्र में उतारा है।

इस सिद्धान्त के कारण ही कवि इन्द्रिय, भौतिक अंग की पार-समाप्ति दिव्य व अलौकिक अंश में करता जाता है।

निराला ने अपनी कला और पंतजी की कला की तुलना "पंत और पल्लव" नामक निबंध मे की है, इसमें जहाँ उन्होंने पंतजी की कला के दोष ढूँढ़-ढूँढ़ कर गिनाये हैं वहाँ अपनी कला सम्बन्धी विशेषताओं की ओर भी इंगित किये हैं।

निराला की कला की मुख्य विशेषता है—'मौलिकता' मौलिकता के अभाव के लिये उन्होंने 'पंतजी की चौर्य कला' के अच्छे उदाहरण दिये हैं, यहाँ प्रस्तुत विषय निराला की कला को स्पष्ट करने का है अतः हम पंत की "चौर्य कला" पर विस्तार से अन्यत्र विचार करेंगे यहाँ तो निराला की कला सम्बन्धी मान्यताओं व विशेषताओं को समझना है। मौलिकता के लिये कवि ने भाव व पद साधना दोनों पर विचार किया है।

<u>पद साधना</u>—रीतिकाल की अनुप्रास मयी भाषा के समान निराला व पंत दोनों में पद-साधना की ओर अधिक ध्यान दिया गया है। पंत ने लाक्षणिक उक्तियों व शब्द के मार्जन के क्षेत्र में अधिक साधना की है। निराला ने समास पद्धति पर चलने वाली गुम्फित पद-वल्लरी-विधान में अपनी शक्ति की आजमाइश की है। दोनों कवि अपने अपनी दिशा मे पूर्ण सफल हुए हैं, 'प्रसाद' में पंत से कुछ ही कम लाक्षणिकता मिल जाती है पर निराला ने शब्द से निकलने वाली ध्वनियों को अधिक पहचाना है, पदावली की बंदिश में अर्थ के निर्वाह का ध्यान ही नहीं रह जाता जैसा कि 'गीतिका' के गीतों में प्रायः मिलता है परन्तु राम की शक्ति पूजा, यमुना के प्रति, संध्या सुन्दरी आदि के पद-विधान में सशक्त, समास-युक्त और दीघ होने पर भी अर्थ निर्वाह पूर्णरूप से मिलता है।

मौलिकता की दृष्टि से 'निराला' ने बँगला से संगीत व शब्द विधान लिया है किन्तु यह प्रेरणा मात्र है उन्होंने हिन्दी में जो संगीत व शब्द साधना की है, वह उनकी अपनी है, आज तक कोई कवि उनका अनुकरण नही कर सका।

निराला भाव के सौंदर्य पर अधिक ध्यान देते हैं, पद मैत्री के प्रति पूर्ण आग्रह होने पर भी उनमें असम्बद्धता उतनी नही मिलती जितनी पत मे मिलती है, ऐसा उनका अपना मत है किन्तु 'निराला' मे दुरूहता 'पंत' से अधिक है। दुरूहता के सम्बन्ध मे निराला अपनी असमर्थता स्वीकार न कर पाठक की मूर्खता पर आघात करने लगते है—

पंत मे असम्बद्धता—

दीप के बचे विकास
अनिलमा लोक लोक मे,
हर्ष में और शोक मे,
कहाँ नहीं है, स्नेह, साँस सा सबके उरमे ?

× × × ×

है यह वैदिक वाद
विश्व का सुख दुख मय उन्माद
एकता मय है इसका नाद—

× × × ×

चढ़ाता भी है तो गुण से
डोर कर में है, मन आकाश
पटकता भी है तो गुण से
खींचने को चकई सा पास

यहाँ प्रथम पंक्ति ही अस्पष्ट है, फिर 'स्नेह।वैदिक-वाद' से उसका सम्बन्ध अत्यन्त दूर का है, अन्तिम पद्य खण्ड चढ़ाता भी है तो गुण से. आदि का भी अर्थ खींच-तान कर करना पड़ता है। महात्माजी के प्रति, चाँदनी, नित्य जग आदि कविताओं में भी यह दोष बराबर मिलता है। इन कविताओं में यौक्तिक-व्यवस्था की अवहेलना यत्र तत्र अवश्य मिलती है, कवि के मस्तिष्क में जो विचार श्रृंखला चल रही है उसके सम्बन्ध निर्वाह की चिन्ता छोड़ कवि दूसरी विचार-वल्लरी पर कूद जाता है फलतः विश्रृंखल

विचारधारा छायावादियों में प्रायः मिल जाती है। यह दोष किसी सीमा तक कामायिनी* में भी मिलता है, असम्बद्धता का यह दोष निराला में भी मिलता है, घनीभूत पदावली के कारण वहाँ दुरूहता के वातावरण में भाव की टोह लगाना दुष्कर हो जाता है यथा—

"कौन तम के पार र कह" गीत में

एक अन्य गीत देखिये—

आओ मधुर-सरण मानसि, मन।
नील वसन शतद्र -तन उर्मिल
किरण चुम्बि अम्बुज रेखिल
अन्तातल मधुगंध अनामिल
उर उर नव नव रागजागरण

ऐसे पदों में दार्शनिक दुरूहता उतनी नहीं है जितनी पद-सहिति-प्रियता के कारण उत्पन्न दुरूहता है। "केशव कहि न जाउ का कहिये" का अर्थ समझ में आ सकता है परन्तु 'निराला' के पदों का भाव अस्पष्ट ही रहता है, सुबोधता और सरलता छाया-वादी कला में जहाँ है वहाँ वह अन्यतम है।

निराला में कहीं-कहीं "चित्रण की बारीकी" के कारण भी अस्पष्टता आती परन्तु यह दोष महादेवी में सबसे अधिक पाया जाता है। निराला में गहन गम्भीर-शब्द सौष्ठव इतना अधिक हो जाता है कि भाव तक पहुँचने का साहस ही नहीं होता जिन गीतों में ऐसा नहीं है वे गीत अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं।

निराला ने अपनी कला का दूसरा गुण शक्ति व पौरुष बत-लाया है। पंत 'रंगों' का कवि है, स्वर्ण - प्रियता वहाँ अधिक है, निराला को 'काला रंग' अधिक प्रिय है, कल्पनाओं के इन्द्रधनुषी

* देखिये श्रद्धा व काम सर्ग के दार्शनिक विचार सम्बन्धी पद्य।

रूप पंत अधिक खड़े करते हैं, निराला 'भावना' का सूत्र नहीं छोड़ते, उनकी कवितायें "चित्रण" से प्रारम्भ होकर संवेदना में डूबती उतराती हुई समाप्त होती है। कल्पनाओं की दृष्टि के लिये पंत जी, निराला जी के अनुसार अपने पूर्व कवियों पर अधिक आधारित रहते हैं जबकि निराला दूसरे चित्रों पर आधारित नहीं रहते, किंतु पंतजी ने नौकाविहार, चाँदनी, एकतारा, छाया आदि में जो कल्पनायें प्रस्तुत की हैं उनमें आधार किसी का भी हो सकता है, तुलसी के 'मानस' के पीछे अनेक आधार हैं, परन्तु उनमें अधिकाँश पंत की अपनी हैं, कल्पना का कार्य निराधार हो भी नहीं सकता, किसी कवि के अप्रस्तुत विधान को पढ़कर ही मन में अनेक मिलते-जुलते चित्र आने लगते हैं, सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति सहायता करने लगती है, अतः यह ठीक है कि पंत की "भावी पत्नी के प्रति" पर रवीन्द्र की उर्वशी का प्रभाव है परन्तु वहाँ कोरा अनुकरण नहीं है।

'निराला' शक्ति व ओज का कवि है परन्तु उसमें पंत जैसी मार्दव, मसृणता व कोमलता का अभाव है। किंतु इसके विपरीत 'निराला' ने 'पंत पर यह दोषारोपण किया है कि पंत में Female graces अधिक पाये जाते हैं, हम इस सम्बन्ध में अन्यत्र विचार करेंगे, यहाँ इतना ही पर्याप्त है कि यदि कोमलता स्त्रैणता है तो वाल्मीकि से लेकर तुलसीदास तक और तुलसी से निराला तक अनेक कवि इस दोष से नहीं बच सकते, यदि पंत कहते हैं "धरा है मैंने सिर पर देवि, तुम्हारा यह स्वर्गिक श्रृंगार" तो निराला भी अपने को प्रिया मानकर वर्णन करते हैं 'निराला' ने स्वयं स्वीकार किया है कि उनमें परिष्कार उतना नहीं, जितना पंत में है, माधुर्य के क्षेत्र में निराला को उतनी सफलता नहीं मिली जितनी पंत को। निराला सुप्त पदावली के आचार्य अवश्य हैं उनमें रणोद्घोषक तूर्यनाद अवश्य मिलता है जो अत्यन्त ओजस्वी और पुरुषार्थमय है परन्तु उनमें "कहाँ-कहाँ से बाल-विहंगिन सीखा तूने यह गाना"

जैसा माधुर्य कम है, दोनों का अपनी-अपनी सीमा में मूल्य है, दोनों आदरणीय है, कवि कर्म न तो लौहकार के घनों का मात्र निर्घोष है न केवल नूपुरों की झनकार, जीवन की पूर्णता के लिये, शुद्ध व्यवहारिक दृष्टि से, दोनों की आवश्यकता है। प्रहार और विनाश के लिये यदि एक की आवश्यकता है तो मानवीय सद्भावों की स्फुरणा के लिये कोमल भावों की सृष्टि भी आवश्यक है अतः मानवता वाद की दृष्टि से दोनों का मूल्य है।

वर्ग-चेतना को जगाने वाली साहित्य-सृष्टि में कोमलभाव-स्फुरण का क्या मूल्य होगा इसका उत्तर हम अन्यत्र देंगे। पंत की कोमलता निरपेक्ष्य नहीं है संवेदन हीन हृदय केवल चोट को पसन्द करता है, वह यह भूल जाता है मानवीय मूल्यों को बढ़ाने वाला कोई भी साहित्य प्रतिक्रियावादी नहीं हो सकता।

इसी प्रसंग में निराला ने लिखा है कि पंतजी की कला में स्वरों की प्रधानता है। स्वर कोमल होते है, अतः पंत को कवित्त छन्द नहीं रुचता। कवित्त स्वर-प्रधान नहीं, व्यंजन प्रधान है, निराला ने लिखा है "वह कविता की स्त्री सुकुमारता नहीं, कवित्व का पुरुष-गर्व है"। यह पुरुष-गर्व कवित्त में अधिक मिलता है, कवित्त हमारा जातीय छन्द है, वस्तु स्थिति यह है कि इस सम्बन्ध में दुराग्रह दोनों ओर है, यदि एक बार पंत ने सवैया या कवित्त की निंदा कर दी तो निराला उसकी रक्षा में इतने अवश्य बढ़ जायेंगे जहाँ व्यक्तिगत आक्षेप प्रारम्भ हो जाते हैं। पंत ने लिखा है—"सवैया व कवित्त छन्द भी मुझे हिन्दी कविता के लिये उपयुक्त नहीं जान पडते" उनके अनुसार सवैये में एक स्वरता Monotony आ जाती है और कवित्त में स्वतंत्रता तथा विचित्रता के लिए स्थान नहीं रह जाता। "कवित्त छन्द, मुझे ऐसा जान पड़ता है, हिन्दी का औरस जात नहीं, पोष्यपुत्र है, न जाने वह हिंदी में कैसे और कहाँ से आ गया"*

---

* पल्लव की भूमिका पृष्ठ २५

कवित्त के विरुद्ध वस्तुतः यह प्रतिक्रया रीतिकालीन कवि और कला की प्रतिक्रिया के प्रसंग में है, पुरानी परिपाटियों के कवियों के विरुद्ध "पल्लव की भूमिका' में पंतजी ने जो विद्रोह किया है उसकी लपेट मे कुछ असंगत बाते कह जाना अस्वाभाविक नहीं है।

निराला ने मुक्त छन्द के विषय में लिखते हुए कहा है कि मुक्त-छन्द की सफलता कवित्त-पद्धति पर ही आश्रित है। गुप्त जी भी ऐसा ही विश्वास रखते हैं, पंत जी मे, मुक्त छन्द मिलता ही नहीं, विषम-मात्रिक छंद अवश्य उन्होंने लिखे है, परन्तु मुक्त छंद जिसमें किसी प्रकार का कोई नियम न हो, निराला ने ही लिखे हैं अतः इस क्षेत्र में निराला का पूर्ण अधिकार है। मुक्त छन्द में संगति का आनंद नहीं मिल सकता उसमें 'पढ़ने की कला' (Art of reading) का आनन्द मिलता है। निराला को मुक्त छंद मे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

पंत को विषम-मात्रिक छन्दों में सफलता अधिक मिली यथा—

पटक रवि को बलि सा पाताल
एक ही वामन पग में—
लपकता है तमिस्र तत्काल,
धुये का वश्व-विशाल

यहाँ अन्तिम पंक्ति में मात्रायें कम हैं जो पद्य की एकस्वरता को भंग करने के लिए रक्खी गई हैं। किंतु निराला में प्रवाह को छोड़ कर जो 'आलाप' पर निर्भर रहता है, ताल या तुक पर नहीं; अन्य कोई बन्धन नहीं है—

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी—
स्नेह स्वप्न-मग्न—अमल कोमल तनु तरुणी
जुही की कली—

मुक्त छंद की अबाध धारा निराला की कला को एक अलग व्यक्तित्व अवश्य दे देती है। यद्यपि गीतिका, परिमल में कवि ने तुकांत-प्रियता की भी अवहेलना नहीं की है, वहां उतना आर्द्र तो नहीं आ पाया जितना पंत व महादेवी में है परन्तु संगीत के क्षेत्र में कवि ने एक नवीन वस्तु अवश्य प्रस्तुत की है। मुक्त छन्द में कला की एक मूर्ति सामने आती है, स्वर की लड़ी बराबर नहीं मिलती. मुक्तछन्द की साधना द्वारा कवि का विश्वास है कि वह उस भारतीय परम्परा की रक्षा कर सका है जो वेद से आरम्भ हुई (वहां भी मुक्त छन्द ही है) और सारे संस्कृत वाङ-मय में परम्परित रही (कम से कम तुकान्तता का आदर उतना नहीं रहा भले ही वर्ण वृत्तों का विधान रहा हो)।

निराला की कला प्रगल्भ नहीं है, शक्ति पूर्ण अवश्य है, योरोपीय साहित्य में यह वाग्विदग्धता अधिक मिलती है। यह प्रगल्भता पंत, बच्चन आदि कवियों में अधिक पाई जाती है. (प्रसाद में भी)। निराला में ऊर्ध्व गामिनी वृत्तियों पर अधिक ध्यान रहता है, बौद्धिकता के समावेश द्वारा उनकी कला भारावनत अवश्य हुई है, पर साथ ही अन्य कवियों की तरह उसमें हल्कापन नहीं है. निराला की कविता 'मूडस' की कविता नहीं है जैसा कि डा० देवराज ने प्रमाणित करना चाहा है।+

निराला की कला में एक और विशेषता यह है उसमें भारतीयता की रक्षा सबसे अधिक हुई है, क्या भारतीय है, क्या अभारतीय यह कठिन प्रश्न है परन्तु कला के भाव पक्ष की दृष्टि से इस बात पर विचार हो सकता है, निराला जी ने लिखा है कि पंत में नारी के दिव्य-भाव की रक्षा नहीं हो पाई कई स्थानों पर उनमें साधारण भाव आगये हैं; जबकि इसके विपरीत निराला में घोर अश्लील स्थलों में एक दार्शनिक तटस्थता बराबर मिलती है।

+ छायावाद का पतन—डा० देवराज

किन्तु यहाँ हमें एक बात न भूलनी चाहिये, पन्त नारी की कमनीयता के गायक हैं, कहीं-कहीं उत्तेजनात्मक चित्र अवश्य आगये हैं परन्तु कुल मिलाकर कवि नारी के लावण्य का प्रशंसक रहा है, उसका दैवी करण भी उसने किया ही है, रीति-काल की तरह उसने नारी के लज्जा-वस्त्र को दुःशासन की तरह खींचना अपना धर्म नहीं समझा।

"आँसू से" कविता के निम्न चित्र को निराला ने एक वेश्या का चित्र बताकर घृणा ' जिन की है—

खैंच ऐंचला भ्रू सुर-चाप
शैल की सुधि यों बारम्बार
हिला हरियाली का सुदुकूल
झुला झरनों का झलमल हार
जलद पट से दिखला मुख चन्द्
पलक पल-पल चपला के भार
भग्न उर पर भूधर सा हाय!
सुमुखि, धर देती है साकार

यह ठीक है कि यहाँ किसी दिव्य भाव की रक्षा की ओर कवि का ध्यान नहीं है परन्तु यह वेश्या का चित्र है, ऐसा कहना अन्याय है "एक कर कज एक कर दे लि किवार पर" के चित्र द्वारा पद्माकर ने वेश्या का जो चित्र दिया है उसमें कितनी अधिक उदात्तता यहाँ द्रष्टव्य है, यह सहज ही अनुमेय है। रूपों की सृष्टि में पन्त, निराला से निश्चय आगे है। स्वयं निराला को मानना पड़ा है कि यहाँ मार्जन खूब है. द्रष्टव्य से पद्य को भ्रम कर दिया गया ।

भारतीय दृष्टि से अपनी कमजोरियों का उल्लेख करना अनुचित है। पन्त, बच्चन, आदि कवियों में यह प्रवृत्ति निराला से अधिक पाई जाती है, निराला अपनी दुर्बलता का उल्लेख न कर मानवीय दुर्बलता—शृङ्गार की वृत्ति को भी दिव्य शृंगार में बद-

लने का प्रयत्न करते रहे हैं, 'नारी' को कवि अव्यक्त चेतना के रूप में लता रहा है—

"साहित्य के पृष्ठ मे एक विकच नारी की मूर्ति, नभ के अनन्त प्रदेश में मृणाल दण्ड की तरह, अपने शत शत दलों को संकुचित संपुटित लेकर बाहर आलोक के देश में, अपनी परिपूर्णता के साथ खुल पड़ती है, जड़ों में प्राण रूपायित हो जाते है, अरूप में भुवन-मोहिनी ज्योतिः स्वरूपा नारी।"

निराला की कला का यह आन्तरिक पक्ष है, किस प्रकार द्विवेदी युग के इतिवृत्त-प्रधान काव्य की प्रतिक्रिया में उक्त सूक्ष्म चेतना से स्पंदित काव्य, श्री और शृंगार लेकर खड़ा हुआ यह कवि ने पूर्णतया स्पष्ट किया है किन्तु छायावाद को मात्र शैली मानने वाले अपनी "दादुर-धुन" में लीन हैं।

कवि ने कला की इस भाव-सत्ता की उपयोगिता भी बताई है—

'साहित्य मे इस अरूप (मूल चेतन-शक्ति) की स्वतन्त्र सत्ता को नारियों में स्थिर रूप दिया गया है, कलाविदों ने वहीं पुरुष, प्रकृति का सौहार्द, निरन्तर योग देखा। आकर्षण दोनों के संभोग विलास में ही है, वह और अच्छा जब एक ही आधार में हो, यह बीज मन्त्र है जिसे जपकर उन्होंने नारियों के अगणित अपार रूपों में सिद्धि प्राप्त की, ये सिद्ध रूप परवर्ती काल के साहित्य की आत्मा मे प्राणों का प्रवाह भरते गये हैं, बाह्य महाशून्य की चेतन-स्पर्श से जगी हुई असख्य रूपसी अप्सराओं की तरह ये साहित्य की पृथ्वी पर, प्रकृति की श्री, शृंगारमयी रूप के उषा लोक मे अपलक ताकती हुई लावण्य की ज्योति से पुष्ट यौवन युवती कुमारिकाये हृदय शून्य के चेतन-स्पर्श से जगकर खड़ी हुई है जो मूर्त रूप राशि ही की तरह अमर हैं, जिनसे बाह्य स्वतन्त्रता की तरह अपार आन्तरिक स्वतन्त्रता मिलती है और बाह्य के साथ अन्तर के साम्य का निरुपद्रव संदेश।❀

❀ प्रबन्ध-पद्य।

कला की मूल प्रेरणा का स्रोत कहाँ है और वह प्रेरणा का उपादान किस रूप में कवि की कला में अभिव्यक्त हुआ है, यह उक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है। इस चेतना के स्पर्श को भूलकर जो कि छायावादियों में एक विशेष दार्शनिक विचार-धारा से आई है, छायावाद के विरोधी न जाने उसे क्या क्या बना देते हैं। अतः वे 'छायावादी कला का क्या रूप' है, 'उसकी कहाँ तक व्यापकता है' आदि प्रश्नों पर विचार न कर, मनमानी व्याख्याओं के धुयें से सारे चित्र को धूमिल कर डालते हैं। यही चेतना की प्रेरणा एक ओर तो मध्यकालीन विकृतियों के विरुद्ध कविता का आधार बनती है और यही आगे चलकर निराली मानसिक स्थितियों तथा भौतिक परिस्थितियों की विषमता से उद्भूत निराशा व पलायन के साथ समझौता करती है; छायावादी कला के यही प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी रूप हैं।

निराला की कला में रूप और अरूप की चर्चा हम करते आ रहे हैं, किन्तु उसमें 'अरूप' का विधान रूप से कुछ अधिक है, अरूप के सम्बन्ध में कवि के चिंतन ने उसके काव्य में एक गहन बौद्धिकता का वातावरण उपस्थित कर दिया है, अच्छा यही हुआ कि कवि प्रवचन-पद्धति से दूर रहा, निराला उपदेश को कला की दुर्बलता मानते हैं यह हम कह आये हैं, अतः रूप की, 'अरूप' में समाप्ति अवश्य होती है परन्तु "रूप और रस" के समावेश द्वारा उसकी कला आकर्षक बन सकी है, प्रेयसी, जुही की कली, सन्ध्या-सुन्दरी, यमुना के प्रति, में यह प्रवृत्ति हम स्पष्ट कर चुके हैं।

<u>गीति-कला—</u>

निराला जी ने गीतों के सम्बन्ध में भी "अधोमिन्न कर उलटा जाय" का सिद्धान्त घटित किया है, गीत का गीति में अन्तर होता है, गीत तो गाना के सामान्य भावोच्छ्वासों की छन्दों में अभिव्यक्त वाणी का नाम है, सूक्ष्म के आरम्भ में ही, भाव की

प्रेषणीयता के लिये गीत छन्दोबद्ध होते आरहे हैं, किन्तु कहीं उनमें स्वर के आरोह व अवरोह पर अधिक ध्यान रहा है, कभी ताल का। जो हो गीत के लिये छन्द बद्धता प्रायः आवश्यक सी मान ली गई है क्योंकि इससे स्वर-सामंजस्य और श्रुति मधुरता आ जाती है। गीति दूसरी वस्तु है, गीति अभिव्यक्त वाणी का पद रूप है जिसमें कवि के निजी व्यक्तित्व का प्रकाशन नितान्त आवश्यक है, जिसमें उसके 'स्व' की परिव्याप्ति अनिवार्य रूप में रहती है। बालकृष्ण के पद गीत हैं, और छायावादी कवियों के गीत 'गीतियाँ' हैं। मीरा के पदों, सूर के विनय के पदों, तुलसी की विनय-पत्रिका आदि में व्यक्तित्व की अभिव्यञ्जना किसी सीमा तक मिलती ही है, 'मीरा' में सबसे अधिक किन्तु छायावादी कवियों महादेवी, पन्त, बच्चन आदि में तो कवि सर्वत्र अपने निजत्व को उलट पुलट कर देखा करता है, "युग और परिस्थितियों" में हम इसका मौलिक कारण दिखा आये हैं अतः महादेवी, बच्चन के गीत, गीति कहलाते हैं वैसे सामान्य रूप से गीतों में इन गीतियों का भी समावेश कर लिया करते हैं। Song और Lyrics में जो अन्तर है वही गीत और 'गीति' में। अस्तु—

निराला की गीतियों में सबसे बड़ा मौलिक प्रयोग 'मुक्त छन्द' व स्वर के आरोह, अवरोह का मिलता है, संगीत की दृष्टि से कवि ने इस क्षेत्र में 'बंगला' की उस पद्धति का अनुकरण किया है जिसका आविष्कार 'रवीन्द्र' ने योरोपीय संगीत के आधार पर किया था। कवि ने ऐसे गीतों को स्वयं दो भागों में बाँट दिया है (१) वे कवितायें जो मुक्त छन्द में हैं, इनके विषय में कवि कहता है "मैंने पढ़ने व गाने दोनों के मुक्त-रूप निर्मित किये हैं, पहला वर्ण-वृत्त में है और दूसरा मात्रा-वृत्त में, इनसे इतर मुक्त छन्द जा ही नहीं सकता, मेरा गाना भी कविता का ही गाना है गीत तो मैंने अलग लिखे हैं जो छन्दोबद्ध हैं और गाने के लिए लिखे गये हैं। (२) 'गीतिका' और 'अर्चना' में ऐसे ही गीत हैं।

गीतिका के गीत—

'गीतिका' के गीतों के सम्बन्ध में 'प्रसाद' ने लिखा है वर्णों का विकास भास्वर है, उसका दार्शनिक पक्ष गम्भीर और व्यजना मूर्तिमती है। आलम्बन के प्रतीक उन्हीं के लिये अस्पष्ट होंगे जिन्होंने यह नहीं समझा है, कि रहस्यमयी अनुभूति, युग के अनुसार अपने लिये विभिन्न आधार चुना करती है, केवल कोमलता ही कवित्व का मापदण्ड नहीं है, निराला जी ने तृष्णा, और ओज, सौन्दर्य भावना और कोमल कल्पना का जो माधुर्यमय संकलन किया है, वह उनकी कविता में शक्ति साधना का उज्ज्वल परिचायक है "*

गीतिका गीति साहित्य का एक नवीन प्रयोग है, इसमें भाव और संगीत की धारायें एक नवीन पद्धति पर चलती हैं। संगीत के क्षेत्र में निराला जी ने इस पुस्तक द्वारा क्रान्ति करने का प्रयत्न किया है, किन्तु उसकी पद्धति का पथ नूतन होते हुए भी आगे अनुकरण का विषय नहीं बन पाया, क्योंकि भारतीय संगीत शास्त्र व योरोपीय संगीत कला का किसी सीमा तक समन्वय करने का प्रयत्न होते हुए भी, परम्परा-प्रिय संगीतज्ञों में उसका पथ आगे प्रशस्त नहीं हो पाया, सम्भवतः इसका कारण उसका योरोपीय आधार है इसीलिये कवि ने स्वयं अनुभव किया है कि गवैयों को इनके गाने में मस्त परेशानी अवश्य होगी और हुई भी।

निराला ने संगीत की प्राचीन परम्परा का उल्लेख करते हुए बताया है कि सम्पूर्ण शब्दों का मूल कारण ध्वनिमय ओंकार है, संगीत की आत्मा है आनन्द और वह भी लोकोत्तर आनन्द, जब निर्विशेष आनन्द की भूमि को त्याग कर संगीत सविशेष लौकिक भूमि पर आया है तभी उसमें बन्धनों की सृष्टि अधिक हुई है और परिणाम स्वरूप उसका पतन होता गया है।

सामवेद का संगीत मुक्त और अलौकिक आनन्द पद्धति को लेकर चला है, 'गायत्री' इसका उदाहरण है, गायत्री का संगीत

* गीतिका के दो शब्द—प्रसाद जी द्वारा लिखित।

पूर्णतया मुक्त है, भाव और भाषा की पवित्र झंकार से पूर्ण। स्वर, भाव व छन्द तीनों की आदर्श समष्टि ही 'गायत्री' है। यह साम-वेदी मुक्त संगीत आगे चलकर छन्द, ताल और वाद्य में बधता गया जैसे वेदों की अनेक रूपिणी मुक्त भाषा व्याख्या के नियमों से अनु-शासित होकर 'संस्कृत' बन गई। आगे अनेक राग रागनियों का आविष्कार होता गया और स्वतन्त्र स्वर आलाप पर आधारित संगीत बारीकियों में बँधता गया, अनेक गतियाँ और तानें बनती गईं, यह 'संस्कृत' काल में हुआ।

मुस्लिम शासन-काल में जिन बारीकियों का आविष्कार हुआ उन पर भी प्राचीन संगीत-शास्त्र की मुहर लगादी गई, अनेक स्वर निर्मित होते गये, परन्तु "अधिक अस्त्र-शस्त्र बाँधने से शस्त्र संचालन की असली शक्ति जिस तरह काम नही करती—सिपाही बोझ से दब जाता है, दूसरे पर विजय करने की जगह उसी के प्राण संकट में पड़ जाते हैं, वैसे ही तानो के भार से संगीत के क्षीण वृन्त पर खुला पुष्प शरीर झुकता गया, क्रमशः ऋषिकंठ से गायक-गायिका कण्ठ में आकर, विश्व देवता को वन्दित करने की जगह राजा को आनंदित करता हुआ गिर गया, लोक से उसका सहयोग अधिक, लोकोत्तरता से कम पड़ता गया"। इस प्रकार नियम-बद्ध संगीत-कला अगणित विधि-विधानों के झंखाड़ में तड़पने लगी।

कवि के अनुसार हिन्दी में कबीर और मीरा के गीत महत्वपूर्ण है, सूर व तुलसी के गीत साहित्यिक महत्व अधिक रखते हैं, किंतु इस सब गीत-साहित्य में सामान्य दोष हैं—

१—कबीर में निर्गुण ब्रह्म की उपासना, आधुनिक रुचि के अनुकूल हैं परन्तु उनकी भाषा अमार्जित है अतः उनके गीत आज आदर्श नहीं हो सकते।

२—सूर व तुलसी में भाषा संस्कार तो है परन्तु निराला के अनुसार सगुण-उपासना आज की रुचि के अनुकूल नहीं है।

३—खड़ी बोली में जिन भिन्न-भिन्न भावनाओं का अभ्युदय हो रहा है उनका प्राचीन गीतों में अभाव है।

तो गीतिका के कवि ने उक्त तीनों दोषों को दूर करने का प्रयत्न किया है। १—इसके गीतों की भाषा परिमार्जित, प्रौढ़, संस्कृत पदावली पर आधारित और आधुनिक रुचि के अनुकूल है (केवल गीतिका के लिखने के समय थी अब नहीं)।

२—इसमे वैष्णव भावना अभिव्यक्त अवश्य हुई, ब्रह्म को 'माता' प्रिय आदि के रूप में देखा गया है परन्तु मुख्य भावना ब्रह्म को प्रियतमा या पति मानकर आत्म-समर्पण करने की है, ब्रह्म को सगुण बनाकर उनकी लीलाओं के वर्णन के स्थान पर, उसकी मिलन अवस्था सम्बन्धी अनुभूतियों और स्थितियों का वर्णन किया गया है।

३—खड़ी बोली में विकसित अन्य भावनाओं का वर्णनः—

ब्रजभाषा अधिक तर हरि लीला-गान ही करती रही, अवधी में खड़ी बोली का विकास जागरण के युग में हुआ अतः उसमें ऐसी भावनाओं का विकास आवश्यक था जिनका प्रयोग ब्रजभाषा में कम हुआ। जब सुधार व स्वतंत्रता के युग में खड़ी बोली के छाया-वादी कवियों को आत्मा परमात्मा की रट लगाते हुये देखते हैं, तो कहते हैं कि ये लोग स्वतंत्रता के संघर्ष से कट कर अलग पलायन, निराशा और पराजय के गीत गाने लगे, सुख स्वप्नों के मनोहर नीड़ कल्पना गगन में बसाने लगे, किसी सीमा तक यह ठीक भी है क्योंकि एक रूप यह भी है, कला में अभिव्यक्त भावना शत शत मुखी होती है, जैसे एक ही जल की अनेक तरंगें होती हैं उसी प्रकार एक भावना के अनेक रूप होते हैं छायावादी युग में ब्रह्म व आत्मा को लेकर जिन अनुभूतियों का दर्शन चला प्रकृति में चेतना के दर्शन का अभ्यास जो पड़ा, वह खड़ी बोली में विकसित उसकी अपनी भावना थी, ब्रजभाषा में यह नहीं हुआ, इसमें युगा-नुकूलता व नवीनता यह थी कि दलित राष्ट्र के अहं का उद्धार

'आत्मवाद' ही कर सकता था, लोक में हारने पर भी 'ब्रह्मवाद' शरण देता है, तथा जीतने के प्रयत्न करने में भी वह सहायता कर सकता है, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज और मुख्यतः रामकृष्ण मिशन में जिस अध्यात्मवाद का प्रचार हुआ वह अधोगति को ले जाने वाला न था, यह हम कई बार स्पष्ट कर चुके हैं वह अपनी सीमाओं में रहता हुआ भी अत्यन्त क्रांतिकारी था, क्योंकि उसने मध्यवर्ग में निर्भयता, उत्साह, अतीत गौरव के प्रसार व उसकी पुनः प्राप्ति का प्रयत्न, आत्मा की मुक्ति के साथ सारे बंधनों के बहिष्कार की भावना आरही थी, 'गीतिका' में उसी "आत्म स्पर्श" का गेय पदों में वर्णन किया गया है, इसलिए निराला का यह कहना है कि खड़ी बोली की विकसित भावनाओं का प्रतिनिधित्व एक नए प्रकार की सगठित पदावली ही कर सकती है प्राचीन घिसी पिटी पद-रचना नही कर सकती, 'गीतिका' में ऐसी ही समर्थ, प्रौढ़, पदावली का प्रयोग किया गया है जिसमें देश की नूतन चेतना को अत्यन्त ऊर्ध्वगामी बनाने का प्रयत्न है और साथ ही वह वहीं ठहर जाने के लिए नहीं है क्योंकि कवि पुकार रहा है—

जीवन की तरी खोल दे रे—जग की उत्ताल तरगों पर,
क्यों अकर्मण्य सोचता बैठ, गिनता समर्थ हो व्यर्थ लहर।
तू पूर्ण और हो पूर्ण सफल
नव-नवोर्मियों के पार उतर

४—रहस्यानुभूति का लौकिक-आधार :—

गीतिका में ब्रह्म की चरम-अनुभूति का वर्णन अवश्य अधिक है, एकांतिकता भी कम नहीं है तथापि "प्रिया व प्रिय" की संबंध भावना उन अलौकिक अनुभूतियों को एक लौकिक दृढ़ आधार दे देती है, रहस्यवाद की सफलता प्रत्येक युग में उसके लौकिक रूपक रहे हैं अतः अध्येता घोर रहस्यवादी रचनाओं में जब लौकिक-प्रेम की अभिव्यक्ति पाता है तो वह तन्मय हो जाता है, आत्मा-परमात्मा का 'गुप्त वाग्विलास' हमारे लिये अनुपयुक्त हानिकर

और व्यर्थ होगया होता यदि उसकी अभिव्यक्ति सरस, प्रचलित लोक पद्धति पर न होती अतः जब मीरा पुकारती है—

हे री मै तो, दरद दिवाणी, मै तो दरद न जाने कोय

या जब कबीर कहता है—

वाल्हा आवो हमारे गेह रे, तुम बिन दुखिया देह रे

या जब निराला पुकारता है—

मेरे प्राणों मे आओ
शत, शत शिथिल भावनाओ के—
उर के तार सजा जाओ
गाने दो प्रिय, मुझे भूलका
अपनापन अपार जग सुंदर
खुली करुण उर की सीपी पर,
स्वाती-जल नित बरसाओ।
मेरे प्राणों में आओ।

तो ये दिव्य अनुभूतियाँ जहाँ साधकों को एक उच्च मानसिक धरातल पर ले जाने में सहायक होती है वहाँ सामान्य पाठक की प्रेम-भावनाओं को भी स्पर्श करने में भी सफल होती है,वस्तुतः इस प्रकार के गीतों में साधारण प्रेम के समान ही उसकी आशा, अभिलाषायें, और बिरह-मिलन-अनुभूतियाँ चित्रित रहती है किन्तु उनमें लौकिक वासना का कीट-दास बनाने की प्रवृत्ति न होकर एक उदात्त अर्थ की ओर ले जाने वाली प्रेरणाये होती है, वे इसीलिये सामान्य से कुछ ऊपर उठी रहती है परन्तु 'इलियट' के काव्य की तरह पहुँच के बाहर एक चमत्कार मात्र के रूप में परिवर्तित नहीं हो जातीं अतः 'विद्यापति' के ललित श्रृंगारिक पदों को सुनकर "चैतन्य" जसे साधक मूर्च्छित भी होते हुए भी सुने जाते हैं जबकि जनता उनमें अपने मानवीय प्रेम का सफल अभिव्यंजना देखकर

उन्हें कण्ठ हार बना लेती है। रहस्यवादी की असफलता बस वहीं आती है जब वह अपनी अनुभूति को कम से कम इतना लौकिक और सामान्य नहीं बना पाता जो कि सामान्य मानव भी उसमें अपने प्रेम का प्रतिबिम्ब देखने लग जाये। इसीलिये मीरा, सब से अधिक सफल कवियित्री है, महादेवी में रचना चातुर्य, अधिक हो गया है तथापि मानवीय प्रेम-विरह की अनुभूति वहाँ है और इसीलिये वह पाठक को मुग्ध किये बिना नहीं रहतीं अपने "चिरसुन्दरवाद" या "एकांगी पीड़ावाद" से नहीं, उन्हीं मानवीय भावनाओं के कारण पंत व प्रसाद में वहीं सफलता दृष्टिगोचर होती है जहाँ उनके गीत लौकिक आधार को पूर्णरूप से ओझल नहीं कर देते, 'आँसू' क्यों प्रिय है? ग्रन्थि और 'पल्लव' के 'आँसू' और 'उच्छ्वास' क्यों आकर्षक है? क्योंकि उनमें "मनुष्य" कभी अपनी प्रियतमा की स्मृति में आँसू बहाता है, कभी मिलन-सुख से हर्षित होता है, जहाँ पंत, प्रसाद, महादेवी इस मानवीय आधार को भूल कर आनन्द की उस भूमि में विचरते हैं जहाँ केवल सफेद पोशों निठल्ले, अवकाश प्राप्त एकांगी 'सुरभियों' को प्रवेश प्राप्त है, उसे जनता छोड़ कर हट जाती है। निराला के गीतों में सबसे बड़ा दोष सहजता का अभाव है।

उनकी गीतिकला का स्वर मंद्र-गम्भीर अवश्य है, उसमें दार्शनिकता का आभास भी अत्यधिक रहता है, एवं बौद्धिक सघनता, प्रौढ़ पदावली के साथ वहाँ ओत-प्रोत है, किन्तु सहजता का अभाव होने के कारण उनके गीत जनता के कण्ठहार नहीं हो पाते, अस्वस्थ दर्शन और व्यक्तिगत, अनुत्तरदायी विचारधारा के होते हुए भी 'बच्चन' के गीत इसी सहजता के कारण इतने 'प्रिय' हो सके। निराला के गीतों का यह पहलू समझ लेने पर उनका दूसरा चित्र भी स्पष्ट हो जाता है, कवि ने जहाँ घनीभूत भावनाओं के स्थान पर सहज प्रवाह युक्त गीतों की सृष्टि की है वहाँ गीतिकार पूर्ण सफल हुआ है, यथा—

जीवन की तरी खोल दे रे, जग की उत्ताल तरंगों पर

या

पास ही रे हीरे की खान, खोजता कहाँ उसे नादान

'अरूप की उपासना' जहाँ जीवन की 'वासना' के साथ चलती है वहाँ कोई रहस्यवादी असफल नहीं हो सकता, निराला भी नहीं। कला के अत्यन्त उच्चस्तर पर लिखे गये गीतिका के गीतों में आत्मा का पूर्ण प्रकाश व्याप्त है जो जीवन को ऊर्ध्ववर्ती बनाता है, निम्नगामी नहीं अतः उसका भी अपना एक मूल्य है, वस्तुतः गीतिका में ऐसे ही गीतों की बहुलता है, उनमें उठान, उत्कर्ष और आत्म-स्पर्श तो पूर्ण रूप से मिलता है किन्तु दार्शनिक रूढ़ि-बद्धता के कारण उनका स्वर प्रकाश युक्त होकर भी वह 'तन्मय' कर देने वाली घुलनशीलता नहीं ला सका जो 'मीरा' के गीतों में मिलता है। निराला, कबीर व रवीन्द्र के अधिक निकट है। इस-लिये कवि पदावली व संगीत के क्षेत्र में ही क्रान्ति कर सका है, खड़ी बोली में व्यक्त नूतन भावनाओं को भी व्यक्त कर सका है परन्तु 'गीति' की स्वाभाविकता को खोकर।

अब संगीत को देखिये—कवि के विचारानुसार हमें प्रत्येक क्षेत्र में पाश्चात्य व पूर्व का आदान प्रदान स्वीकार करना चाहिये, अँगरेजी संगीत से आदान-कार्य बँगला में सर्व प्रथम हुआ, अन्य भाषाओं में बाद में। "अँगरेजी संगीत से प्रभावित होने का अर्थ यह नहीं कि उसकी हू बहू नकल की गई, अँगरेजी संगीत की पूरी नकल करने पर उससे भारत के कानों को कभी तृप्ति होगी, यह संदिग्ध है। कारण, भारतीय संगीत की स्वर-मैत्री में जो स्वर प्रतिकूल समझे जाते हैं, वे अँगरेजी संगीत में लगते है, उनसे अँग-रेजी हृदय में ही भाव पैदा होता है। अस्तु, अँगरेजी संगीत के नाम से जो कुछ लिया गया, उसे हम अँगरेजी संगीत का ढंग कह सकते हैं। स्वर मैत्री हिन्दुस्तानी ही रही है। डी० एल० राय और रवीन्द्रनाथ इस ढंग के अपनाने वाले प्रधान साहित्यिक कहे जायँगे

स्वर-मैत्री के विचार से रवीन्द्रनाथ के संगीत का ढग और साफ अँगरेजीपन लिये हुए है, फिर भी ये भिन्न-भिन्न राग रागिनियों में बँधे हैं, सिर्फ अदायगी अँगरेजी है, राग रागिनियो में भी स्वतंत्रता ली गई है।''.... ...कला के सभी अङ्गों में यह कार्य मौलिकता के नाम से होता है, और आधुनिक जनों को ऐसी मौलिकता अच्छी भी लगती है। ....जो साहित्य इसमें जितना पिछड़ा हुआ है, वह उतना ही अधूरा समझा जाता है चूँकि बचपन में और की तरह मैं भी निष्काम था, इसलिये सब प्रकार के सौंदर्यों को देखने और उनसे परिचित होने के सिवा, मेरे अन्दर दूसरी कोई प्रेरणा ही न उठती थी, क्रमशः ये संस्कार बन गये, जिस तरह घर के अहाते में घर के, अवधी, बेसवाड़ी या कन्नौजिया संस्कार तैयार हो रहे थे उसी तरह बाहर-बाहरी संसार के, अन्त में वे मेरे अपने संस्कार बन गये, वे मेरे साहित्य में प्रतिफलित हुए, जिनसे हिन्दी साहित्य और हिन्दू संस्कृति को मेरे साहित्य के समझदारों के कथनानुसार गहरा धक्का पहुंचा।❀

उक्त संस्कारों के अनुसार कवि ने गीतिका में हिन्दी संगीत की शब्दावली व 'गाने के ढंग' में क्रांति प्रस्तुत की है। क्योंकि सूर-मीरा-कबीर आदि की शब्दावली प्राचीन हो चुकी थी और गाने का ढंग भी गतानुगतिक, नियमों के भार से अवनत था अतः कवि ने संस्कृत-निष्ठ पदावली को गेयता की धारा में बहाया जो अधिक भारी हो जाने के कारण बह न सकीं। यह तो रहा पदावली का प्रयोग।

कवि को गायन में "सम पर" आने से बड़ी चिढ़ है, क्योंकि बँधे हुए तालों और तानों में आलाप की स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है। सम पर आना उसे ऐसा लगता है जैसे मजदूर लकड़ी का बोझ फैंक कर निश्चिन्त हो जाता है। उसे लगा कि खड़ी बोली की सम्पूर्ण प्राचीनता जर्जर है। अतः दो कार्य उसने किये—

❀ गीतिका की भूमिका।

(१) खड़ी बोली को अच्छी-अच्छी सौन्दर्य-भावनाओं से युक्त किया (इसका विश्लेषण हम आगे करेंगे) ।

(२) गाने का ढग ताल, सम प्रधान न होकर आलाप प्रधान हो ।

कवि ने मुक्त छन्दों में इस आलाप-प्रधानता की ओर अधिक ध्यान दिया है, यथा 'जुही की कली' मे, यहाँ जहाँ चाहे रुका जा सकता है या जब तक चाहे स्वर बराबर चलता रह सकता है, यह बंधन नहीं है कि इतनी पंक्तियों के पश्चात् गायक को अवश्य रुकना है । न सम की चिंता है न रागिनी के नियमों की, बस मुक्त स्वर का अनवरत प्रवाह चलता है । इस दृष्टि से निराला जैसा क्रान्तिकारी कवि हिन्दी में दूसरा नहीं है ।

गीतिका के गीतों मे आलाप की प्रधानता अवश्य है परन्तु उनमे ताल, और मात्रायें भी निश्चित करदी गई है, 'गायत्री' के मन्त्र के समान गीतिका में मुक्त स्वर सदा ही नहीं चलता रहता, उसकी अपनी गति और सम निश्चित है । मात्राओं, ह्रस्व, दीर्घ तक का विधान कर दिया गया है । संगीत-शास्त्र का अंचल भी नहीं छोड़ा गया है । इसके साथ कवि ने कवित्व की भी अपनी समझ से पूरी रक्षा की है उसने गीतिका की शब्दावली को काव्य से भी मुखर करने का प्रयत्न किया है, भाव प्राचीन होने पर भी प्रकाशन का ढंग नवीन है । गीतिका में कवि का प्रयत्न यह है कि जो संगीत कोमल, मधुर और उच्च भाव तदनुकूल भाषा और प्रकाशन से व्यक्त होता है उसमें सफलता प्राप्त की जाये ।

गीतिका की भूमिका में कवि ने स्वर लिपियाँ दी हैं ताल, मात्रा का पूरा-पूरा उल्लेख है, राग-रागिनी का उल्लेख इसलिये नहीं किया गया कि गीत प्रत्येक राग रागिनी में गाये जा सकते हैं। हम यहाँ कवि के प्रयोग को तथा उपर्युक्त कथन को और भी स्पष्ट करने के लिये कवि के दो पद दे रहे हैं इनसे यह अवगत होगा कि कवि ने जहाँ प्राचीन पद्धति का अनुकरण किया है, अर्थात्

ताल, लय, सम, मात्रा पर विशेष ध्यान दिया है वहाँ उसकी देन क्या है और जहाँ मुक्त संगीत की प्रधानता है वहाँ उसने क्या नवीनता रक्खी है—

जग का एक देखा तार
कण्ठ अगणित, देह सप्तक, मधुर स्वर झंकार
बहु सुमन, बहु रंग, निर्मित, एक सुन्दर हार
एक ही कर से गुँथा, उर एक शोभा पार
गन्ध शत अरविन्द-नन्दन, विश्व वन्दन सार।
अखिल उर-रंजन, निरंजन, एक अनिल उदार
जग का एक देखा तार

इसमें मात्राओं की घट-बढ़ नहीं है, सम का भी विधान है किन्तु यह गायक की इच्छा है चाहे "जग का एक देखा तार" में 'तार' पर रक्खे या "एक देखा। तार जग का" में "जग का" पर। दस मात्राओं के पश्चात् ताल अवश्य आता है।

प्राणधन को स्मरण करते
नयन, झरते, नयन झरते
स्नेह ओत—प्रोत,
सिंधु दूर, शशि प्रभा दृग,
अश्रु ज्योत्सना—स्रोत।

या

लाज लगे तो
जाओ, तुम जाओ
फेर ले नयन
चलो मंजु-गुंजर, धर
नूपुर, शिंजित-चरण
करूँ वरण, प्राणों में आ
छवि पाओ

उक्त गीतों में विषय-मात्राओं का विधान है, ताल अवश्य है, परन्तु मात्राओं की घट-बढ़, स्वर की कहीं दीर्घता, कहीं लघुता उत्पन्न करने वाली है, गीतिका के गीतों में ऐसे गीतों की गेयता का आधार 'रवीन्द्र पद्धति' है जो स्वय अँगरेजी गाने के ढंग पर आधारित है। "जग का एक देखा तार" में कोई विशेष परिवर्तन नहीं है केवल प्राचीन नियम-बद्ध संगीत की कठिनाई को दूर करने का प्रयत्न भर है, पदावली नवीन अवश्य है किन्तु दूसरे प्रकार के गीतों में स्वर-मैत्री तो भारतीय ही है परन्तु गाने का ढंग योरोपीय पद्धति पर चलता है।

हम इसे योरोपीय न कह कर "पाश्चात्य से प्रभावित भारतीय संगीत-पद्धति" ही कहें तो ठीक होगा।

कवि के मुक्त छन्दो की तरह, यह मुक्त गीत भी लाँछन के पात्र बने लांछन यह था कि गाये नही जा सकते क्योंकि इनकी स्वर-धारा निश्चित गीत लेकर नही चलती कही वह बहुत दीर्घ होकर खिंचती चली जाती है और कही अत्यन्त शीघ्र समाप्त हो जाती है यथा—

अपने सुख स्वप्न से खिली
वृन्त की कली
उसके मृदु उर से
प्रिय अपने मधु पुर के
देख पड़े तारों के सुर से
विकच स्वप्न नयनो में मिली, फिर मिली
वह वृन्त की कली।

इसी के साथ एक प्राचीन पद रखिये—

प्रभू, मेरे औगुन चित्त न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो, चाहें तो पार करो।
एक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परो।

या दुविधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरो।
प्रभू मेरे अवगुन चित्त न धरो।

अब देखिये निराला के गीत व सूर के पद के गाने में स्वरों की समता व निश्चितता में कितना अन्तर है। अतः कहा गया कि निराला के गीत गाये नहीं जा सकते, यह ठीक है कि परिपाटी-बद्ध राग-रागनियों में प्रवीण गायकों के लिये निराला का उक्त गीत कठिनाई से गाया जा सकेगा, गा भी लें तो उन्हें आनन्द न आयगा परन्तु वह गाया ही नहीं जा सकता यह मिथ्या है। कवि ने स्वयं अपने गीतों को गाकर उनकी सफलता घोषित की है और उनमें अपने ढग की मौलिकता अवश्य है, यह बात दूसरी है कि ताल वाद्य बद्ध गीतों के आगे यह हमें कुछ विचित्र से अवश्य लगते हैं। कवि को संतोष है—

"चूँकि मैं बाजार का नहीं बन सका शायद इसीलिये हमारी सरस्वती ने मेरे स्वरों को बाजारू नहीं बनने दिया।"

गीतिका का काव्य सौष्ठव :—गीतिका केवल गाने योग्य नवीन गीतों की संकलन नहीं है, यद्यपि संगीत उसका मुख्य आधार है, उसमें कवि ने काव्य सौष्ठव की ओर बराबर ध्यान दिया है।

गीतिका में काव्य कला की पहली किरण उसके अर्थ गाम्भीर्य में है, 'विहारी' में "गागर मे सागर" भरने का गुण प्रसिद्ध है, परन्तु 'निराला' सारा समुद्र 'अजाखुर' में भरने की सामर्थ्य रखते हैं। कवि ने सकुचित स्थल में विस्तृत अर्थ योजना के लिये दीर्घ समास पद्धति का प्रयोग किया है और बीच के क्रिया-पदों को वह छोड़ता गया है, यथा 'है' 'की' आदि परिणाम यह हुआ है कि विश्लेषण द्वारा जब अर्थ की व्याख्या होती है तो पाठक साश्चर्य देखता रह जाता है क्योंकि क्रियापदों से विहीन दीर्घ समासांत-पदावली के पाषाणों को निचोड़ अर्थ निकाल सकना उसके लिए दुष्कर है, निराला इस दुरूहता के लिये प्रसिद्ध हैं उनकी दुर्बोधता

जहाँ उनकी प्रौढ़ता का प्रमाण है वहाँ गीत के सहज रूप में बाधा बन कर आ विराजी है।

प्रिय यामिनी जागी
अलस पंकज दृग, अरुण मुख, तरुण अनुरागी

× × × ×

हेर उर-पट, फेर मुख के बाल
लख चतुर्दिक, चली मन्द मराल
गेह में प्रिय-स्नेह की जय-माल।
वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में तागी।
प्रिय यामिनी जागी

यहाँ प्रथम पंक्ति का अर्थ है कि हे प्रिय, रात्रि जग गई है, उसके अलसाये हुए कमल नेत्र, सूर्य के समान मुख वाले प्रिय को देखकर खिलने को हैं, उस तरुण (प्रिय) को देखकर, प्रिया के कमल नेत्र अनुरागी हो रहे हैं।

निशा हृदय के वस्त्र को देखकर, मुख के ऊपर के बालों को फेर कर, चारों ओर देखकर मंदगति से चल पड़ी है, प्रिय का स्नेह बढ़ा हुआ है।

वह कामना की मुक्ति स्वरूपा है या, मुक्ति-प्राप्ति के लिये आशान्वित है, वह उस मोती के समान है जो त्याग के धागों से पिरोया हुआ है।

पूरे पद को पढ़ कर उक्त अर्थ बड़ी कठिनाई से निकलता है, "कौन तम के रे कह" गीत के सम्बन्ध में जो महत्व का भ्रम हुआ है उसकी हम विस्तार से चर्चा कर चुके हैं यह सब इसीलिए है क्योंकि 'निराला' मे समास-प्रियता की अधिकता व क्रियापदों के लोप के कारण कवि का अभिप्राय खुलता नहीं हैं, "अर्थ-अस्फुटता" निराला की कला का दूसरा बड़ा दोष है। आप मुग्ध होकर संस्कृत निष्ठ पदावली को पढ़ सकते हैं परन्तु जब अर्थ करने बैठते हैं तो 'निराला' पर खीझ उठती है, अस्पष्टता, महानता का चिन्ह नहीं

है, वाल्मीकि से लेकर तुलसी तक किसी कवि ने अस्पष्ट होने का प्रयत्न नहीं किया, विद्वत्ता के चमत्कार का लोभ जिन भारवि, माघ और श्री हर्षो को रहा उनकी पदावली भी इस प्रकार अशक्त नहीं है, किंचित ध्यान देने पर दो-दो अर्थ भी स्पष्ट हो जाते है पर 'निराला' मे यह दुरूहता पद-संहिति के प्रति घोर दुराग्रह के कारण उत्पन्न हो गई है।

और भी कारण हैं (१) अप्रचलित, अपरिचित शब्दों का प्रयोग यथा शराब के प्याले के लिये 'कारण-जाम' का प्रयोग करना।

(२) दुहरी लक्षणाओं के प्रयोग—प्रश्न चित्रों का फैला कूट

(१) चित्रों का प्रश्न फैला है

(२) चित्र टेढ़े हैं

(३) इसी प्रकार—"दर्प-अलि, हर स्पर्श-शर, सर" से "आनंद-रूपी भौंरा स्पर्श का चुभा तीर हर रहा है" अर्थ निकालना जबर-दस्ती है क्योंकि और व्याख्यायें इसकी हो सकती हैं, क्रिया-पदों के लोप से यह अनिश्चितता बढ़ी है।

(४) कहीं कहीं अर्थ की दुरूहता का आभास मात्र है, दुरूह है नहीं परन्तु इतना समझ लेना अत्यन्त कठिन :—यथा—

"नव अपाङ्ग-शर हत, व्याकुल उर"

इसका अर्थ है—नये कटाक्षों के बाणों से घायल होकर हृदय व्याकुल है, इसी को समास मे न बाँधकर कहा जाय तो भाव अत्यन्त साधारण है, सारांश यह है कि जहाँ भाव गूढ़ है वहाँ तो उसकी गूढ़ता और भी बढ़ गई है और जहाँ गूढता नहीं है, साधारण भाव है, वहाँ भी पद-विधान की अस्वाभाविकता के कारण गूढ़ता का आभास होता है। एक और पद-संहिति और अर्थ-गाम्भीर्य का उदाहरण लीजिये

रूप अतन्द्र, चन्द्रमुख, अमरुचि,
पलक ताल तम, मृग दृग-तारे
देख दिव्य छवि लोचन हारे

अर्थ—उस सुन्दरी का रूप तंद्रा रहित होगया है, उसकी रुचि में श्रम है, पलकों में हलका अन्धकार और आँखों के तारे देखकर हिरन की आँखे याद आ जाती है, हिरन चाँद की सवारी है अतः तारों को देखकर हिरन की उपमा बहुत उपयुक्त है।

अर्थ गाम्भीर्य के गुणों व दोषों को दिखाकर हम 'गीतिका' की रूप योजना को देखेंगे—इसमें कवि की कल्पना शक्ति साकार रूप में प्रस्तुत होगी, अप्रस्तुत का विधान गीतिका का सर्वथा नवीन है यह स्वयं प्रसाद जी ने माना है।

<u>रूप योजना</u> :—यहाँ अप्रस्तुत विधान की प्रथम विशेषता यह है कि प्राय: वे श्वेत रंग से युक्त हैं, दिनकर, कमल, विद्युत कली आदि," ज्योतिर्मयता प्रत्येक अप्रस्तुत में अवश्य मिलती है।

पावन करो नयन !
प्रतनु, शरदिन्दु-वर,
पद्म-जल-बिन्दु पर,
स्वप्न—जागृति सुघार
दुःख निशि करो शयन !

यहाँ पद्म-जल के ऊपर पड़े हुये बिन्दुओं को देखकर यह कल्पना की गई है कि मानो सूर्य के न आने पर कमल रोया है।

फिर प्रार्थना की गई है कि हे किरण! तुम कमल के स्वप्न में जागृति बनकर आओ, इससे कमल को सुख प्राप्त होगा, यहाँ मुक्ति की ओर संकेत है, कमल की दुख की रात में, किरण से प्राथना है कि वह उसके जल-बिन्दुओं पर—आँसुओं पर सो जाया यहाँ किरण व कमल की मानवीय-क्रियाये, जलबिन्दु में आँसू की कल्पना, मुक्ति की सूक्ष्म व्यंजना आदि कवि की कल्पना की निर्देशक हैं, जलबिन्दु को आँसू सभी कल्पित कर सकते हैं परन्तु पूरी कारण-परम्परा के साथ उसे प्रस्तुत कर उससे एक दार्शनिक सत्य की पुष्टि का कार्य ले लेना निराला का ही कार्य है, प्रकृति के दृश्यों को देखकर अनेक रहस्योद्घाटन कवि की कल्पना ही तो करती है।

रूखी री यह डाल, बसन बासंती लेगी
देख खड़ी करती तप अपलक ।
हीरक सी समीर माला-जप ॥
शैल सुता अपर्ण—अशना
पल्लव वसन बनेगी
वसन वासन्ती लेगी।

यहाँ 'डाल' को देखकर पार्वती की कल्पना की गई है, यह डाल अपलक नेत्रों से पार्वती के समान ही तपस्या कर रही है, (वरौं शम्भु न तु रहौं कुमारी) जाप के लिये कोई साधन चाहिये वह यहाँ प्रस्तुत है, डाल रूपी पार्वती तुषार-विन्दु रूपी हीरों की माला फेर रही है जो समीर रूपी धागे को पिरो कर बनाई गई है। यह डाल अपर्ण-अशना है—पत्तों से मिलने वाला भोजन भी छोड़ देने वाली है और उधर पार्वती का नाम भी अपर्णा है अतः इस तपस्या के फलस्वरूप यह डाल रूपी पार्वती पल्लव रूपी परिधान धारण करेगी।

पंत व निराला का अन्तर भी यहां देखिये, पंत चित्र को उत्तेजक बना देते हैं, जैसा कि झुलाझाती झरनोंके झलमल हार में हमने देखा है, परन्तु निराला के रूप विधान में उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह रहती है कि वहाँ एक ऋषि-दार्शनिक के आश्रम जैसी प्रकाश और पवित्रता रहती है। इसीलिये वह 'प्रकाश का कवि' कहलाता है।

कुछ रूप केवल दो शब्दों में बंधित हैं—यथा—

"चुम्बन-चकित" कहने से एक विचित्र मुद्रा हमारे सम्मुख आ जाती है, "स्तव के अवनम्र स्तवक" = अर्थात् स्तुति के झुके हुये गुच्छे जैसे।

४७ वें गीत मे एक महान कल्पना है कि मेघमाला अपने मित्र उपवन पर उतरते समय सजल-नयन होगई है, उसे स्मृति हो आई

है, कि वह पृथ्वी पर वही थी जहाँ पानी अधिक था अतः मेघमाला इस स्नेह के कारण वनों में वर्षा अधिक करती है।

(छिपा मन) बन्द करो उर द्वार
(फिर) सौरभ करदो संचार
वह रंग दल बदल-बदल कर।
नव-नव परिमल मल-मल कर॥
जग भौंर भुला भूलो से
पहनो फूलों का हार

पुष्प रूपा प्रकृति पर यदि भौंरे बैठेंगे तो भौंरे स्वयं हार बन जायेंगे और प्रकृति के कंठ को सुशोभित करेंगे।

एक मुद्रा देखिये—

बङ्क भौंह, शंकित दृग, नतमुख,
मिला रही, निज उर अग-जग दुख
पी ली ज्वाल, बदल नीली, रुख
विभा, प्रभा की खान, आन तुम।

संध्या का वर्णन है, संध्या वंकिम भौंह वाली है जिससे उसकी चिंताशीलता द्योतित है, ससार की ज्वाला को पीकर वह नीली हो गई है, दूसरे रूप में बदल गई है जो प्रभा की खान है।

और भी विभिन्न रूप-व्यापार व बारीक कल्पनायें है, किंतु एक बात विस्मृत न करना होगा कि एक दो चित्रों को छोड़कर न तो चित्रों में विराटता है न अधिक विविधता व व्यापकता, 'भावना का समर्पण' गीतिका का मुख्य स्वर है. 'मिलनानुभूति' कैसी होती है इसी का वर्णन है अतः कवि चित्रण की ओर कम प्रवृत्त हुआ है, फिर भी मार्मिक छवियों का उसमें विधान किया गया है, पंत की चित्र संबन्धी जादूगरी प्रसिद्ध है, क्षण क्षण में परिवर्तित चित्रों को बारीक दृष्टि से देखकर प्रत्येक मुद्रा का रेखाओं के प्रत्येक आकुंचन, विकुंचन का विशद चित्रण पंत में अधिक है, निराला ने गीतों में "आत्म-लवलीनता" का सूत्र अधिक पकड़ा है, वह यहाँ अंतर्मुख

अधिक हैं, बहिर्मुखता के क्षणों में कलाकार बाहर देखता है, 'गीतिका' में प्रेम व समर्पण सम्बन्धी अनुहारों का चित्रण है अतः भावनायें मुखर अधिक हुई हैं, चित्र उतने सवाक नहीं हो पाये हैं, दूसरे विचार-तत्त्व की प्रौढ़ता कुछ गीतों में बहुत अधिक हो गई है अतः उनसे न भावना का ही स्पर्श मिलता है न रूप विधान का ही। अज्ञात के प्रति जहाँ जिज्ञासा है वहाँ भी भावना का स्पर्श कम है किन्तु जहाँ "मधुर मनुहार" है वहाँ गीतिका का माधुर्य व औज्ज्वल्य अत्यन्त आकर्षक बन पड़ा है।

यथा—१—नयनों में हेर प्रिये, मुझे तुमने ये वचन दिये
२—मौन रही हार, प्रिय पथ चलती सब कहते— शृंगार
३—मन चंचल न करो
४—स्पर्श से लाज लगी
५—धन्य कर दे माँ, वन्य प्रसून,
६—आओ मेरे आतुर उर पर
७—मुझे स्नेह क्या मिल न सकेगा

इन गीतों में आत्मा का निश्छल समर्पण ब्रह्म के प्रति प्रस्तुत किया गया है। विरहानुभूति का चित्रण कम है, हिन्दी में निराला ही एक ऐसा गीतकार है जिसने आत्मा व परमात्मा के विरह से भी अधिक मिलन अनुभूतियों का चित्रण उससे अधिक किया है। निराला अद्वैत-स्थिति का विश्वासी कवि है, फिर विरह कैसा? जब दूसरा है ही नहीं, तब द्वन्द्व कैसा, मात्र भ्रम, इसी भ्रम को दूर करने के लिये निराला बार-बार प्रार्थना करता है।

एक और सूत्र है, निराला अपने गीतों में व्यक्तिगत दुर्बलताओं का वर्णन प्रायः नहीं करता जैसा कि बच्चन नरेन्द्र [illegible] करते, वह इसे कलाकार की कमजोरी मानता है। गीतिका में प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा की 'गुहार-पुकार' का अभिव्यंजन करने वाले गीत ही अधिक हैं, जबकि व्यक्तित्व की अभिव्यंजना दूसरे रूप में है व्यक्तित्व की अभिव्यंजना केवल इसी रूप में भी होती।

कविता में अपनी निजी दुर्बलताओं का लेखा प्रस्तुत किया जाय बल्कि इस रूप में होती है कि कवि का 'स्व' वहाँ 'अस्खलित' रूप में रहे, छायावाद में मानसिक स्खलन से ऊपर उठकर व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति केवल निराला के गीतों में ही हुई है। ऐन्द्रिकता की बालू उसके काव्य-भवन-निर्माण में प्रयुक्त नहीं हुई। शब्द का परिष्कार पंत में और भावना की उज्ज्वलता के अनल से भास्वर व्यक्तित्व की अभिव्यंजना निराला में पाई जाती है। अतः गीतिका में कोरा भावोच्छ्वास नहीं है, भाव यहाँ दार्शनिक चिन्ताधारा से तरंगायित होकर आया है, अतः "स्पर्श से लाज लगी" जैसी पंक्तियों में भी एक 'उन्नयन' प्रतिबिम्बित हो रहा है। यदि पदावली की सहजता और अर्थ निर्वाह का आग्रह और हो गया होता तो गीतिका के गीत बेजोड होते। इन गीतों की प्रथम पंक्तियाँ महादेवी के गीतों की प्रथम पंक्तियों के समान ही मधुर और आकर्षक है किन्तु आगे दर्शन के भार से गीत भार भारावनत जैसे लगने लगते हैं—

नयनों का नयनों से बंधन
काँपे थर थर, थर-थर युग तन ॥
समझे युग, रागानुग मुक्त रे—
ज्ञान परम, मिले चरम युक्ति से—
सुन्दरता के, अनुपम उक्ति के
बाँधे हुए श्लोक पूर्ण का चरण

प्रथम पंक्ति का निसर्ग-सौंदर्य आगे के दार्शनिक-उलझाव में किस प्रकार नष्ट होगया है, यह द्रष्टव्य है।

समष्टि रूप से देखने पर 'गीतिका' संगीत के क्षेत्र में एक नूतन प्रयोग है। उसका गीति तत्व संगीत की प्राचीन परम्परा के लिये एक चुनौती के रूप में है, गीतों में रूप-विधान द्वारा, बाह्य रंगीनी नहीं है, कल्पनायें गम्भीर विचार दर्शन को स्पष्ट नहीं कर सकीं, विचार का बोझ गीतों के पतले कण्ठ पर रक्खा हुआ है।

गीत व्यक्ति के कण्ठ से निकलकर समष्टि समाज के स्वरों का शृङ्गार बनता है, सृष्टि के आदि काल से साहित्य का प्रथम रूप गीत में ही व्यक्त हुआ है, फसल के अन्त में प्रकृति से संघर्ष करने वाले कृषक गीतो के माधुर्य में डूबकर नृत्य कर उठते थे, इसलिये गीत Collective emotion मानव-समूह के सामान्य भाव को अभिव्यक्त करने में सफल हुए हैं गीतिका के गीत Collective emotions का सफलतापूर्वक प्रतिनिधित्व नहीं कर पाते, क्योंकि वे एक दार्शनिक अनुबन्ध में जकड़े हुए हैं ज्ञान, प्रकाश, आत्मान्वयन, शब्द सृष्टि, गेयता उनमें पर्याप्त मात्रा में है परन्तु वे जन-जन के कण्ठ हार नहीं बन सकते, क्योंकि निर्विशेष के विवेचन में गहराई चाहे जितनी आ गई हो उनकी स्वाभाविकता नष्ट हो गई है। जिन गीतों में यह दोष नहीं हैं और ऐसे गीत भी हैं, जिनमें कवि को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। श्री नन्ददुलारे वाजपेयी जी के अनुसार इन गीतों में "असाधारण जीवन परिस्थितियों और भावनाओं का प्रत्यक्षीकरण नहीं है, जीवन उनमें व्यापक जीवन का प्रखर प्रवाह व संयम है, गति के साथ आनन्द, और विवेक के साथ भी आनन्द मिला हुआ है, दोनों के संयोग से बना हुआ यह गीति काव्य विशेष स्वस्थ सृष्टि है।"

यह ठीक है कि असाधारण जीवन परिस्थितियों का प्रत्यक्षीकरण नहीं है परन्तु गीतिका के गीत तब भी असाधारण हो गये, क्यों? विचारों के बोझ और भाव-अस्फुटता के कारण। आनन्द, विवेक, स्वस्थता संयम, प्रकाश उनमें सर्वत्र व्याप्त है परन्तु यह सब साधकोचित हैं, मानवीय सामान्य भावनाओं का उभार कला का आदर्श नहीं है, उसका आदर्श परिष्कार है परन्तु गीतिका में 'परिष्कार' से भी कवि ऊपर उठकर 'आत्म गुंजार' में बन्द रहता है, या फिर।

रे अपलक मन!
पर कृति में धन आपूरण

दर्पण बन तू मसृण सुचिक्कण।
रूप हीन सब रूप-बिम्ब-धन॥

× × × ×

तेरे ही दृग, रूप तिल रहा—
खोज न कर मर्पण

जैसे गीतों में कवि दार्शनिक गुत्थियां को सुलझाने लगता है, उसके उद्बोधन असाधारण, उसकी ज्ञान-पिपासा असाधारण, उसकी अभिव्यक्ति असाधारण, उसकी गेयता असाधारण अतः उसके 'गीत' असाधारण है। यह असाधारणता जहां कला का एक अत्यन्त उच्च और विशेष स्तर उपस्थित करती है वहॉ उसकी स्वाभाविक गति को भी छीन लेती है; 'गीतिका' का कवि जहॉ सामान्य भावना के चित्रण द्वारा असामान्य की व्यंजना कर सका है वहॉ वह पूर्ण सफल हुआ है किन्तु जहॉ उसने 'सामान्य' का अंचल छोड़ दिया है वहॉं वह कला अत्यन्त एकाङ्गी होकर सिमिट गई है। गीति कला मे 'सामान्य' ही कवि को 'विशेष'' बनाता है।

निराला की प्रगति और प्रयोग

सन् ४० के पूर्व तक निराला की कला का स्वर गंभीर रहा भावों की गहनता के साथ-साथ, भाषा की प्रौढ़ता की रक्षा भी आवश्यक थी, देश की स्थिति एक तो पहले से ही दयनीय थी, परन्तु द्वितीय महा समर की अवधि में वह और भी विषम होती गई. कवि इस विषमता का कारण बहुत पहले से समझता था, वर्तमान सामाजिक व्यवस्था, जिसमें धनी और भी समृद्ध होते जा रहे हैं और निर्धन, भिक्षुकों में परिणत हो रहे हैं युद्ध काल में देश के पूँजीपतियों के पास एक ओर तो अपार धन राशि एकत्र होती गई और दूसरी ओर निम्न, उत्पादक वर्ग अकाल, भूख, रोग और शोषण से आक्रान्त हो उठा, नेता वर्ग "क्रांति के जोखम से डर कर करुणा, करुणा (अहिंसा, अहिंसा) मिमिया रहा था" सन ४२ के आन्दोलन में अहिंसक नेता जेल में सुविधानुसार पहुँच गये और जनता को अपनी जागृत-चेतना का दमन के रूप में पूरा पारितोषिक मिला, उसकी दशा और भी बिगड़ी, सन ४४, ४५, ४६ इसी संघर्ष में बीते, नित्य नये प्रलोभन और प्रस्ताव और अन्त में सन ४७ में भारत को विभाजन के आधार पर स्वतंत्रता मिल गई, किन्तु १५ अगस्त की रात्रि में जगाये गये दीपों के धुयें के साथ, सारा उत्साह उड़ गया, नेता वर्ग जो उच्च मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व कृषकों और मजदूरों के नाम से कर रहा था, दिन पर दिन पूँजीशाहों से गठ-बन्धन करता गया, विभिन्न योजनाओं के नाम से वोट बटोरे जाने लगे, भ्रम की कुहेलिका में देश आपाद निमग्न हो गया.......... ।

निराला सजग चिन्तक रहा है, उसने समाज के विषम व्यवस्था जन्य दुःखों को समझ लिया था, अनुभव कर लिया था, समाज

का प्रत्येक कोढ़ कितना कष्ट कर है यह कवि ने अपने व्यवहारिक जीवन में देख लिया था अतः अब ऐसी स्थिति में जबकि बड़ी-बड़ी जोंकें चुपचाप जनता की छाती पर चिपकी अपना काम कर रहीं थीं जबकि चारो ओर प्रवंचकों का आपस मे सुधारों के नाम पर अशुभ मिलन हो रहा था, जबकि बंधनो मे तड़पने वाली जिन्दगी पर दमन, शोषण, छल, राजनैतिक षडयन्त्रों के प्रहार हो रहे थे तब कवि के लिये 'यमुना की लहरों से अतीत के गान पूछने में समय लगाना व्यर्थ था, तब विजन-जन वल्लरी पर सोहाग-भरी कलियों की सुन्दर देहों को निठुर-नायकों द्वारा झकझोर डालते देखकर प्रसन्न होना आत्म हत्या थी, तब मेघमय आस्मान से उतरने वाली अप्सराओं को देखने में समय बिताना समाज-द्रोह था, तब तो सड़े समाज की विकृतियों पर निर्मम प्रहारों की आवश्यकता थी, तब तो दम्भ में रंगे, आपाततः त्यागी और परमार्थी लगने वाले धूर्त नेताओं की पोल खोलने की अनिवायता थी, तब समाज के पहिये के नीचे पड़े हुए अर्ध मृत, सिसकते हुए जन-जीवन का चित्रण आवश्यक था, तब चित्रराग, सूक्ष्म कल्पनाओं के इन्द्रजाल मन की बहक, खुमार, हृदयोछ्वास, प्रिय-मनुहार आदि रोमांटक तत्वों के स्थान पर घोर यथार्थ का चित्रण आवश्यक था, और इसीलिये 'निराला ने 'गुलाब' को छोड़कर 'कुकुरमुत्ता' के सौंदर्य व गौरव को देखा, 'निराला' वैसे तो प्रारम्भ से ही 'भिखारी' 'विधवा' 'बादल' 'राग' 'जागो फिर एकबार' का कवि रहा है परन्तु तब अन्य स्वर प्रधान थे, तब संगीत, सौंदर्य भावना का प्रसार था, अब द्वितीय युद्ध के प्रारम्भ से वह व्यक्तिवादी पद्धति को छोड़कर जन वादी पद्धति पर आता गया, जिसे 'शोषितों का साहित्य (Proletariat literature) कहते हैं, सही अर्थों में निराला ने लिखना प्रारम्भ किया। उसने कुल्लीभाट, चतुरी चमार, बिल्लेसुर, बकरिहा में कीचड़ में डूबे 'मानवीयमहिमा के उन धवल शृंगों को देखा जिनको दुनिया असभ्य, नीच और शूद्र कहती है, कवि को

मनुष्यता का यथार्थ रूप कुल्लीभाट और चतुरी-चमार में मिला, उसे लगा जैसे अब तक की सौंदर्य और दर्शन की साधना व्यर्थ हो चली गई ।

काव्य के क्षेत्र में कवि ने छायावादी कला के स्थान पर 'जनवादी' कला को प्रस्थापित किया, छायावादी साहित्य स्वप्नवादी मध्य वर्ग का, जिसके संस्कार बूर्ज्वा वर्ग के थे, साहित्य था, सामंत युग का साहित्य जिस प्रकार 'रीतिकाल" में निर्वासित हो रहा था उसके विरुद्ध विश्व में विकसित पूंजीवाद ने जो शिविर खड़ा किया उसके बहुत से तत्व छायावाद में प्रस्फुटित हुए, समृद्ध नगरों की सभ्यता, विश्वविद्यालयों की नवीन शिक्षा ने देश में एक ऐसा वर्ग उत्पन्न कर दिया जो एक ओर तो पुराने सामन्त युग के बन्धनों का तिरस्कार करता था, मध्ययुगीन सारी मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह उसका ध्येय था, साथ ही अपनी दार्शनिक और व्यक्तिवादी विचारधारा से यथार्थ समस्याओं का हल न कर पा कर, 'अध्यात्म' के अंचल में सामंजस्य खोजना जिसका एक मात्र उपाय रह गया था, 'प्रसाद' ने निर्भय होकर मानवीय प्रेम व यौवन के गीत गाये जो सुधार के कठमुल्लों और रीतिकालीन वासना के कीड़ों के विरुद्ध क्रान्ति का रूप लेकर आये थे क्योंकि उनमें 'नारी' की महिमा व दिव्यता की सुरक्षा थी, परंतु साथ ही उन्होंने जग में बजती हुई विलक वेदना के दूरीकरण का कोई उपाय न पाकर अपने प्रिय 'आनन्दवाद" में शरण ढूँढ़ ली जो निश्चित रूप से वैयक्तिक-साधना का रूप था, 'महादेवी' ने मानवीय करुणा को वाणी दी, किन्तु 'पीड़ा' को दूर करने का प्रयत्न न कर उन्हें 'पीड़ा' में ही आनन्द आने लगा, 'पन्त' जी समय की धड़कन को अवश्य पहचान सके किन्तु उन्होंने अपनी व्यक्तिगत भ्रमों को प्रश्रय देकर, अरविंदवाद व मार्क्सवाद का समन्वय खोजा। 'निराला' सन् ४० के बाद जनवादी चेतना के बराबर साथ रहा और आज भी है किन्तु मूलतः व्यक्तिवादी चेतना का कवि होने के कारण वह 'अर्चना के गीत"

भी लिखता है और "गर्मपकौड़ी" जैसे कठोर व्यंग्य भी अर्थात् क्रान्तिकारी निराला में भी उनके अपने भ्रम और विश्वास आज भी चल रहे हैं क्योंकि 'मानवतावादी' कवि होने के कारण तथा सौंदर्य-साधना के एक पक्ष को पुष्ट में रत रहने के कारण, उनकी क्रान्तिकारिता एक साथ व्यक्तिगत विश्वासों को भी लेकर चलती है और समाज के यथार्थ को लेकर भी। वैष्णवीय भक्ति विह्लता भी उनमें मिलती है, और साथ ही समाज को उलट पुलट देने वाला—भीषण निर्घोष भी। सन् ४७ के पूर्व उसकी कला में यद्यपि 'मानवतावादी' तत्वों की कमी नहीं है, तथापि विहंगम-दृष्टि से देखने पर १६१६ से १६३६ तक की रचनायें 'व्यक्तिवादी' कला के अन्तर्गत आयेंगी, समष्टिवादी कला के अन्तर्गत नहीं, उनका केन्द्र 'मैं' है, जो कि सामन्त संस्कार प्रधान साहित्य की तुलना में क्रान्तिकारी होता है और समष्टि-वादी संस्कारों की तुलना में प्रतिक्रियावादी। क्योंकि व्यक्तिवादी कला में रोमाँस, आदर्श, ऐन्द्रजालिक कल्पना, रंगीनी और भावना के उद्‌गार रहते हैं जब कि जनवादी कला में लेखक समाज के यथार्थ को लेकर चलता है वह मात्र 'जुही की कली' का चित्रण नहीं करता, बल्कि 'कुकुरमुत्ता' की गरिमा को भी परखता है। जैसे १६१६ से १६४० तक की कविताओं में मुख्यता, असाधारण कल्पनात्मक सौन्दर्य की रही है और गौण रूप से 'यथार्थ चित्रों' पर जब तब कवि की दृष्टि पड़ी है यथा 'भिखारी' आदि पर, उसी प्रकार सन् ४० के बाद की कविताओं में मुख्य स्वर यथार्थ के चित्रण का होगया है और गौण रूप से अपने संस्कारों को भुलाने में असमर्थ कवि कभी-कभी अपने विश्वासों को भी अभिव्यक्ति दे देता है अर्चना के गीतों में दोनों भावनायें एक साथ मिलती हैं। रवीन्द्र के बंगाल में सौन्दर्य व संगीत साधना में रत निराला को 'चतुरी चमार' और 'कुल्लीभाट' के रेखा चित्रक तथा 'कुकुरमुत्ता' के कवि से मिलाइये, उसके व्यक्तिवाद तथा जनवाद का अन्तर स्पष्ट हो जायेगा।

कुकुरमुत्ता—यह सन् ४२ में प्रकाशित कविता संग्रह है, इसमें पहली रचना है "कुकुरमुत्ता"। यह कविता एक व्यंग्य है। 'गुलाब' उच्च वर्ग का, सौन्दर्य और सुरुचि का, समृद्धि और सम्मान का प्रतिनिधि है, और 'कुकुरमुत्ता' घोर यथार्थ का नमूना है। कुत्सित, अनगढ़, भद्देस वस्तुओं का महत्व कम नहीं होता, अधिक होता है, यह दिखाया गया है, किन्तु प्रतिक्रिया की झोंक में कहीं-कहीं कवि अनर्गल बहुत कुछ कह गया है। उसका समर्थन बस इसी रूप में हो सकता है कि 'गुलाब' यहाँ शोषक वर्ग का प्रतीक मान लिया गया है अतः उसके विरुद्ध जो कुछ कहा जाय, थोड़ा ही है।

कुकुरमुत्ता—फारिस के गुलाब को देखकर जिसका सारे बाग़ पर रोब था, जो एक खुशनुमा बाग़ में लगाया गया था, कहने लगा—

अबे सुन बे गुलाब
भूल मत, गर पाई खुशबू, रंगो आब
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट
डाल पर इतरा रहा, कैपिटलिस्ट
कितनों को तूने, बनाया गुलाम।
माली कर रक्खा, सहाया जाड़ा घाम॥
हाथ जिसके तू लगा
पैर सर पर रख व, पीछे को भगा
जानिब औरत की, मैदान जंग छोड़
तबले का टट्टू जैसे तंग तोड़
शाहों, राजों, अमीरों का रहा प्यारा
इसलिए साधारणों—से रहा न्यारा

बस इसलिए गुलाब बुरा है कि वह जनता का नहीं, अमीरों का रहा है, वह पथ भ्रष्ट करने वाला है क्योंकि वह विलासिता की ओर उन्मुख करने वाला है। फिर कुकुरमुत्ता की अनर्गल प्रशंसा है—

'प्रेम संगीत' में प्रेम के 'भदेस' रूप का चित्रण है, जो आध्यात्मिक प्रेम की प्रतिक्रिया में लिखा गया है, 'सुरुचि' का पूर्ण अभाव है। 'रानी व कानी' का भी यही हाल है।

'खजोहरा' का मजाक अच्छा नहीं बन पड़ा। कहीं-कहीं चित्र बोल उठा है—

मेंढक एक बोलता था ज्यों मुकरात
फलानूँ—सा दूसरा सुनता बात।
तेज हवा से पछाँह को झुके
ज्वार के पौधे सिपाहियों से दिखे।

'कुकुरमुत्ता' में "मास्को डायलाग्ज" अच्छी कविता है, इसमें एक 'नेता' की मनोवृत्ति का सुन्दर चित्रण है परन्तु उत्तेजना में कवि सीधी गाली देने पर भी उतर आता है।

फाँसना है उन्हें मुझे,
ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का

'स्फटिक शिला' एक लम्बी कविता है, इसमें 'स्फटिक शिला' (चित्रकूट) तीर्थयात्रा का वर्णन है, 'रामलाल' की श्रद्धा का उपहास है और साथ ही कवि ने एक सद्य-स्नाता युवती के स्तनों को देखकर अपने को 'जयन्त' बना दिया है—

आँख पड़ी युवती पर—
आई जो नहा कर

× × × ×

'वर्तुल उठे हुए स्तनों पर अड़ी थी निगाह
चंचु सी जयन्त की, नहीं है जिसे कोई चाह
देखने की मुझे और
कितने वे दिव्य स्तन, होंगे कितने कठोर
काँप उठा मेरा मन,

उठे हुए स्तनों को देखकर जयन्त बन जाना कामुकता का चिह्न हो सकता है, प्रगतिवाद का नहीं, पर प्रश्न यह है कि वासना के

इन स्पष्ट और कुत्सित-चित्रों का निर्माण ही क्यों हुआ, प्रतिक्रिया के कारण, छायावादी कवि, लौकिक वासना को अध्यात्म के आवरण द्वारा प्रच्छन्न करते चलते थे, अतः 'वासना' के नग्न चित्रों की सृष्टियाँ जैसे प्रगतिवादी कविताओं के क्षेत्र में गिनी जाने लगीं, वह युग वस्तुतः 'प्रतिक्रियावाद' का युग था। अतः उसकी झौंक में मनमाने चित्रों का भी स्वागत हुआ। 'कुकुरमुत्ता' में न तो व्यंग्य ही निखर सका है, न उसका कोई स्तर ही है, 'प्रयोग' नवीन अवश्य है परन्तु अवाँछनीय नवीनता, ग्राह्य-प्राचीनता से भी हानिकर हो जाती है। ऐसा लगता है जैसे 'निराला' विरोधों के बीच से गुजर कर, प्रत्येक वस्तु का उपहास करता हुआ अपने प्रति किये गये अत्याचारों का बदला लेना चाहता है। साहित्य प्रतिशोध व प्रतिक्रिया के तूफान में उड़कर आया हुआ गालियों, कुत्सित प्रवृत्तियों भद्दे चित्रों और मनमानी व्यंजनाओं का ढेर नहीं है, कुकुरमुत्ता की कविताओं मे छन्द, भाषा किसी का भी परिष्कार नहीं दिखाई पड़ता, व्यंग्यों मे अधिकतर एक ही प्रवृत्ति है, अति सामान्य वस्तु से किसी प्रसिद्ध दार्शनिक, विचारधारा या किसी अन्य व्यक्ति की तुलना करना यथा—मेंढ़क को सुकरात बताना। एक ही प्रवृत्ति के कारण न तो 'हास्य रस' ही उत्पन्न हो पाता है, न व्यंग्य की कचोट से पाठक का हृदय तिलमिलाता है।

अपनी कुत्सा प्रियता के कारण 'कुकुरमुत्ता' एक आदर्श व्यग्य-नहीं बन पाया।

किंतु हम इस 'प्रयोग' की अत्यन्त प्रशंसा करता है। यदि समय की दृष्टि से देखे और कवि की 'उपयोगितावादी' दृष्टिकोण को भूल जायें तो कुकुरमुत्ता' हिंदी मे अपने ढग की एक नई चीज अवश्य है।

नवीनता, वैचित्र्य और मौलिकता निराला की ये तीन विशेषताएँ है प्रत्येक रचना में मिलेंगी, 'कुकुरमुत्ता' में भी।

वेला—दूसरा गीत संग्रह है जो सन १६४३ में प्रकाशित हुआ, इसमें गीतों का अनेक रूप प्रस्तुत किया गया है। कवि ने हिन्दी में, रघुवर सहाय 'फिराक' के निर्देश पर, गजलें भी लिखी हैं जो 'वेला' में संग्रहीत हैं, इसमे देशभक्ति, रहस्यानुभूति, प्रेम आदि सभी भावनाओं के गीत हैं। कवि का विचार है कि "पाठकों की हिन्दी मार्जित हो जायगी, अगर उन्होंने आधे गीत भी कंठाग्र कर लिये'।

पहला गीत तो 'गीतिका' की परम्परा में है, अन्य गीतों में भाषा सरल और मुहावरेदार है, उसमे न कहीं 'कुत्सा' का भद्दा प्रदर्शन है न प्रतिक्रिया की झोंक। अधिकाँश गीतों का विषय 'प्रेम' है कुछ गीतों मे बडी सफाई से 'पूँजीवाद' पर प्रहार किये गये हैं और अत्यन्त सफल हुये हैं—

किनारा वह हमसे किए जारहे है
दिखाने को दर्शन, दिए जारहे हैं
खुला भेद, विजयी कहाए हुए जो,
लहू दूसरे का पिए जा रहे हैं।

और

भेद कुल खुल जाय वह—सूरत हमारे दिल में है।
देश को मिल जाय जो, पूँजी तुम्हारे मिल में है।

कहीं कहीं 'मुक्त छन्द' का मिश्रित रूप देखिए—

जल्द जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ
यहाँ, जहां सेठजी बैठते थे
बनिए की आँख दिखाते हुये
उनके ऐंठाये ऐंठे थे
धोखे पर धोखा खाते हुए
बैंक किसानों का खुलवाओ।

गीतिका में गेयता का एक स्तर विशेष था और काव्य सौष्ठव भी था, किंतु सहजता न थी, वेला में गेयता है, सहजता भी है किंतु काव्य सौष्ठव का अपेक्षाकृत अभाव है,

कैसे गाते हो ? मेरे प्राणों में—
आते हो, जाते हो
लोग-बाग बैठे ही रह गये
अपने मे अपना सब कह गये
सही छोर उनके जो गह गये—
बार बार उन्हे गहाते हो

यहाँ लोगबाग, गहाना आदि प्रयोग भद्दे हैं।

'वेला' के गीतों में कवि में तुकांतप्रियता के कारण भाव-प्रस्फुटन में बाधा पडी है उसे तुकांत पूर्ति के लिये पहले से ही शब्द चुनने पड़े हैं और फिर भाव को तदनुकूल मोड़ देना पड़ा है—

१—आये पलक पर प्राण कि
बन्दनवार बने तुम।
२—रूप की धारा के उस पार
कभी भी धँसने दोगी मुझे ?

इन गीतों में पादपूर्ति के लिये, अशक्त शब्द भरने पड़े है, भावों मे अस्पष्टता बढ़ गई है। उपेक्षा-जनित वेदना का स्वर कहीं-कहीं अत्यन्त प्रखर होगया है।

मन में आये संचित होकर—हम जग के जीवन से रोकर
भव के सागर के स्रोत प्रखर, होते हैं नीचे से ऊपर
जग के उर्वर मरु का कृपिफल, जीवन मे काटेंगे बोकर

वेला में प्रगति के प्रयोग प्रायः गजलों मे है, गीतों में प्रायः प्रेम की व्यजना है। यहाँ कवि 'कुकुरमुत्ता' का 'जयन' नहीं बनना चाहता, यहाँ वह पुरानी "आत्म गुंजार" पुनः सुनाई पड़ती है जो आगे 'अणिमा' व 'अर्चना' में प्रवाहित होती रहती है। अन्तर केवल इतना ही है कि यहां कवि का मन चिंताग्रस्त, दुःखों से क्लान्त-विभ्रान्त है—"शांति चाहूँ मैं, तुम्हारा दुःख—
कारागार है जग"

वेला के कुछ 'व्यंग्य' अत्यन्त प्रभावशाली हैं। यथा ४४,४५ वें गीतों में, गंगा के किनारे एक साधक बाबा का चित्र है (जो कढ़े हुये हैं, दूसरे में एक भिखारी को देखकर विभिन्न वर्ग के लोगों से विभिन्न कल्पनायें प्रस्तुत की गई हैं जो सुन्दर हैं।)

गजलों का प्रयोग हिन्दी में तभी सफल हो सकता है जब हिन्दी भाषा केवल छन्द उधार ले ले, और पदावली अपनी रहने दे, कहा जायगा कि बिना चलते हुये उर्दू शब्दों के 'वाह-वाह' कराने वाली 'फड़क' उत्पन्न नहीं होती, उसके लिए विवशता है क्योंकि हिन्दी भाषा भाव के गाम्भीर्य पर निर्भर करती है, भावना के वेग और भाव की उच्चता हिन्दी में काव्य सौष्ठव लाता है न कि मात्र उक्ति वैचित्र्य और एक विशेष प्रकार के शब्दों का विधान। प्रत्येक भाषा का अपना स्वभाव होता है, और उर्दू तो हिन्दी की ही एक शैली विशेष है. हमें वस्तुतः वहीं उसका आनन्द लेना चाहिए, जिस तरह वर्ण-वृत्त हिन्दी में सफल नहीं हुए उसी प्रकार 'गजलें' भी सफल नहीं हो सकती। उर्दू गजलों के ढङ्ग से हम हिन्दी के गीतों को भी पढ़ सकते हैं, पढ़ते भी हैं, परन्तु उर्दू की शब्दावली लेकर हिन्दी में गजलें लिखना न तो हिंदी की ही उन्नति करेगा न उर्दू का ही।

युगों का जोर उन्हीं का रहा, वही जीतीं।
निदाघ से बरखा की फुहार लायेगी।

यह अनमिल शब्दों का एकत्र करना एक नई हिन्दुस्तानी को जन्म देना हैं, और कुछ नहीं।

बदलीं जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया।
गुल जैसे चमचमाता कि बुलबुल मसल गया

यह प्रयोग हिन्दी में कैसे सफल कहा जा सकता है, इसे देखकर दाग़, और ज़ौक की याद आ जाती है, निराला का नहीं। अब हिन्दी की शब्दावली में एक हिन्दी की गजल देखिये—

संकोच को विस्तार दिये जा रहा हूँ मैं।
छन्दों को विनिस्कार दिये जा रहा हूँ मैं।
प्रसार को प्रस्तार दिये जा रहा हूँ मैं।
जैसे विजय को हार दिये जा रहा हूँ मैं।
युग को किया सुरूप, दुनियाँ की आँखों में।
गाया मदन को प्यार, दिये जा रहा हूँ मैं।

यहाँ देखा जाय तो कवि को 'तुक' के लिये 'यि' जोड़ना पड़ा है, 'गोया' का न चाहने पर भी प्रयोग करना पड़ा। फिर भी यह गजल हिन्दी की शब्दावली से युक्त है। किन्तु न उर्दू का यहाँ लोच आ पाया है न वाह्-वाह् करने वाली 'फड़क', इसलिये हमारा विचार यह है कि गजलों के ये प्रयोग सफल नहीं कहे जा सकते गजल के लिये उर्दू में अनकों शब्द व्यवहृत होते होते मँज गये हैं उनकी संहिति से एक निराला सौन्दर्य वहाँ आ जाता है। हिन्दी में गीतों का प्रयोग हुआ है अतः उसका वैभव वहीं दिखाई पड़ता है।

नये पत्ते :—

'नये पत्ते' में 'कुकुरमुत्ता' की कुछ कवितायें हैं कुछ नवीन कवितायें भी हैं। इस संग्रह में प्रयोगों की नवीनता अवश्य है परंतु भाषा, छन्द, भाव आदि बेठिकाने हैं।

मुहाँमुह रहे
सर उठाये बढ़े चले।
हवा में गिरह लगाई,
बहुत झेला, बहुत झूमे।
× × ×
छाँह में बैठालकर तंग नसें ठीली कीं,
फिर बुखार उतारा
राही जगा
अपना रास्ता लिया
आँख, आँख का काँटा होगई

"राजे ने अपनी रखवाली ली" "थोड़ों के पेट में बहुतों को आना पड़ा" कविता में विकासवाद को वाणी दी गई है, भाषा बोलचाल की, मुहावरेदार है, वितरण अधिक है मर्मस्पर्शिता कम।

"दशा की" में आधुनिक सभ्यता का विकृत रूप चित्रित है। "नये पत्ते' की सबसे बड़ी विशेषता है—गीत का 'वार्तालाप' के रूप में प्रस्तुत करना, हम इन्हें "वार्तालाप-गीत" या "गीत-वार्तालाप" कह सकते हैं, इसीलिये भाषा की अनिश्चितता है, वार्तालाप में जिस प्रकार शब्द का स्वाभाविक, अस्वाभाविक सभी रूप आता है उसी प्रकार यहाँ प्रयोग किये गये हैं। साथ ही 'व्यंग्य' भी सधे हुए और मर्मस्पर्शी हैं। यथा, झींगुर डटकर बोला व "कुत्ता भौंकने लगा" में जमींदारी प्रथा पर किया गया व्यग्य। कुकुरमुत्ता' जैसी अनर्गलता यहाँ नहीं है, यहाँ व्यंग्य का प्रवाह थम-थम कर चलता हुआ जड़ किनारे को कमजोर बनाता हुआ चल रहा है।

"देवी सरस्वती" कविता 'नये पत्तें' का नगीनाहै, यह मिल्टन के 'लालैग्रो' L'Allegio नामक कविता की पद्धति पर है जिसमें ग्रामीण जीवन व शहरी जीवन के दो प्रत्यन्त यथार्थ और सुन्दर चित्र दिये गये हैं, मिल्टन ने जुते हुए खेत, दूध बेचने वाली स्त्रियों के गाने, भेड़ गिनते हुए गड़रिये, तिनके चुनती हुई भेड़ों के समूह, घास के मैदान, उथले नाले, घने वृक्ष आदि का वर्णन करके ग्राम-जीवन का चित्र दिया है।

From the side of some hoar hill
Through the high wood, echoing shrill.

× × × ×

While the ploughman, near at hand
Whistles over the furrowed land
And the milk-maid Singeth blithe,
And the mower whets his Scythe.

And every shephered tells his tale,
Under the haw - thorn in the dale †

'देवी सरस्वती' में शहर का चित्र नहीं है अतः जिन विरोधी चित्रों द्वारा मिल्टन अधिक सौन्दर्य दिखेर सके हैं वह निराला में नहीं मिलता परन्तु मिल्टन से निराला का ग्राम-जीवन का चित्र निश्चित-रूपेण कहीं अधिक पूर्ण और सुन्दर है। निराला तो इस कविता में बिजली से झुलसी हुई शहर की जनता को देवी सरस्वती का निवास गृह नहीं बना सकता, वह तो सरस्वती का निवास गृह उस ग्राम-जीवन को बनाता है जहाँ—

डाले बीज चने के, जौ के और मटर के।
गेहूँ के, अलसी राई—सरसों के, कर से
सुख के आँसू, दुखी किसानों की जाया के।
भर आये आँखों में, खेती की माया से
हरी भरी खेतों की, सरस्वती लहराई।
मग्न किसानों के घर, उन्मद बजी बधाई।

खुली चाँदनी में डफ और मजीरे लेकर।
बैठे गोल बाँधकर, लोग बिछे खेतों पर॥
कतकी में गंगा नहान की बढ़ी उमंगें।
सजी गाड़ियाँ, चले लोग, मन चढ़ती चंगें॥

'देवी सरस्वती' में षडऋतुओं का चित्र अत्यन्त ही यथार्थमय और मनोरम है। आगे कवि ने आदि काल से आज तक वाणी का विकास विभिन्न साधकों के रूप में दिखाया है वाल्मीकि से कबीर और दादू तक और अन्त में वंदना की है—

तुम्ही चिरन्तन जीवन की उन्नायक, भविता।
छवि, विश्व की मोहिनी, कवि की मनयता भविता॥"

† Milton in L'Allegro.

'तिलांजलि' में पं० जवाहरलाल नेहरू के बहनोई की मृत्यु का चित्र है और रामकृष्ण परम हंस पर एक कविता है, "छलाँग-मारता गया", 'डिप्टी साहब आये' में जमीदारों, पुलिस वालों के आतंक पर व्यंग्य है। "महँगू महँगारहा" में नेताओं पर बड़ा चुभता हुआ व्यंग्य है। 'कुकुरमुत्ता' से 'नयेपत्ते' के प्रयोग अधिक स्वस्थ, व्यंजना मय, संतुलित और मर्म स्पर्शी है। कांग्रेस के सर्व श्रेष्ठ नेता पं० नेहरू पर यह व्यंग्य देखिये—

आज कल पंडित जी देश में विराजते हैं—
कुइरीपुर गाँव में व्याख्यान देने को
आये हैं मोटर पर,
लन्दन के ग्रेजुएट
एम० ए० और बैरिस्टर
बड़े बाप के बेटे
बीसियों भी पर्तों के अन्दर, खुले हुए।
राजों के बाजू-पकड़, बाप की वकालत से,
लेडी जमीदारों को आँखों तले रक्खे हुए
मिलों के मुनाफे खाने वालों के अभिन्न मित्र
देश के किसानों, मजदूरों के भी अपने सगे
विलायती राष्ट्र से समझौते के लिये।
गले का चढ़ाव बोजुआजी का नहीं गया।
× × × ×
देशी और विलायती तरह-तरह की शराब
चलती है मुल्क में,
फिर भी आजादी की हाँक का नशा बड़ा
लोगों पर चढ़ता है
विपत्तियाँ बड़ी है घूँस और डंडे की
उनसे बचने के लिये

राखा निकाला है, सभाओं में आते हैं
गाँव के लोग कुल।

× × × ×

जनता मंत्र मुग्ध हुई
जमींदार भी बोले, जेल हो आने वाले
काँग्रेसी-उम्मीदवार, सभा विसर्जित हुई

यह व्यंग्य कविता सन् १९४६ में प्रकाशित हुई है, उस समय किस प्रकार देश का नेतृत्व उच्चमध्य वर्ग के समृद्ध लोगों के हाथ में था और किस प्रकार भीतर ही भीतर गन्दगी से भरे हुए, और ऊपर से "क्लीन शेवड" नेता लोग जनता को धोखा दे रहे थे, सुधारों के नाम से किस प्रकार उसे प्रवंचित कर रहे थे, किस प्रकार जनता की क्रान्ति को दबा कर 'जनतंत्र' का खेल रच रहे थे यह स्पष्ट है। त्याग और देशभक्ति का जेल से प्रमाण पत्र लेने वाले जमींदार और वकील-बेरिस्टर-नेता किस प्रकार क्रान्ति को टाल कर, अपने नेतृत्व को बचाने की धुन में थे क्योंकि उन्हें भय था कि यदि जनता की क्रान्ति (People Revolution) हो गई तो उनके स्वार्थ की पूर्ति न हो सकेगी। 'निराला' ने इन दाम्भियों को पहचाना और उक्त कविता में उसका चित्र खींचकर, बूर्जा नेतृत्व के पतन की ओर स्पष्ट इंगित किया है। क्रान्ति-कारियों के लिये कवि कहता है—

हमारे अपने हैं यहाँ बहुत छिपे हुए लोग
मगर चूँकि अभी ढीला-पोला है देश में
अखबार व्यापारियों ही की सम्पत्ति हैं,
राजनीति कड़ी से कड़ी चल रही है
वे सब जन मौन हैं, इन्हें देखते हुए
अब ये कुछ उठेंगे
और बड़े त्याग के निमित्त कमर बाँधेंगे।
आयेंगे वे जनभी, देश के धरातल पर

अभी अखबार उनके नाम नहीं छापते
ऐसा ही पहरा है
× × × ×
बड़े बड़े आदमी धन, मान छोड़ेंगे
तभी देश मुक्त है।

कवि के "विचार और विकास" में हमने दिखाया है कि किस प्रकार ३९-४० से ४३ तक का युद्ध काल कवि के लिये संकट का समय रहा, इन दिनों कवि को 'करवी', 'उन्नाव' भागना पड़ा उसके मस्तिष्क में भी कुछ असंतुलन आगया, निराशा और विषाद का स्वर भी बढ़ गया जो हम बेला के गीतों में देख चुके हैं, अतः 'कुकुरमुत्ता' में यदि घोर प्रतिक्रिया के दर्शन होते हैं और यदि उसके व्यंग्यों में उतनी सफलता नहीं मिलती, तो यह स्वाभाविक ही है, सन् ४६ की कविताओं को देखने पर स्पष्ट हो जाता है कि कवि पहले से कहीं अधिक कला के प्रति सजग हो गया है अतः 'नयेपत्ते' के नवीन व्यंग्य अत्यधिक चुभने वाले और वीभत्सता से रहित हैं।

'व्यंग्य' के लिये विवरण उतना आवश्यक नहीं है जितना 'संकेत-व्यापार' है, जिस रचना में जितनी अधिक व्यंजना होगी उतनी ही अधिक वह चुभन उत्पन्न करेगी, इसका अर्थ यह नहीं कि कोई बात प्रत्यक्षतः कही ही न जाय, बल्कि इसके विपरीत यथार्थ को चित्रित करने वाला साहित्य तो अभिधा शक्ति के प्रयोग द्वारा ही सफल हो सकता है क्योंकि रचयिता पाठक पर विद्वत्ता या कला का चातुर्य न दिखा कर उससे सत्य की व्यंजना कराना चाहता है। नये पत्तों में "महँगू महँगा रहा" में अभिधा पद्धति पर ही विवरण दिया गया है, सभा, व्याख्यानदाताओं आदि का। परंतु नेताओं को सीधी गालियाँ देने से काव्य, काव्य न होकर सस्ता पार्टी प्रचार हो जायगा, काव्य का कार्य है प्रेरणा उत्पन्न करना, भावोन्मेष करना, यह तभी होगा जब कवि किसी सत्य को

सम्मुख रखकर पाठक के भाव को स्पर्श करे, कोरी पटेबाजी काम नहीं देगी, अतः हंस की वे कवितायें जिनमें पूँजीपतियों को "हरामी, उल्लू के पट्ठे, कीड़े" आदि की उपाधियों से विभूषित कर देना ही प्रगति-काव्य की इति श्री समझी जाती थी, अपनी मर्म स्पर्शिता खो बैठीं, महगू महँगा रहा, या झींगुर डट कर बोला, आदि में संकेतात्मकता का मिश्रण है अतः व्यंजना से पाठक के मन में व्यवस्था के प्रति घोर विद्रोह उत्पन्न होता है यथा—

आजकल पंडित जी देश में विराजते हैं—
माता जी को स्वीजरलैण्ड के अस्पताल में
तपेदिक के इलाज के लिये छोड़ा है
बड़े भारी नेता हैं

उक्त पंक्तियों को यदि इस प्रकार कहा जाता, तो इसका प्रभाव उल्टा भी पड़ सकता था—

यह पंडित कहलाने वाला उल्लू का पट्ठा,
भक्त है अँगरेज कुत्तों का,
यह विदेशी शिक्षा दीक्षा में दीक्षित है—
अपने देश को यह नहीं जानता
खूब धनी मानी है यह,
यह कम्बख्त इलाज करवाता है,
अपनी माँ का
स्वीटजरलैण्ड के अस्पतालों में
और यहाँ बन गया है भाग्यविधाता,
पूरा चार सौ बीस है यह।

किन्तु 'आजकल पंडित जी देश में विराजते हैं' में एक लम्बी अर्थ परम्परा छिपी हुई है अर्थात् पंडित जी (अपंडित जी) वैसे तो इंगलैंड में ही रहते हैं परन्तु कृपाकर आजकल अपने देश की ही शोभा बढ़ा रहे हैं अथात् यह पंडित कहलाने वाले महाशय देश के

नेतृत्व के लिये अयोग्य हैं, ये देश को नहीं जानते, निम्न वर्ग का ही सर्व श्रेष्ठ व्यक्ति उसका नेता हो सकता है।

'अणिमा' में पुनः कवि नूपुर के स्वरो का अभिनन्दन करता है। 'अणिमा' में वैष्णवीय भावुकता का प्राधान्य है। निराला 'मुक्ति' के गीत गाने वाला कवि है, मनुष्य की सामाजिक, आर्थिक स्वतन्त्रता का प्रश्न उपस्थित होने पर वह "महँगू महँगा रहा" लिखता है, जिसमें क्रान्ति के आतंक से प्रवंचकों को सावधान करता है, यह 'मुक्ति' के लिये उसका स्थूल धरातल है, स्थूल धरातल पर कवि की भाषा भी सरल, मुहावरेदार, वार्तालाप मय हो जाती है कविता में अभिव्यक्त 'सत्य' को छोड़कर अन्य कोई शृंगार वह अपनी वाणी का नहीं करता न कल्पना का लदाव, न उपमानों और प्रतीकों का तूफान। अप्रस्तुत विधान की प्रवृत्ति में यदि सुकरात को 'दादुर' और सिपाही को ज्वार का पौधा बनना पड़े तो वह भी स्वाभाविक है, यह कवि का वह प्रयास है जो वह समूह की मुक्ति के लिये, स्थूल धरातल पर करता है, "कुकुरमुत्ता से लेकर नये पत्ते तक" विभिन्न व्यग्य गीत इसी दृष्टि से लिखे गये हैं।

कवि की 'मुक्ति' का दूसरा स्वरूप है "आत्यतिक-मुक्ति" जो उसे परम-प्रिय दार्शनिक-विचार-धारा से प्राप्त हुई है और जिसे कवि आज तक नहीं छोड़ सका, एक परमचेतना मे, एक निर्विकार स्थिति में उसे दृढ़ विश्वास रहा है अतः कवि का दुहरा व्यक्तित्व हमें दिखाई पड़ता है एक तो आत्मवादी निराला का, दूसरा प्रगति-वादी निराला का, हमने पीछे यह दिखाया है कि निराला में न तो प्रगतिवादी विचारधारा, आत्मवाद की बाधक है, जैसी कि प्रायः समझी जाती है, और बहुतो के लिये है भी, और न आत्मवादी-विचारधारा प्रगति-साहित्य के लिये बाधक है। कम से कम निराला के विषय में यह ठीक है, डा० रामविलास शर्मा ने तो कह दिया कि वह व्यक्ति अद्वैतवादी हो ही नहीं सकता जो समाज को ताल ठौंक कर ललकारता है, परन्तु ऐसा कहना साहस

का कार्य है। हमने दिखाया है कि किस प्रकार मुक्ति के लिये, प्रेम-विह्वल निराला 'विराट' के पगों में अपना आत्म-समर्पण करता है और साथ ही साथ सामाजिक अन्याय के विरुद्ध ताल ठोंक कर ललकारता भी है, उसकी Subjectivity अन्तर्मुखी प्रवृत्ति उसके Objective Struggle बाह्य संघर्ष को एक ओर फेंक देने के लिये विवश नहीं करती, रहा प्रेरणा के लिये स्रोत की बात, उसके लिये कबीर, दादू व सिद्धों को देखना चाहिये, सब ने 'रहस्य' 'शून्य' आदि को माध्यम बना कर अपना विद्रोह का स्वर प्रकट किया है अतः एक ही संग्रह 'अणिमा' व 'अर्चना' आदि में हम दोनों प्रकार के गीत देखते हैं (१) आध्यात्मिक गीत (२) जन-वादी गीत।

आध्यात्मिक गीतों में कहीं भक्त हृदय की विह्वलता है जो विशुद्ध वैष्णवीय पद्धति पर है, और कहीं विशुद्ध वेदान्ती ज्ञान की गुंजार-कहीं दोनों एक ही गीत में—

उन चरणों में मुझे दो शरण।
इस जीवन को करो हे वरण
आगे पीछे, दायें बायें,
जो आये थे, वे हट जायें
उठे सृष्टि से दृष्टि, सहज में—करूँ लोक आलोक—'संतरण"

यहाँ भक्ति विह्वलता भी है और महामिलन की अभिलाषा भी

विशुद्ध मुक्ति का स्वरूप— नयनों के हो साथ फिरे वे,
मेरे घेरे नहीं घिरे वे
तुमसे चल तुममें ही पहुँचे,
जितने रस आनंद रहे।

× × ×

मैं बैठा था पथ पर,
तुम आये चढ़ रथपर
उतरे, बढ़ गही बाँह
पहले की पड़ी छाँह

शीतल हो गई देह
बीती अविकथ पर

कहीं लोक जीवन में अपने मन को स्खलन से बचाने की प्रार्थना है—

दलित जन पर करो करुणा।
दीनता पर उतर आये
प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरुणा।
देख वैभव न हो नत-सिर।
समुद्धत-मन सदा हो स्थिर,
पार कर जीवन निरंतर,
रहे बहती भक्ति-वरुणा ।

"तुम्हें चाहता वह भी सुन्दर" गीत में भिखारी को भी मुक्ति की कामना है, यह बताया गया है। उक्त गीतों के अतिरिक्त संत-रविदास, बुद्ध, प्रसाद, महादेवी, आचार्य शुक्ल, विजय लक्ष्मी पंडिता आदि की स्तुतियाँ हैं, इनमें बुद्ध की स्तुति में कवि ने जड़-वाद की घोर निन्दा की है।

भिडे राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विलक्षण
हँसते हैं जड़वाद ग्रस्त, प्रेत ज्यों परस्पर,

'सहस्राब्दि' (विक्रमीय प्रथम १००० सम्वत) में कवि ने भारतीय-समाज का विश्लेषण प्रस्तुत किया है, निराला को आर्य दर्शन व आर्य संस्कृति पर बराबर आस्था रही है, वह भी dogma के रूप में नहीं, जीवन की महानता के लिये प्रेरणा के रूप में वे उसके गायक रहे हैं। इस विश्लेषण में आर्य-निष्ठा ही अधिक अभिव्यक्त हुई है, कवि ने व्यक्तियों के आधार पर सामाजिक विकास का क्रम दिखाया है, उत्पादन के साधनों ने किस प्रकार विभिन्न विचार-धाराओं को प्रश्रय दिया है, वर्ग संघर्ष ने—वर्ण सघर्ष ने किस प्रकार समाज का रूप निर्मित किया, यह कवि की दृष्टि से ओझल रहा इसीलिये उसे न तो बौद्धों का क्रान्तिकारी रूप ही दिखाई पड़ा

न शंकराचार्य के दर्शन का वह प्रतिक्रियावादी रूप, जिसमें दृश्य जगत की सत्ता को ही अस्वीकार कर दिया था, 'उद्‌बोधन' नामक कविता में अवश्य कवि ने समाज के विकास क्रम का अंत 'मानवता-वाद' में दिखाया है और सारे वर्णो, वर्गों का अन्त अवश्यम्भावी बताया है।

नहीं आज का यह हिन्दू
आज का यह मुसलमान
आज का ईसाई सिक्ख
आज का यह मनोभाव
आज की यह रूपरेखा
नहीं यह कल्पना
सत्य है मनुष्य का
मनुष्यत्व के लिये
बन्द हैं जो दल अभी
किरण सम्पात से
खुल गये वे सभी ॥

'अणिमा' में कुछ शुद्ध यथार्थवादी चित्र भी हैं, एक चित्र देखिए-

सड़क के किनारे दूकान है।
पान की, दूर इक्कावान है
घोड़े की पीठ ठोंकता हुआ,
पीर वरुण एक बच्चे को
दुआ दे रहा है.........

अणिमा मे अन्तिम 'संग्रहीत' गीत में 'दानास्तवन' है, उपनिषदों ने भी अन्न को ब्रह्म मानकर स्तवन किया था, यहाँ कवि ने व्यंग्य के रूप समाज के सारे सम्बन्धों का आधार 'दाना' को बताया है—

चूँकि यहाँ दाना है
इसलिये दीन है, दीवाना है

लोग हैं, महफिल है
नग्मे हैं, साज है, दिलयार है और दिल है,
शम्मा है परवाना है—
चूँकि यहाँ दाना है।

'अर्चना' में भी कुछ आत्मवादी और 'कुछ' 'जनवादी' गीतों का संग्रह है, कहीं निर्विकार के प्रति आत्मनिवेदन, कहीं उसी के प्रति विद्रोह, कहीं अनुभूति के ऊर्ध्व रनगों की झलक, प्रणय-मनुहार, कहीं प्रत्यक्ष स्थूल श्रंगारिक चित्रण, कहीं शुद्ध-सौष्ठवयुक्त, सुगठित पदावली, कहीं प्रयोगों के विचित्र झूलों पर झूलती भाषा।

तिमिरदारण मिहिर दरसो
ज्योति के कर अन्ध कारा—
गार जग का सजग परसो

× × ×

यह घाट वही जिस पर हँसकर
वह कभी नहाती थी हँस कर
आँखें रह जाती थीं धँस कर
कँपते थे दोनों पाँव बन्धु !

निराला और रहस्यवाद

Mysticism शब्द My से बना है, जिसका अभिप्राय गुप्त रखना या मौन हो जाना होता है प्राचीन युग में बाह्य, आचार प्रधान साधनाओं की प्रतिक्रिया में गुह्य साधनाओं का जन्म हुआ, आत्म अनुभूति के लिये आगे चल कर Mysticism शब्द रूढ़ हो गया। रहस्यवाद को कोई सिद्धान्त मानता है, कोई केवल मानसिक स्थिति मात्र, किन्तु प्रायः सभी ने ईश्वर के साथ आत्मा के रहस्यमय सम्बन्ध पर जोर दिया है। 'रहस्यवाद' वस्तुतः एक मानसिक स्थिति विशेष❋ से सम्बन्ध रखता है, 'रहस्य' को अभिव्यक्ति के पतले सूत्रों मे नहीं बाँधा जा सकता, फिर भी इस स्थिति की ओर सफल संकेत अवश्य किये जा सकते हैं। सृष्टि के इस अखिल प्रसार में मनुष्य किसी सृष्टा की कल्पना सहस्रों वर्षों से करता आया है, मनुष्य प्रकृति को सर्वजयी सत्ता को देखकर उसके परे एक 'पुरुष' की कल्पना को अपना सबसे बड़ा प्रलोभन तभी से समझने लगा। इस कल्पना मे एक "महान्" के अस्तित्व का विश्वास था जो पूर्ण सर्वशक्तिमान," नियामक, भोक्ता, भर्त्ता और कर्त्ता था, वह सृष्टि के पूर्व भी था, पश्चात् भी रहेगा, वर्तमान में भी है, वही आदि अन्त और मध्य है, वही गति, अगति और गंतव्य है, वही हिरण्यगर्भ, सविता, पूषा, विराट और विभु है, ईश्वर है। सृष्टि विकास का अन्य कोई समाधान न पा सकने के कारण उस परम शक्ति की इच्छा मात्र से सृष्टि का विकास

❋ Mysticism is, in truth a temper rather than a doctrine, an-atmosphor rather a system of philosophy.

हुआ, माना गया+ मूल प्रकृति का प्रथम रूप आकाश (Ether) हुआ, आकाश मे वायु, उससे तेज, तेज से जल और जल से पृथ्वी का जन्म हुआ, प्रत्येक तत्व की अनेक प्रकृतियाँ बताई गईं यथा आकाश की प्रकृतियाँ हैं—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, अतःकरण।

वायु	की प्रकृतियाँ हैं	—प्रान, अपान, समान, उदान, व्यान
तेज	,, ,,	—आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा
जल	,, ,,	—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध
पृथ्वी	,, ,,	—हाथ, पर, मुख, गुह्य, लिंग

किन्तु आखिर यह सब सृष्टि प्रसार क्यों? इसका उत्तर उपनिषद् ने दिया है और 'रहस्यवाद' का यही मूल भी है, ऐतरेय उपनिषद् मे कहा गया है कि सृष्टि का विकास करके सृष्टा ने सोचा कि यह (पिण्ड) मेरे बिना कैसे रहेगा? इस देह रूप संघात के परम प्रभु और अधिष्ठाता मुझे भी इसके पाप पुण्य के फल के साक्षी और भोक्ता रूप से स्थित होना चाहिये, इस प्रकार विचार कर वह परमेश्वर इसके मूर्धा को विदीर्ण कर शरीर में प्रवेश कर गया, यही जीव है, पिण्ड में परमेश्वर की प्रवेश-कहानी प्रायः अर्थवाद के रूप मे ली जाती है, अभिप्राय यही है कि जो अनत, दिव्य, परमात्मा है, जगत का सृष्टा है वही शरीर में स्थित आत्मा भी है, पिण्ड-स्थित आत्मा और ब्रह्माण्ड स्थित परमात्मा में कोई अन्तर नही है, आत्मा व परमात्मा दो नही एक तत्व हैं, द्वैत नहीं है, यहाँ अद्वैत है, इस प्रकार जिज्ञासा के परिणाम स्वरूप जगत के मूल पर पहुँच कर दार्शनिकों ने उस परम सत्व की विद्यमानता की कल्पना की और जीव व ब्रह्म की एकता घोषित की।

+ ॐ आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्। नान्यत्किंचन मिषत्। स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति, पहले यह जगत एक मात्र आत्मा ही था, उसके सिवा और कोई सक्रिय वस्तु नहीं थी, उसने यह सोचा कि लोकों की रचना करूँ। ऐतरेयोपनिषद

यह जो शरीर स्थित आत्मा है यद्यपि साक्षीभाव से ही पिण्ड में रहता है तथापि महा-भूतों के बन्धन में उस पर जब अज्ञान का पर्दा पड़ जाता है तब वह यह भूल जाता है कि "मै ब्रह्म हूँ" जीव को इसी ज्ञान को देन के लिये ब्रह्म विद्या है, इस ज्ञान क पश्चात् आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाती है और शराब और पानी की तरह जीव व ब्रह्म की एकता हो जाती है।

दर्शन के द्वारा इस प्रतिष्ठित सत्य में निम्नलिखित सूत्र महत्व-पूर्ण हैं।

१—यह जगत है।

२—इस जगत के परे कोई शक्ति अवश्य है।

३—वह शक्ति जगत में भी व्याप्त है।

४—पिण्ड-स्थित आत्मा, देहादि के बन्धन से अपने स्वरूप को भूल गई है।

५—जीवन का उद्देश्य यह है कि 'आत्मा' उस परम आत्मा में मिलकर एक हो जाये, देहादि के बन्धन से मुक्ति मिले।

ज्ञान ने सत्ता का अस्तित्व तो बताया परन्तु जो साधना, निष्काम-भावना, तटस्थता, सन्यास, तपस्या आदि के मार्ग सुझाये वे क्रियात्मक मार्ग थे, भावानात्मक नहीं, क्रिया जड़, एक रस, यंत्र-वत् होती है, भावना का राज्य सरस, मनोरम, मर्मस्पर्शी होता है, ज्ञान ने जिस अचित्य की सत्ता निर्घोपित की, भाव ने उसे विविध सम्बन्धों में बाँधना प्रारम्भ कर दिया, उस दिव्य सत्ता से जो सम्बन्ध 'भावना' के आधार पर स्थापित किये गये और उनको अभिव्यक्त करने के लिये जिस वाणी का विधान हुआ, उसी को रहस्यवाद (Mysticism) की संज्ञा प्राप्त हुई। यहाँ किंचित भ्रम-निवारण की आवश्यकता है, शुक्लजी ने लिखा है कि ज्ञान के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है इस सूत्र की व्याख्या जैसे हमने ऊपर कर दी है परन्तु 'भावना' में ज्ञान का स्पर्श न हो यह असम्भव है यह अवश्य है कि रहस्यवाद

में 'कल्पना' और हार्दिक भावनाओं के प्रक्षेपण का कार्य अधिक रहता है, अनुभूति प्रबल होती जाती है और साधक सामान्य अनुभवों से ऊपर उठ कर जिन दिव्य-स्पर्शों का अनुभव प्राप्त करता है, उनको विभिन्न संकेतों से अभिव्यक्त करता है, किन्तु प्रारम्भिक सोपानों में ज्ञान भावना के दृढ़ करने के लिये साथ साथ चलता है इस दृष्टि से रहस्य-वादियों में कई भेद हो जाते हैं, (१) चिन्तन प्रधान (२) भाव प्रधान। चिंतन-प्रधान रहस्यदर्शियों में हम निराला, प्रसाद व कबीर को ले सकते हैं यद्यपि भावना का पक्ष भी कबीर में है। (२) भाव प्रधान रहस्यवादियों में मीरा, महादेवी आदि हैं। तीसरी कक्षा—साधनात्मक रहस्यवाद की है जिनमें कबीर व हठयोगियों के वे पद हैं जो विभिन्न चक्रों आदि से सम्बन्ध रखते हैं।

सोपानों की दृष्टि से रहस्यवाद में कई स्थितियाँ बताई जाती हैं।

(१) जिज्ञासा की स्थिति—

कौन तुम शुभ्र किरण-वसना ?
सीखा केवल हँसना केवल हँसना-
रूप राशि में टलमल-टलमल,
कुन्द धवल दशना।

जिज्ञासा की स्थिति में 'दर्शन' और रहस्य की ओर ले जाने वाली विभिन्न स्थितियाँ रहती हैं, जगत, जीव, ब्रह्म की सत्ता के सम्बन्ध में विचार कौतूहल, आनन्द का प्रकटीकरण कवियों व दार्शनिकों द्वारा होता रहता है।

निराला में यह 'चिंतन प्रधानता' अधिकता से मिलती है, यहाँ जिज्ञासा का अर्थ स्पष्ट समझना होगा, जिज्ञासा जानने की इच्छा का नाम है न कि 'संदेहवाद' का पर्याय। संदेहवाद (Scepticism) एक अलग ही दर्शन है जिसे इंग्लैंड में 'ह्यूम' जैसे दार्शनिकों ने आगे बढ़ाया था। 'जिज्ञासा' को व्यापक मान कर ही हमने रहस्यवाद की प्रथम श्रेणी के रूप में उसे स्वीकार किया है,

इसमें ब्रह्म विषयक जिज्ञासा भी रहती है, और उससे जनित कौतूहल, विस्मय और आनन्द की व्यंजना भी इसी स्थिति में प्रायः कवि या साधक के मन में उस चेतना के प्रति विश्वास जग उठता है। अतः आगे की स्थिति में उस चेतना में लय होने के लिये आत्मा विकल हो उठती है अतः दूसरी स्थिति हम विरह की स्थिति मान सकते हैं, इस स्थिति में सारे विश्व में एक ही चेतना के दर्शन होने लगते हैं।

(२) विरह की स्थिति—

प्राणधन को स्मरण करते।
नयन झरते, नयन झरते॥

× × × ×

कितनी बार पुकारा
खोल दो, द्वार, बेचारा

(३) मिलन की अवस्था—विरह व मिलन की अवस्थाओं को हम एक साथ भी रख सकते है और अलग-अलग भी, प्रायः कवि के मन में कभी विरह-जन्य विकलता अंकुरित होती हैं और कभी किन्हीं विरल मधुमय क्षणों में उस चेतना का मधुर स्पर्श भी होता है अतः कभी विरह की आर्त पुकार रहस्यवादी में मुखर होती है और कभी मिलनावस्था के आनन्द की गुंजार। परन्तु साधना की अन्तिम परिणति तीसरी अवस्था में है जब कवि की अनुभूति पूर्ण हो जाती है और कवि का मन अत्यन्त ऊर्ध्व-स्थिति में पहुँच कर रम जाता है तो वह पुनः विरह के गीत न गाकर उस आत्म-परमात्म मिलन की अवस्था में आई हुई अनुभूतियों का चित्रण करता है। मिलन के पश्चात् दुःख व विरह कैसा?

'निराला' के रहस्यवाद में प्रथम और तीसरी स्थितियों का वर्णन अधिक है, जो कवि तत्वतः वेदान्ती है, आत्म व परब्रह्म की एकता में विश्वास करता है जो चिन्मय अखण्ड ज्ञान राशि की ओर सतत उन्मुख है उसे विरह क्या? इसीलिये निराला ने "कला

में विरह और जोशी बन्धु" नामक प्रसिद्ध लेख में श्री इलाचन्द्र जोशी के इस विचार का खण्डन किया है कि कला के लिये विरह कोई आवश्यक शर्त है। निराला में या तो "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" प्रधान चिन्तन मिलता है जिसमे भावना के स्थान पर ज्ञान-जन्य प्रकाश की किरणें विकीर्ण की गई है या आत्यंतिक स्थिति के अनुभवों का अंकन किया गया है।

हम यहाँ दोनों स्थितियों के उदाहरण प्रस्तुत कर आगे बढ़ते हैं—

चिन्तन प्रधान—

रे अपलक मन
पर - कृति में धन आपूरण
दर्पण बन तू मसृण सुचिक्कण
रूप हीन सब रूप बिम्ब धन।
जल ज्यों निर्मल, तट-छाया घन
किरणों का दर्शन

मिलनावस्था— स्पर्श से लाज लगी

× × × ×

नयनों का नयनों से बन्धन
काँपे थर, थर, थर, थर, तन

× × × ×

लाज लगे तो जाओ
तुम जाओ

अनुभूति की इन स्थितियों के विवेचन के साथ उस दिव्य सत्ता से आत्मा का जो सम्बन्ध होता है उसके रूप पर भी विचार कर लेना होगा। सामान्य रूप से ब्रह्म के साथ किसी प्रकार का कोई भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित करना रहस्यवाद के अन्तर्गत ही आता है, इस दृष्टि से तुलसी, सूर आदि भक्त कवि भी रहस्यवाद के अन्तर्गत आते हैं परन्तु भक्ति सम्प्रदाय में ब्रह्म निराकार नहीं रह जाता, वह अव्यक्त रहस्य न रहकर नर रूप में व्यक्त हो जाता

है अतः उसके साथ जो सम्बन्ध स्थापित होगा, उसमें किसी प्रकार के रहस्य का स्थान न होगा यथा तुलसी का राजा राम के साथ या सूर का बाल-कृष्ण के साथ। परन्तु सिद्धों व सन्तों ने जिस ब्रह्म के साथ आत्मा का संबंध जोड़ा है वह निराकार, अव्यक्त और अरूप है अत वह रहस्य की श्रेणी में आता है अरूप विषयक अनुभूति को भी 'सैना, बैना' के रूप में प्रकट किया गया है क्योंकि उसका आधार स्पष्ट न होने से अनुभूति भी धुँधली, अस्पष्ट एवं सर्वसाधारण के लिए अनुभव गम्य नहीं रह जाती। अत. सन्तों व सिद्धों ने जहाँ साधनात्मक रहस्यवाद का वर्णन किया है वहाँ कुण्डलिनी, चक्र आदि के लिए सर्पिणी, कमल आदि प्रतीक लिए हैं और जहाँ भावनात्मक रहस्यवाद का वर्णन किया है वहाँ ब्रह्म को पुरुष और आत्मा को नारी माना है। रवीन्द्र, निराला, पन्त, महादेवी, आदि में भी आत्मा को पत्नी मान कर ही रहस्य की व्यंजना की गई है। 'रवीन्द्र' में 'रहस्य' व 'आत्मा' के बीच में, योरोप की नकल पर एक 'मध्यस्थ' की कल्पना की गई है परन्तु कबीर, निराला आदि में आत्मा का परमात्मा से सीधा सम्बन्ध जोड़ा गया है।

निराला की नारी (आत्मा) रहस्य की स्थिति में देहादि के बन्धन में रहकर भी, पूर्णरूपेण सजग, तात्विक ज्ञान सम्पन्न विदुषी है वह संसार के असार और ब्रह्म के अस्तित्व को समझकर प्रकाश के परिधान में अभिसार के लिए चलती है, भावना की उच्छृंखल आँधी वहाँ नहीं है, चरम-स्थिति के पूर्व गम्भीर चिन्तन ने निराला की नारी (आत्मा) को एक अद्भुत संतुलन और सामंजस्य दे दिया है। वह प्रियतम के स्पर्श-जन्य आनंद का अनुभव अधिक करती है, अज्ञान व अन्धकार को चुनौती देती है, विरह में आंसू कम बहाती है और सबसे बड़ी बात यह है अपनी 'दुर्बलताओं' का उल्लेख सबसे कम करता है। पन्त, बच्चन और महादेवी में आह उच्छ्वास, पीड़ा, क्रन्दन-आँसू प्रलाप के ही अधिकता

भण्डार खुले हुए हैं, वे निराला में अपेक्षाकृत बहुत कम पाये जाते हैं निराला ने प्रकृति में अनन्त प्रिया के भी दर्शन किये हैं, तरंगों के संचालन, विद्युत की चमक व पुष्प हास में उस अनन्त-मुखी सत्ता का आभास भी उन्होंने देखा है परन्तु कहीं भी उस दिव्य-भाव की रक्षा से वे विरत नहीं हुए, निराला के रहस्यवाद में सामान्य भावनाओं का 'दैवीकरण' अत्यन्त ऊर्ध्व स्थिति पर हुआ है, यद्यपि इस कारण उनकी अनुभूति असाधारण और चिंतन से भाराक्रान्त रहती है जो उनके प्रेम-गीतों को सहज नहीं रहने देती परन्तु उस चिरन्तन सत्ता को नारी या प्रियतम बनाकर जो भाव प्रकट किये गये हैं, उनमें कामुकता का प्रवेश नहीं हो पाया यद्यपि कवि ने निस्संकोच रति क्रीड़ा तक के चित्रण किये हैं परन्तु जैसे 'सूर' में रति-क्रीड़ा के चित्रणों तक में उनके 'कृष्ण' रीतिकाल के कृष्ण नहीं हो जाते, वे बराबर परात्पर ब्रह्म ही बने रहते हैं, उसी प्रकार निराला के प्रेम-रहस्य के गीतों में, रति-क्रीड़ा के नग्न वर्णनों में भी स्पृहणीय तटस्थता मिलती है, जैसी कबीर में, क्योंकि पाठक का मानसिक-स्खलन तो तभी होता है जब कि कवि के रहस्य संकेत, रहस्य की व्यंजना न कर, रूपक व प्रतीक का पद खोकर, लौकिक वासना के व्यंजक बन जाते हैं, सूफियों में यह तटस्थता बहुत कम मिलती है। निराला के ऐसे स्थलों में प्रायः यह प्रवृत्ति रहती है कि ऐसे नग्न चित्रणों को वे कुछ एक पंक्तियों तक ही रखते हैं और उनके आगे पीछे चिंतन व प्रतीक का दार्शनिक वातावरण रहता है अतः पाठक का मन भ्रान्त नहीं हो पाता।

पद्धति की दृष्टि से निराला के रहस्यवाद में वेदान्त-वादी धारा को मुखरित किया गया है। उनके इस प्रकार के काव्य की दुरूहता का कारण उनका 'उलटा जाप' नहीं, गम्भीर दार्शनिकता है जो भावना में रहकर भी, भाव में घुल-मिल नहीं पाई, निराला की चिंतन प्रधान कविताओं का मुख्य दोष बौद्धिकता की प्रबलता और भावना का अपेक्षाकृत अभाव है। एक स्थविर बौद्धिक वाता-

वरण में काव्य सिसकता सा जान पड़ता है। अतः पौरुष व ओज जहाँ काव्य को प्रकाश व पुरुषार्थ की सीढ़ियों पर हमें खड़ा करता है वहाँ इसमें मसृणता और गुदगुदाहट का अभाव है। यह स्थिति तब और भयावह हो उठती है जब कवि जगत, जीव व ब्रह्म की बौद्धिक व्याख्या पर उतर आता है यथा 'जागरण' में। अस्तु;

'कबीर' में दुरूहता का कारण उनकी साधनात्मकता तथा कहने का ऊटपटाँग ढंग है। यद्यपि निराला ने भी 'भयोसिद्ध कर उलटा जापू' अपने विषय में कहा है परन्तु वे उलटबाँसियाँ नहीं बुझाते। कबीर में जिस वैष्णवीय प्रेम भक्ति का समावेश मिलता है, वह निराला में भी बराबर मिलती है। कवि ने उस अनन्त शक्ति को श्यामा, माता, जननी कहकर भी पुकारा है, यह आत्म-निवेदन का ही एक रूप है और रहस्यवाद की प्रारम्भिक श्रेणियों में आता है।

रहस्यवाद की मुख्य पहचान है 'आत्म-विसर्जन' जब कवि अपने 'स्व' का पूर्ण विसर्जन कर उस आराध्य में मिलने के लिए अग्रसर होता है तो उस समय की अनुभूतियाँ रहस्यवाद का एक आदर्श उपस्थित करती हैं। इस समर्पण की स्थिति मे हमें कई रूप मिलते हैं—एक ओर तो सूफियों के उन्माद का वर्णन मिलता है, वहाँ नशा, जख्म, वफा, वस्ल, इलहाम, का जोर अधिक है, दूसरी ओर निराला जैसे कवि हैं जो 'स्पर्श से लाज लगी' कहकर उस समर्पण की स्थिति की व्यंजना करते हैं। व्यक्तिगत निराली स्थितियों का जो वर्णन हमें सूफियों में मिलता है वह हम किसी छायावादी कवि में नहीं पाते क्योंकि ये कवि साधना की पद्धति पर न चलकर कल्पना और भावना के पथ पर चले थे, इनकी पद्धति सर्वथा भारतीय रवीन्द्र व कबीर की परम्परा में रही, सूफियों में प्रेम तत्व की प्रधानता अधिक है निराला में आध्यात्मिक तत्व की। प्रेम के उन्माद में किसी छायावादी रहस्यवादी को मूर्च्छा या हाल नहीं आते, उनमें ऊब डूब उतनी नहीं जितना बौद्धिक

सजगता और कल्पना का प्रसार मिलता है। छायावादी कवियों में हृदय की आकांक्षा खुलकर 'रहस्य' के प्रति व्यक्त नहीं होती उसको अभिव्यंजना का कला-पूर्ण माध्यम स्वीकार करना पड़ता है अतः लाक्षणिकता की प्रधानता होने के कारण उनकी अनुभूतियों में कला का उत्कर्ष तो पाया जाता है परन्तु मर्मस्पर्शिता उतनी नहीं रह जाती जितनी कबीर-मीरा आदि श्री नंददुलारे वाजपेयी जी भी निराला के काव्य का मेरुदण्ड रहस्यवाद को ही मानते हैं। "इस रहस्यप्रवाह के कारण कवि के रचित साधारण जीवन के गीत भी असाधारण आकर्षण रखते हैं, किन्तु उनके अनेकपद स्पष्टतः रहस्यात्मक भी हैं, 'अस्तातल रवि जल छल-छल छवि' जैसे पदों में रहस्यपूर्ण वातावरण की सृष्टि की गई है, 'हुआ प्रात तुम जाओगे चले' जैसे पदों में परकीया की उक्ति के द्वारा प्रेम-रहस्य प्रकट किया गया है। 'देकर अंतिम कर रवि गये ऊपर पार' जैसे संध्या के वर्णन के पद में भी प्रकृति की सौम्य-मुद्रायें और भाव भंगियाँ अंकित कर रहस्य-सृष्टि की गई है, इनसे भी ऊपर उठकर उन्होंने शुद्ध Impersonal (परोक्ष) के भी ज्योति-चित्र उपस्थित किये हैं, जैसे "तुम्हीं गाती हो अपना गान, व्यर्थ मैं पाता हूँ सम्मान" आदि पदों में। ऐसे गीतों में कतिपय प्रार्थना-परक और कतिपय वस्तु निर्देश-परक हैं, कहीं शुद्ध अमूर्त प्रकाश मात्र और कहीं मूर्त कामिनी या 'मा' आदि रूप हैं निराला जी की विशेषता इसी अमूर्त प्रकाश की अभिव्यक्त कला का अनुलेखन है।"※

किन्तु प्रार्थना-परक गीतों में जिनमें माँ आदि को सम्बोधित किया गया है, रहस्यात्मक स्थितियों की व्यंजना न होकर, रहस्यात्मक वैष्णवीय वातावरण की ही सृष्टि की गई है, स्वयं वाजपेयी जी

※ 'गीतिका' में संग्रहीत 'समीक्षा' से।

‡ देखिये 'जुही की कली' की व्याख्या 'कला और कृतियाँ' अध्याय में (इसी पुस्तक में)।

ने स्वीकार किया है कि "इनमें अनहोनी परिस्थितियाँ नहीं हैं, संयमित जीवन-सौन्दर्य का आलेखन है, यद्यपि इनमें कोई रहस्य प्रकट नहीं, तथापि रहस्यवादी कवि का स्वर सर्वत्र व्याप्त है।"

हमने बराबर दिखाया है कि निराला सुख दुःखमय चित्रों, विभिन्न कल्पनाओं, अनुभूतियों की परिसमाप्ति उस अनत चेतना में करने के पक्षपाती हैं, मूत चित्रों में भी अमूर्त का प्रतिबिम्ब निराला मे प्रायः मिलता है, 'जुही की कली' तरंगों के प्रति, संध्या सुन्दरी, आदि प्रकृति सौन्दर्य के चित्र हैं परंतु उनमें उस दिव्य झाँकी की ओर किये गये मधुर संकेत, जायसी के समान बराबर मिलते हैं उक्त कविताओ में चित्र स्थूल और क्रिया गोचरीभूत होने पर भी उनके भीतर से 'रहस्य' की प्रकाश-किरणे निकलती सी ज्ञात होती हैं जिन्हें कवि ने अपनी व्याख्याओं में स्वयं स्पष्ट किया है। ससीम में असीम की, लघु में विराट् की, मर्त्य में अमर्त्य की अभिव्यंजना निराला को रहस्यवादी कवियों में एक प्रमुख स्थान दिलाने में दूर तक सहायक हुई है। निराला जिस अनन्त प्रकाश का कवि है, जिस अपरिमेय अव्यक्त सत्ता के प्रति उसने आत्म-विसर्जन किया है वह विभिन्न स्वरों में 'जुही की कली' से लेकर अणिमा और 'अर्चना' तक अभिव्यक्त होता आया है, 'अर्चना' के गीतों में आत्म-निवेदन का स्वर मुखरित है, गीतिका में आत्म निवेदन के साथ-साथ रहस्यात्मक स्थितियों का भी, स्फुट रचनाओं में तथा उक्त पुस्तकों के अन्य गीतों में कवि की चिंतन-धारा भी रहस्य के पर्दों में लुकती-छिपती चली आई है।

हिन्दी के रहस्यवादियों को यदि समष्टि रूप मे देखें तो उनमें योरोप के रोमांटिक कवियों का प्रभाव मिलता है पर अपने ढंग पर—

योरोपीय रहस्यवादी कवि	लक्षण,	प्रभाव

१—वर्डसवर्थ	प्रकृति रहस्यवाद, (Nature Mysticism)	रवीन्द्रनाथ, पन्त प्रसाद
२—शैले (Shelley)	Love Mysticism	रवीन्द्र, महादेवी, पंत, निराला
३—कीट्स	सौन्दर्य रहस्यवाद Beauty Mysticism	पन्त

परन्तु ये प्रभाव उक्त सभी कवियों पर प्रत्यक्ष रूप से नहीं पंत, निराला व प्रसाद पर 'रवीन्द्र' तथा भारतीय रहस्यवादी कवियों का प्रभाव है, रवीन्द्र व पन्त पर प्रत्यक्ष शैले व कीट्स का प्रभाव पड़ा है। महादेवी में शैले का प्रेम-रहस्यवाद खोजा जा सकता है पर उनका पथ अपना है, 'पन्त' अवश्य योरोप से प्रभावित है। निराला को दार्शनिक प्रवृत्ति ब्राउनिंग से मिलती है पर निराला पर ब्राउनिंग का कोई प्रभाव नहीं बताया जा सकता।

'रहस्य' के साथ-साथ 'छाया' पर विचार करना स्वाभाविक है, रहस्य व 'छाया' एक ही शक्ति के पर्याय हैं परन्तु जब उनके आगे 'वाद' शब्द लग जाता है तो वे विभिन्न काव्य धाराओं के निर्देशक बन जाते हैं 'रहस्यवाद' व 'छायावाद' के सम्बन्ध में पर्याप्त विवाद उठ चुका है, इन पंक्तियों के लेखक ने भी अन्यत्र इस पर विस्तार के साथ विचार किया है* किंतु यहाँ हम स्थानाभाव से अति संक्षेप में ही विचार करेंगे।

द्विवेदी युगीन काव्यधारा की प्रतिक्रिया में जो काव्यधारा प्रवाहित हुई, उसे छायावादी काव्यधारा के नाम से अभिहित किया गया, रहस्यवादी नहीं, क्योंकि 'रहस्यवाद' आत्मा-परमात्मा के प्रेम सम्बन्धों की काव्यात्मक अभिव्यक्ति मात्र है। उसका क्षेत्र अपेक्षाकृत संकुचित है, 'छायावाद' नाम में प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी आदि की रहस्यात्मक अनुभूतियों की अभिव्यंजना का भी

---

*देखिये—"हिन्दी के प्रमुख वाद और उनके प्रवर्तक" में (रहस्यवाद और छायावाद शीर्षक लेख)

समावेश हो जाता है और उस समय प्रचलित काव्य की अन्य प्रवृत्तियों की ओर भी संकेत हो जाता है। द्विवेदी युग के अभिधा-प्रधान काव्य के समानान्तर जिन नवीन काव्य शैलियों, और अभिव्यक्ति के स्वरूपों का प्रयोग हुआ, सुधार-युग में प्रचलित स्थूल नैतिकता के विरुद्ध जिस कल्पना-भावना प्रधान काव्य का सृजन हुआ, द्विवेदी-युग के विचार-दर्शन के विरुद्ध समाज, नारी, व्यक्ति, प्रकृति, राष्ट्र और विश्व के सम्बन्ध में जिस क्रान्तिकारी व्यक्तिवादी विचारधारा का प्रसार हुआ वह सब 'छायावाद' के नाम में समावेशित समझी जाती हैं, रहस्यवाद में नहीं, अतः काव्यधारा की दृष्टि से रहस्यवाद, छायावादी युग की एक विशेष काव्य-पद्धति है।

हमने "युग और परिस्थितियाँ" शीर्षक लेख में, इसी पुस्तक में

द्विवेदी युगीन काव्य की प्रतिक्रिया में छायावादी काव्य का अभ्युदय दिखाया है। हिन्दी में छायावादी काव्य वह है जिसमें स्थूल इतिवृत्तों के स्थान पर नूतन सौंदर्य बोध की स्थापना की गई, जिसमें व्यक्तिगत राग-विराग, अश्रु, हास, पुलक, मूर्च्छना को वाणी मिली, जिसमें 'स्व' (Self) कवि के लिये केन्द्र हो गया, जिसमें नूतन सौंदर्यबोध के अनुसार प्रकृति के दृश्यों में सूक्ष्म चेतना के दर्शन हुये, जिसमें सूक्ष्म चेतना की नारी रूपों में सिद्ध की गई, जिसमें प्रकृति को, मानवी को एक विस्मय, कौतूहल की भावना से देखा गया, शरीरी के स्थान पर अशरीरी, सूक्ष्म, दिव्य रूप प्रस्तुत किया गया, जिसमें कवि की दृष्टि जाति, रंग, धर्म तथा शुष्क नैतिकता से ऊपर उठकर व्यापक मानवता की ओर उठी, जिसमें अभिव्यंजना की नूतन पद्धतियों का प्रयोग हुआ। इस प्रकार द्विवेदी-युग के विरुद्ध योरोप के रोमॉटिक-युग के समान, नूतन सौंदर्य-चेतना को लेकर जो व्यक्तिवादी काव्यधारा हिन्दी में प्रवाहित हुई उसे छायावाद कहा गया, क्योंकि अभिव्यक्ति का स्वरूप एकदम नवीन और अपरिचित था, अतः उसमें अस्पष्टता का आना स्वाभाविक था,

साथ ही वीरो के शौर्य गायन के युग में जब वर्ण्य-विषय भी सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होने लगे तो पुराण-पंथियों को इसे 'छायावाद' की संज्ञा देनी पड़ी

किंतु सिद्धांत व दर्शन की दृष्टि से 'रहस्यवाद' और 'छायावाद' का सम्बन्ध या अन्तर क्या है? शुक्ल जी ने उसे 'वस्तु' की दृष्टि से 'रहस्यवाद' मे अंतर्भूत कर दिया है उन्होंने 'छायावाद' में 'छाया' शब्द का आधार समाधि दशा में नाना रूपकों के रूप मे उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान के आभास" को माना। इस रूपात्मक आभास को योरोप मे 'छाया' Phantasmata कहा जाता था. उसी से बंगाल में ब्रह्म समाज के बीच ऐसे 'छायामय' गीत 'छायावाद' कहलाने लगे। यहां शुक्ल जी ने वस्तुतः छायावाद व रहस्यवाद में कोई अन्तर नहीं रक्खा 'वस्तु' की दृष्टि से दोनों को मिलाकर एक कर दिया है। किन्तु यदि हम रहस्यवाद छायावाद में मानसिक स्थितियों को देखे तो छायावाद व रहस्यवाद दोनों अलग २ देखे जा सकते हैं। छायावाद में इस विस्तृत सृष्टि-प्रसार में एक अव्यक्त-सूक्ष्म चेतना का भान होता है और रहस्यवाद मे इससे आगे उस मूल चेतना के साथ आत्मा का सम्बन्ध जोड़ा जाता है, आत्मा के विरह व मिलन का वर्णन किया जाता है इस प्रकार छायावाद को हम रहस्यवाद की प्राथमिक सोपान मात्र मान सकते है, दोनो को एक मानना अस्पष्टता लाता है। तो हमारी स्थापना यह है— वस्तु की दृष्टि से—

१—मानव तथा मानवेतर सृष्टि में अव्यक्त चेतना का भान, छायावाद के अन्तर्गत आता है, इसका मूल विस्मय और जिज्ञासा में है।

२—वस्तु की दृष्टि से—आत्मा-परमात्मा के विरह-मिलन सम्बन्धी अनुभूतियाँ रहस्यवाद के अन्तर्गत आती हैं, इसका मूल आत्मा की मुक्ति के प्रयत्न मे है।

शैली की दृष्टि से—प्रतीकात्मकता, अमूर्त, उपमान, नूतन लक्षणात्मक प्रयोग, मूर्तिमत्ता, विशेषण विपर्यय, ध्वन्यर्थव्यंजना आदि तत्व छायावाद के अन्तर्गत आते हैं जबकि रहस्यवाद में लौकिक प्रेम के माध्यम से, रूपक-पद्धति पर अलौकिक अनुभूति की व्यंजना होती है ।

इस प्रकार निराला में वस्तु की दृष्टि से छायावादी तत्वों का विवेचन हम पीछे कर चुके हैं, शैली की दृष्टि से तो छायावादी शैली प्रायः सन ३८ तक के निराला-काव्य में बराबर प्रयुक्त हुई है+ वस्तु की दृष्टि से जुही की कली, यमुना के प्रति, तरंगों के प्रति, गीतिका के कुछ गीतों आदि में छायावाद का प्रयोग पाया जाता है। प्रकृति के रूपों में अरूप का आभास एक नूतन छायावादी सौन्दर्य को जन्म देता है।

किस अनंत का नीला अंचल हिला हिलाकर,
आती हो तुम सजी मण्डलाकार
× × ×
मुग्धा की लज्जित पलकों पर,
तू यौवन की छवि अज्ञात
आँख मिचौनी खेल रही है
किस अतीत शिशुता के साथ ?

'स्व' की अभिव्यक्ति—

मैं अकेला
देखता हूँ, आ रही,
मेरे दिवस की सांध्य बेला

निजत्व की अभिव्यक्ति छायावाद की एक प्रमुख विशेषता है, परन्तु निराला के कवि ने 'स्व' का विराट के प्रति समर्पण पर अधिक जोर दिया है अपने सुख दुःख की व्यंजना कम की है।

+ देखिये 'विधवा' यमुना के प्रति तरंगों के प्रति आदि कवितायें अरूप का आभास—

द्विवेदी-युग में नैतिकता का स्वरूप 'विधि निषेध' पर आधारित था, निराला में इसके विरुद्ध 'मानवी' के दिव्य रूप का स्तवन, मिलता है, उसके विभिन्न रूपों मुद्राओं, भंगिमाओं का चित्रण निराला ने मुक्त होकर किया है यथा 'जुही की कली में'। 'मानवीयकरण' तब तक सफल हो ही नहीं सकता जब तक कवि प्रकृति की जड़ वस्तुओं में एक व्यापक चेतन सत्ता का आभास नहीं देखता, शैले, टैनीसन के मानवीयकरण तभी सफल हो सके हैं जबकि उनके काव्य का आधार 'सर्ववाद' था। वर्डसवर्थ प्रकृति को जीवित सहचरी के रूप में देखा करता था, अतः प्रत्येक वस्तु में कौतूहल का अनुभव करता था, 'संध्या' इसीलिये सुंदरी है, 'जुही की कली' इसीलिए 'प्रेयसी'। यहाँ 'नारी' के प्रति प्रेम का आधार रीतिकालीन न होकर सूक्ष्म और साँकेतिक है।

छायावाद मे अतीत पूजा का भी भाव मिलता है, निराला तो अतीत के गौरव-गान के लिये प्रसिद्ध ही हैं, केवल इसी तत्व को सर्वस्व समझ कर कुछ लोग तो छायावाद को केवल 'देशभक्ति' का ही साहित्य कहने लगते हैं जबकि उसकी काल्पनिकता और रोमांटिक सौंदर्य के कारण कुछ उसे केवल 'पलायन' का प्रतीकमान बैठते हैं। छायावाद ने वस्तु मात्र में, लघु, कुत्सित, दिव्य अदिव्य सभी वस्तुओं को एक विस्मय की भावना से देखा है जिसे 'कौन', 'क्या' आदि शब्दों से प्रकट किया गया है, इस पद्धति से सामान्य वस्तु में भी एक असाधारण सौंदर्य आ गया है यथा वर्डसवर्थ की Solitary Reaper एक सामान्य घास काटने वाली, गायन में निमग्न नारी को देखकर कवि इस दुनियाँ से दूर कल्पना के लोक में जा पहुँचता है, इसी प्रकार निराला ने खिले हुए पुष्पों, गरजते बादलों, उत्तुंग शृंगों, विराट तरंगों को विस्मय विमुग्ध नयनों से देखा है और कौतूहल को रोमाँटिक भावना ने उन्हें एक रमणीय रूप दे दिया है—पन्त' की छाया, अप्सरा, नक्षत्र में भी यही

विस्मय की भावना से जनित सौंदर्य है जिसका आधार है प्रकृति में एक चेतन सत्ता का भान, जो छायावाद का 'वस्तु' पक्ष है।

यमुने तेरी इन लहरों में—
किन अधरों की व्याकुल तान ?
पथिक प्रिया सी जगा रही है—
उस अतीत के नीरव गान।

निराला और प्रकृति

निराला रूप में आत्म के कवि हैं, केवल चित्रों की समष्टि उनके काव्य में संग्रहीत नहीं है, यह प्रवृत्ति पन्त में अधिक है, पन्त का वीणा-पल्लव काल 'चित्र-शाला' प्रस्तुत करने का युग है, प्रसाद में मनोवृत्तियों के लिये प्रकृति को माध्यम बनाने का, अतः प्रसाद में प्रकृति पृष्ठभूमि के रूप में सबसे सुन्दर रूप पा सकी है, पन्त में भी वातावरण की सृष्टि सुन्दर है, यथा 'तारा' नौका बिहार आदि में। पर प्रकृति-कामिनी को क्षण-प्रतिक्षण परिवर्तित होती हुई भंगिमाओं की एक-एक रेखा वहाँ अंकित कर लेने की चेष्टा है जो निराला में नहीं पाई जाती, निराला जी दृश्य-विधान से कविता का प्रारम्भ तो करते हैं परन्तु उनमें अन्य मानवीय भावनायें आ जाती हैं किन्तु जहाँ कवि ने कटिबद्ध होकर वातावरण की सृष्टि की है या चित्रों का विधान किया है वहाँ वह किसी कवि से पीछे नहीं रहता यथा "संध्यासुन्दरी" में किन्तु मुख्यतः निराला मानवीय भावनाओं का कवि है, प्रकृति के क्षेत्र में 'पन्त' का अधिकार अधिक है।

निराला में पन्त के समान प्रकृति वर्णन के क्षेत्र में विकास भी नहीं मिलता, किन्तु इतना अवश्य द्रष्टव्य है कि छायावादी काल में असाधारण प्रकृति दृश्यों का धान किया गया है और सन् ३६ से बाद की कविताओं में साधारण यथार्थ चित्रों की सृष्टि भी की गई है, यथा "देवी सरस्वती" नामक कविता में ग्राम-जीवन का चित्र छायावादी काल में प्रायः सभी कवियों ने उषा, अप्सरा, इन्द्र-धनुष,

संध्या, तरंग, नीहार के सौंदर्य का कल्पनात्मक, मनोरम रूप देखा है, निराला ने इनके साथ-साथ प्रकृति का यथातथ्य रूप भी चित्रित किया है, जिसमें 'कल्पना' का आवरण नहीं है।

पद्धतियों की दृष्टि से प्रकृति वर्णन प्रायः निम्न श्रेणियों में विभाजित कर लिया जाता है—

(१) Simple delight in nature प्रकृति-दृश्यों में सामान्यतः आनन्द ग्रहण—

वर्ड्सवर्थ के "प्रकृति की ओर लौट चलो" आन्दोलन से कवियों का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण बदलता गया, प्रकृति के दृश्यों का स्वतन्त्र रूप से भी कोई महत्व है इस ओर प्रायः कवि गण उपेक्षा प्रदर्शित करते थे, भारत में भी प्रकृति मानव-भावनाओं की सहायक ही रही, कालिदास, वाल्मीकि में अलबत्ता प्रकृति का स्वतंत्र रूप से चित्रण हुआ है, निराला को 'बादल' अत्यन्त प्रिय रहे हैं, बंगाल की वर्षा प्रसिद्ध है, बादलों के वर्णन में कवि ने असाधारण आनन्द का अनुभव किया है।

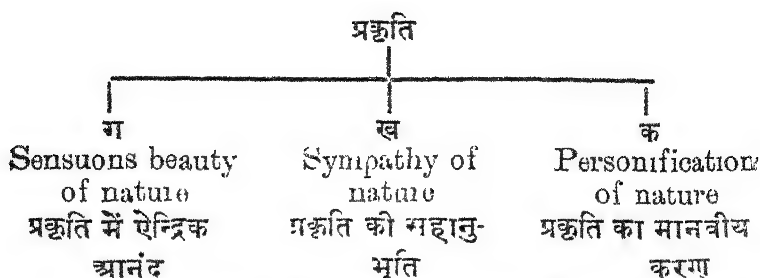
झूम झूम मृदु गरज गरज घन घोर.
राग अमर अम्बर में भर निज रोर॥

(२) Nature, described as it is प्रकृति का यथातथ्य रूप-चित्रण—

प्रकृति का आलम्बन गत चित्रण इसी में आता है, निराला ने 'देवी सरस्वती' में प्रकृति का यथातथ्य रूप प्रस्तुत किया है। किन्तु समष्टि-रूप से देखने पर यह प्रवृत्ति 'पन्त' में अधिक है, 'निराला' ने प्रकृति में या तो चेतना का आरोप किया है या मानवीय भावनाओं के लिये उपकरण के रूप में प्रकृति को लिया है, फिर भी कहीं-कहीं इसका रूप द्रष्टव्य है—

"अस्ताचल रवि, जल छल छल छवि"

(३) Personification of nature प्रकृति का मानवीयकरण—इसमें कई अन्य विधायें भी आ सकती हैं—



(क) मानवीयकरण में—प्रकृति की वस्तुओं में वही चेष्टायें देखी जाती हैं जो मनुष्य में मिलती हैं, छायावाद में इस पद्धति पर प्रकृति-वर्णन सबसे अधिक हुआ है. पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी ही नहीं आज के प्रगति-शील कवि भी इस पद्धति पर अपनी संवेदना का विस्तार करते दिखाई देते हैं। छायावाद में सिद्धान्ततः प्रकृति में चेतना का आभास देखा जाता था, वर्डसवर्थ ने सर्वप्रथम प्रकृति की जड़ता को दूर कर, उसे जीवित शक्ति के रूप में देखा, नीहार, पुष्प, सरिता, विहग, निर्झर जीवित रूप में अपने व्यक्तित्व को लिए हुए उसकी अनुभूति के क्षेत्र में आने लगे, अतः एक "सामान्य पुष्प भी कवि के रुदन के लिए" इस रूप में लिया गया जो रवीन्द्र के गीतों और प्रसाद के गीतों का आधार बना। हिन्दी में प्रसाद ने सर्वप्रथम प्रकृति की वस्तुओं को "निजी बात" कहते सुना था। निराला में प्रकृति का यह रूप अत्यन्त मनोरम बनकर आया है जुही की कली, संध्या सुन्दरी, यमुना के प्रति, प्रपात के प्रति, धारा आदि अनेक कवितायें इस दृष्टि से बेजोड़ हैं—

(ख) प्रकृति की सहानुभूति—मानव के दुःखमय क्षणों में जब प्रकृति की ओर देखता है तो उसे ऐसा आभास होता है जैसे प्रकृति उसे सॉत्वना दे रही है हरिऔध ने ऐसे भावों को बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया है—

या है भूधर सानुराग द्रवता अंकस्थितों के लिए,
आँसू है वह ढालता विरह से, किम्वा ब्रजाधीश के।

निराला की "बनवेला" नामक कविता में, प्रकृति की ऐसी ही सहानुभूति प्रस्तुत की गई है बादलों ने तो कवि के हृदय में इतनी सहानुभूति उत्पन्न की है कि वह गीतों की गणना करने लगा है—

गरजे सावन के घन घिर घिर,
नाचे मोर बनों में फिर फिर
जितनी बार, चढ़े मेरे भी तार
छन्द से तरह तरह तिर
तुम्हें सुनाने को मैने भी, नही कहीं कम गाने गाये।

तथा

खंडहर! खड़े हो तुम आज भी?
विस्मृत की नींद से जगाते हो क्यों हमें—
करुणाकार, करुणामय गीत सदा गाते हुये।

(ग) प्रकृति कामिनी का ऐन्द्रिक रूप—हिन्दी में 'पन्त' प्रकृति-कामिनी का कमनीयता के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। बचपन में ही, पन्त ने द्रुमों की मृदु छाया छोड़कर बाला के बाल जाल में लोचन न उलझाने की प्रतिज्ञा की थी, किंतु नारी व प्रकृति दोनों की रूप-राशि में कवि का मन बराबर निमग्न रहा। कीट्स भी ऐन्द्रिकता का चित्रण अनुपम शक्ति से करता था, निराला में कहीं-कहीं घोर ऐन्द्रिकता के दर्शन होते हैं यथा—जुही की कली, शेफालिका आदि कविताओं में, प्रकृति वस्तुओं में चेतना का आरोप कर, कवि अत्यन्त स्वतंत्रता के साथ रति-क्रीड़ा के नग्न चित्रण करता है, किंतु अंत में दार्शनिक आधार देकर उसका समाधान कर देता है।

कमनीय चित्रविधान—इसका निराला में पर्याप्त विस्तार है—तरंगों के प्रति, बादल राग, राम की शक्ति पूजा, विधवा, बनवेला आदि में अनेक चित्रों की समष्टि मिलती है—

वर्ष का प्रथम
पृथ्वी के उठे उरोज मंजु पर्वत निरुपम

किसलयों बँधे ।

—बनवेला

× × × ×

"बङ्क भौंह, शंकित दृग, नत मुख
मिला रही निज उर अग-जग दुख
पी ली ज्वाला, बहुल नीली, रुख
विभा, प्रभा की खान प्रान तुम"

—गीतिका

'तुलसीदास' में इसी प्रकार के अनेक चित्र आये हैं ।*
सुन्दरी, जुही की कली, गीतिका, तुलसीदास आदि का विश्लेषण ।

निराला में प्रकृति का क्षण क्षण परिवर्तित प्रकृति वेश नहीं मिलता, बादलों को अवश्य सधी तूलिका से चित्रित किया गया है पर वहाँ भी मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति का उसे साधन बनाया गया है ।

(४) Metaphorical use of natue—(for imagery and illustration) प्रकृति का अप्रस्तुत विधान के लिए प्रयोग—

सारे भारतीय साहित्य में वर्ण्य वस्तु की सौन्दर्य वृद्धि के लिए, उस वस्तु के यथार्थ रूप को पाठकों के हृदय में उतार देने के लिए, उपमाओं, रूपकों, उत्प्रेक्षाओं का विधान अत्यंत अधिक मात्रा में हुआ है, यहाँ प्रकृति से सुन्दर दृश्यों को चुनकर उनका प्रयोग मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्त के लिए हुआ है मनुष्य की सौंदर्य, दीप्ति, करुणा, गरिमा, वैभव, उत्थान, पतन आदि विभिन्न वृत्तियों, रूपों और स्थितियों के अंकन में प्रकृति ने अप्रस्तुतों के रूप में सदा ही स्थान पाया है । निराला ने इस क्षेत्र में सबसे अधिक 'रूपकों' का प्रयोग किया है, पूरी परिस्थिति को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने सॉग रूपकों का निर्वाह बड़ी ही सुन्दरता से किया है, यथा 'तुलसीदास' के समय भारत की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए 'संध्या'

* चित्रों के लिये देखिये "कृतियों के विश्लेषण" में "संध्या"

का सफल रूपक बाँधा गया है, अन्य किसी भी सामयिक कवि ने इतने धैर्य से रूपकों का निर्वाह नहीं किया। उत्प्रेक्षायें भी सुन्दर हैं—यथा "प्रिय यामिनी जागी" शीर्षक गीतिका के गीत में। उनके प्रतीक व उपमान भी नवीन और भावनाओं के अनुसार हैं।

मेरे मरण और जीवन के कारण जाम पिये
देख खड़ी करती तप अपलक
हीरक सी समीर माला जप

—गीतिका

वातावरण चित्रण—निराला ने 'तुलसीदास' व "राम की शक्ति-पूजा" मे भावनाओं की भित्ति पर जिस वातावरण की सृष्टि की है, वह अद्भुत है। किस प्रकार मन की भावना से सारा सृष्टि-प्रसार अपना रूप बदल लेता है, इसका सर्वोत्तम रूप 'तुलसीदास' में मिलता है। प्रकृति के आधार पर खड़ी हुई ये सृष्टियाँ भावनाओं के उत्थान पतन स्पष्ट करती चलती हैं। इस क्षेत्र मे प्रसाद के वातावरण प्रसिद्ध हैं, किंतु वे अत्यन्त संक्षिप्त हैं जबकि निराला में उन्हें समुचित विस्तार मिला है। कामायिनी में सारस्वत नगर विनाश के पश्चात् भी कवि दो चार पंक्तियों द्वारा ही उसकी भयानकता की व्यंजना कर आगे बढ़ जाता है जबकि 'राम की शक्ति पूजा' में अत्यधिक विस्तार दिया गया है। प्रलय का चित्र (कामायनी) अवश्य विस्तृत और पूर्ण है, अतः पृष्ठभूमि के चित्रण में निराला व प्रसाद दोनों अत्यन्त समर्थ कवि हैं।

पन्त केवल प्रकृति का मधुर, कोमल, कमनीय रूप ही चित्रित कर सके हैं जबकि निराला में प्रकृति के विभिन्न रूप दर्शनीय हैं विशेषकर प्रकृति का वर्णन करते हुए 'भयानक' रस की व्यंजना में निराला अन्यतम कवि हैं "है अमा निशा, उगलता गगन घन अंधकार" से जो प्रकृति वर्णन प्रारम्भ होता है वह हृदय में एक विचित्र भय, आशंका, त्रास की भावनाओं का सृजन करता है।

प्रकृति चित्रों द्वारा ओज गुण की रक्षा करने में निराला अत्यन्त कुशल कवि हैं

The indifference of Nature—प्रकृति की मानव के प्रति उत्पेक्षा भाव—

संवेदना के बल पर कवि प्रायः प्रकृति का यथार्थ रूप प्रस्तुत न कर, उसमें मानवीय भावनाओं का आरोप कर दिया करते हैं किंतु प्रकृति पर वस्तुतः मनुष्य के सुख दुःखों का प्रभाव नहीं पड़ता, दृष्टिगोचर होता है, हरिताभ शाखाओं के नीचे शैव्या अपने मृतपुत्र को लेकर जब रुदन करती है तो प्रकृति तटस्थ ही रहती है या जब शालामार बाग में जहाँगीर नवीन रूप श्री सम्पन्न सुकुमारियों के साथ नूरजहाँ के आँचल में मुख छिपाता है तो भी प्रकृति तटस्थ रहती है—

For men may come and men may go
But I go on for ever.

इस प्रकार प्रकृति का वैज्ञानिक रूप भी कवियों ने प्रस्तुत किया है यथा हार्डी व टैनीसन ने। यहाँ प्रकृति (With her red tooth and claw) अपने खूनी दाँतों और निष्ठुर पंजों के साथ प्रस्तुत हुई है। छायावादी कवि एकात्मवाद का विश्वासी रहा है वह प्रकृति के इस रूप का स्वागत नहीं कर सकता अतः हिन्दी में आज तक प्रकृति का यह वैज्ञानिक रूप चित्रित नहीं हो पाया।

Nature contrsrted with man—प्रकृति और मानव की होड़—पंत ने मानव के प्रति अपनी पूजा-भावना प्रकट करते हुये अवश्य कहा है कि यद्यपि पुष्प और पक्षी भी सुन्दर हैं किन्तु मनुष्य, तुम सबसे सुन्दर हो, प्रकृति का यह रूप भी हिन्दी में कम ग्राह्य हुआ है।

प्रकृति का उद्दीपक रूप—निराला ने गद्य* में प्रकृति के इस रूप का प्रयोग किया है, प्रायः प्रकृति का रमणीय रूप कवि में जब

*देखिये अलका उपन्यास

कोमल भावनाओं का उदय कर देता है तो वह विभोर होकर प्रकृति की छटा का वर्णन करता है—'संध्या सुन्दरी' को देखकर कवि विरहाकुल हो उठा है—

'अर्द्ध रात्रि की निश्चलता में हो जाती जब लीन
कवि का बढ़ जाता अनुराग
विरहाकुल कमनीय कंठ से
आप निकल पड़ता तब एक विहाग'

इसी प्रकार जागो फिर एक बार (१) में सुन्दर उद्दीपक रूप है, वसंत आया राम की शक्ति पूजा, प्रेयसी, तुलसीदास तथा गीतिका के अनेक गीतों में विभिन्न भावनाओं के लिये प्रकृति के उद्दीपन के रूप खींचे गये हैं, राम की शक्ति पूजा में श्रृङ्गार के अतिरिक्त भय की भावनाओं के लिए भी प्रकृति उद्दीपन का कार्य करती है, श्रृङ्गार के चित्रों में जागो फिर एक बार (१) तथा प्रेयसी के उद्दीपक रूप निराला का रीतिकालीन रूप हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं।

निराला ने प्रकृति को रागानुभूति के प्रकटीकरण का माध्यम अधिक बनाया है। अतः प्रकृति की वस्तुओं के साँगोपाँग चित्र वहाँ कम मिलते हैं प्रकृति से सदैव सदेश ग्रहण करने की प्रवृत्ति निराला में कम है जैसा कि वर्डसवर्थ में मिलता है, Nature as healer का रूप भी इस कवि में नहीं मिलता, प्रकृति को माध्यम बना कर या तो स्वयं संदेश देने की प्रवृत्ति यहाँ अधिक है या अपने राग-विराग अश्रु हास को प्रकट करने की—अतः प्रकृति के दो ही रूप निराला में मुख्य हैं (१) प्रकृति का मानवीयकरण या प्रकृति में पुरुष का दर्शन (२) भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये साधन मानकर प्रकृति वर्णन। संध्यासुन्दरी, जुही की कली में यदि प्रथम रूप देखा जाता है तो बादल, प्रपात, धारा आदि मे द्वितीय, "अस्तांचल रवि" जैसी कवितायें जिनमें प्रकृति का तटस्थ चित्रण हुआ है, निराला में नगण्य हैं, प्रायः कवि पहले प्रकृति दृश्य का विधान कुछ दूर तक करता है और पुनः उसे छोड़कर आत्माभिव्यक्ति के सूत्र पर आ

जाता है, 'प्रपात' व धारा में एक भी पंक्ति ऐसी नहीं है जो उनके रूप को प्रस्तुत करने के प्रयत्न को स्पष्ट करती हो, पूरी कविता किसी सत्य की व्यंजना के लिये लिखी गई है। बादल भी विप्लवी का रूप लेकर आते हैं पर अपेक्षाकृत यहाँ चित्र-समष्टि भी है। 'बन-बेला' में भी कवि की निजी भावनाओं का प्रतिबिम्ब देखा गया है, प्रायः कवि कोई प्रकृति-वस्तु लेकर चिंतन में निमग्न हो जाता है, इसके लिये वह उस वस्तु-विशेष से तादात्म्य कर लेता है, निराला में यह 'तादात्म्य' अत्यधिक मात्रा में है क्योंकि उसका आधार एकात्मवाद है।

इसे हम प्रकृति वर्णन के क्षेत्र में Theory of reflection कह सकते हैं, जो स्मृतियों, भविष्य में अवश्यम्भावी संघर्षों, वर्तमान के आघातों आदि को प्रतिबिम्बित करते चलते हैं, 'बनबेला' में कवि 'सम्भावना' का आधार पकड़ता है कि यदि मैं लक्षपति-कुमार, नेता होता तो—

शिक्षा पाता अरब समुद्र-पार
× × ×
जनता की सेवा का व्रत मैं लेता अभंग
मञ्च पर खड़ा हो साम्य-वाद इतना उदार।

इसी प्रकार आगे चलता है और कहीं-कहीं बीच में 'बन-बेला' से वर्णन का सूत्र जोड़ कर पुनः आगे बढ़ जाता है तो यहाँ 'वर्ण्य-वस्तु' मुख्य नहीं है अपितु कवि की निजी भावनाओं का महत्व अधिक है। 'यमुना के प्रति' में स्मृति के आधार पर अतीत के कसकते हुये चित्र दिये गये हैं। युद्धकाल के बाद की कविताओं में भी प्रकृति के माध्यम से कवि अपनी चिंतना को व्यक्त करता है* परन्तु इन कविताओं में कवि ने तटस्थ होकर यथातथ्य-चित्र भी दिये हैं। पंत की तरह वस्तुपरिगणन (ग्राम्या में पुष्पों के नाम)

---

*यथा कुकुरमुत्ता आदि में, यहाँ प्रकृति की वस्तुओं का प्रयोग व्यंग्य व अन्योक्ति के उपकरण के रूप में हुआ है।

निराला में कहीं नहीं मिलता। एक जनवादी' कविता का यथार्थ चित्र देखिये—

जलाशय के किनारे कुहरी थी, हरे नीले पत्तों का घेरा था,
पानी पर आम की डाल आई हुई, गहरे अँधेरे का डेरा था,
किनारे सुनसान थे, जुगनू के दल दमके, यहाँ वहाँ चमके ...

प्रकृति और पुरुष—हमने पहले ही कहा है कि निराला रूप में अरूप का कवि है, वहाँ 'प्रसार' में 'प्रसारक', व्यक्त में अव्यक्त देखने की भावना अधिक है, जैसे महासमुद्र में अनेक उत्ताल तरंगें उठ कर पुनः उसी में लय हो जाती हैं उसी प्रकार, प्रकृति को देख कर स्वयं-सम्भूत अनेक चित्र अन्त में उसी सत्ता में लय होते देखे जाते हैं जो प्रकृति के कण-कण में मुस्करा रहा है। जिस जीवन की व्याख्या कवि 'जगत' के सहारे करता है उसकी परिसमाप्ति भी कवि उसी महाचेतना में कर देता है यही कारण है कि निराला विराटता में महा-विराट का, और लघुता में महान की खोज कर सका है, निराला का प्रकृति-वर्णन किसी पद्धति का अनुकरण न होकर तभी मौलिक बन पाया है, रवीन्द्र ने जिन विराट चित्रों की सृष्टि का प्रारम्भ बँगला में किया था उसका पूर्ण प्रतिफलन हम निराला में देखते हैं, निराला ने स्वयं कहा है कि हिन्दी-प्रदेश में असीम आकाश, अनंत समुद्र, विशाल नद-निर्झर, एवमुक्त वारिद-जाल के विराट चित्रों की योजना बहुत कम हुई है, मात्र फोटोग्राफिक चित्रण करने में एक जड़ता आ जाती है, चित्र निस्पन्द और निःस्वन रह जाता है, निराला इस प्रवृत्ति से बचे हैं, कवि उस सूक्ष्म चेतना का वरदान पा चुका है जिसके विविध रूपों से ही यह सारी सृष्टि निर्मित हुई है अतः उसके वर्णनों में उस चेतना का नैकट्य बराबर रहता है, ब्रह्म के अति परिचय ने निराला को शिशु-सुलभ भावुकता से सदा दूर रखा है, 'पल्लव' के कवि में जो एक कैशोर-भावुकता मिलती है वह निराला में नहीं

है, साथ ही भावनाओं के अत्यधिक ऊहापोह में प्रकृति को अधिक नहीं रंगित किया गया यथा पंत की आँसू और उच्छ्वास कविताओं में, साथ ही प्रकृति में पुरुष की निकटता से निराला ने प्रकृति को Magazine of symbols नहीं बनाया, निराला के बादल तथा पंत के बादल और छाया की तुलना से यह स्पष्ट हो जाता है, निराला ने ज्ञान द्वारा बोधित तथा भावना द्वारा संवलित उस दिव्यसत्ता की विद्यमानता को प्रकृति के वर्णनों का आधार चुना है, सारे चित्र और निजी सुख दुःख की भावनाये पाशबद्ध होती हुई जैसे अनंतता में निमग्न होती चलती है। प्रकृति की वस्तुओं पर कल्पना द्वारा लाये गये मनमाने आरोप पंत में अधिक मिलते हैं क्योंकि वहाँ कवि का एक मात्र उद्देश्य अपने कल्पना-वैभव कला का परिचय देना है, निराला "रसो वैसः" को पहचानते हैं अतः भावना का सूत्र नहीं छोड़ते। बुद्धि, राग, कल्पना का समन्वित रूप यहीं मिलता है, क्योंकि निराला ब्रह्म के समान 'कला' को एक पूर्ण सृजन मानते हैं उसकी पूर्णता में कला का एक उपकरण नहीं, सभी तत्वों की समष्टि की आवश्यकता है, + अतः निराला में कला की विकलांगता नहीं मिलती। पंत में प्रकृति का सम्मोहन अधिक है, निराला में 'तादात्म्य' की व्यंजना अधिक हुई है, पत ने प्रकृति को कभी 'कुमारी' का रूप धारण देकर उससे तादात्म्य किया है, कभी स्वयं अपने को ही सुकमारी किशोरी बनाकर चित्रित कर दिया है, निराला का 'तादात्म्य' दूसरी कोटि का है, जैसे प्रकाश के समुद्र में प्रत्येक बिन्दु अपने को पहचानता है, उसी प्रकार आराध्य की अनुभूति में निराला की प्रकृति की प्रत्येक वस्तु पहचानी सी लगती है अतः उनका 'तादात्म्य' एक दार्शनिक जैसा होता है, यह 'तन्मयता' प्रकृति के प्राणों के साथ उतनी नहीं है (जैसी पंत में) बल्कि प्रकृति के मूल 'कारण' के साथ है यही कारण है निराला के चित्र उतने मनोरम नहीं हैं जितने भास्वर

+ 'गीतिकला' के विश्लेषण में देखिये कला की परिभाषा।

हैं। उनमें विस्तार, कल्पना का लदाव और वैविध्य और विवरण उतना नहीं है जितना व्यंजना का व्यापार। केवल प्राण-पुलक वहाँ उतना नहीं है, जितना आत्म-बोध और आत्म प्रसादन, जहाँ जान-बूझकर उसने अपने को मात्र 'चित्रण' तक तक सीमित रखा है वहाँ भी इस कवि में 'प्रसार' के स्थान पर गहराई दृष्टिगोचर होती है।

. बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव के आदर्श के लिये 'तुलसीदास' इस युग की श्रेष्ठ निधि है। यहाँ प्रकृति व पुरुष एकाकार होता हुआ दिखाया गया है, यहाँ भी कवि अत्यन्त संक्षेप में प्रकृति का चित्र देता है, (यह संक्षिप्तता तथा संतुलन निराला में सर्वत्र मिलता है, पृष्ठ भूमियाँ अवश्य विस्तृत हैं परन्तु वहाँ भावना प्रधान हो जाती है) किन्तु प्रकृति तो पुरुष की निवास-स्थली है अतः चित्रकूट में कवि ज्यों ही प्रकृति के चित्रों में निमग्न होता है, उसकी दृष्टि ऊर्ध्व गामिनी हो जाती है, आगे रत्नावली का चित्र आने से कवि का मन निम्नगामी हो जाता है और प्रकृति का सम्मोहक रूप मात्र रह जाता है, यहाँ जैसे सारी छायावादी 'सम्मोहकता' पर कवि ने व्यंग्य किया हो, दार्शनिक तादात्म्य यहाँ द्रष्टव्य है, 'रत्नावली का रूप', प्रिया का रूप है, प्रकृति को मानवीकरण द्वारा कामिनी का रूप देकर उसकी कमनीयता का अङ्कन करना छायावाद की एक विशेषता रही है, निराला में भी यह प्रवृत्ति है, परन्तु जैसा हमने कहा कि निराला प्राण से ऊपर उठता है, वह आत्म बोध की ओर चलता है अतः प्रकृति का वह रूप जिसमें प्रिया का प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता ,निराला का आदर्श नहीं है, निराला तो प्रकृति वस्तुओं के सामान्य व्यापारों में अत्यन्त ऊर्ध्व स्थिति पर गतिमान मन का प्रतिबिम्ब देखने वाला कवि है* इसीलिये जुही की कली की चकित-चितवन में उसकी रति-क्रीड़ा में 'मुक्ति' की अवस्था व्यंजित होते हुए देखते हैं, 'शेफालिका' में भी यही प्रवृत्ति है, इस

* देखिये गीतिका में प्रकृति।

दार्शनिकता का दूसरा रूप 'बादल' जैसी कविताओं में है वहाँ प्रकृति की वस्तुएँ 'आत्म-बोध' की व्यजना के स्थान पर जीवन की व्यंजना करती हैं, यद्यपि मूलभावना यहाँ भी मुक्ति ही है चाहे वह राष्ट्र की हो, समाज या व्यक्ति की, यहाँ कवि व्यंजना से कार्य न लेकर अभिधा से कार्य लेता है और पुकार उठता है—

अट्टालिका नहीं रे, आतंक भवन

× × × ×

अंगना अंग से लिपटे भी
आतंक अंक पर काँप रहे हैं।
धनी वज्र गगन से बादल,
त्रस्त नयन मुख ढाँप रहे हैं।

शैले के West wind, cloud आदि से निराला के 'बादल' की तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि निराला में imagery उतनी नहीं है जितनी शैले व पन्त में मिलती है, घनीभूत भावों की व्यंजना उनकी प्रकृति अधिक करती है जबकि शैले व पन्त में 'मूर्तिमत्ता' अत्यन्त उच्चकोटि की हुई है। 'निराला' को मूर्ति और प्राण की यदि उतनी चिन्ता होती तो उनका नाम ही 'महाप्राण' न कहलाता, वे वस्तुतः 'महाप्राण' है, उनकी प्रकृति जैसे उस 'महाप्राणवान' को व्यक्त करने का साधन मात्र है। जहाँ तक वर्णन शक्ति का सम्बन्ध है निराला का 'बादल' और 'राम की शक्तिपूजा की अमानिशा' West wind से अधिक सबल है, किन्तु शैले व कीट्स में चित्रात्मकता के साथ-साथ जो आवेगों की अभिव्यक्ति मिलती है वह सरोज-स्मृति 'हिन्दी के सुमनों के प्रति' आदि कविताओं को छोड़कर अन्यत्र नहीं मिलती, आवेगों का भी वह रूप जिसमें तड़प, मूर्च्छना, आर्त-पुकार अधिक रहती है. फिर भी शैले आशा का कवि है, सदा रोगी रहने वाले व्यक्ति जैसी निराशा कीट्स में अवश्य मिलती है; शैले व कीटस ने कुत्सित वर्तमान को कोसते हुए अपनी विकलता और वेदना को अभिव्यक्ति देते हुए सुखद भविष्य

के निर्माण के लिये जिस क्रान्ति भावना का आभास दिया है वह निराला में भी पूर्णतया मिलती है, निराला के लिये प्रकृति की प्रत्येक वस्तु 'मुक्ति' की निर्देशिका है, तरंग, बादल, बनवेला सभी। 'बादल' तो जैसे क्रान्ति का पत्तधर ही है किन्तु निराला में शैले व कीट्स जैसा, चीत्कार नहीं मिलता क्योंकि 'मुक्ति' के लिये क्रान्ति का देवदूत 'बादल' अपने अजय घोप से कृपकों में आत्म बल का संचार करता है पूर्णता की स्वीकृति में निजत्व की बहिष्कृति चाहे न होती हो पर विस्मृति अवश्य हो जाती है, निराला की प्रकृति सम्बन्धी अनुभूति में पुरुष की इसी पूर्णता ने उसे यदि एक ओर अनन्त-अंचल-शयना सप्राण सुन्दरी बनाया है, उसे अक्षय कमनीयता अनंत गरिमा दी है तो दूसरी ओर जीवन में आन्तरिक-बाह्य साम्य व सुधार के लिये उसे प्रेरणादात्री प्रतिमा भी बना दिया है।

भाषा और छन्द

छन्द—कला की प्राण-प्रतिष्ठा तो नवीन भावों और कल्पनाओं की नूतन सज्जा द्वारा होती है परन्तु उसके बाह्य रूप व्यापार में कवि अपने निजी प्रयोगों द्वारा क्रान्ति उपस्थित किया करते हैं बाल्मीकि से लेकर पं० जगन्नाथ तक और चन्द्रवरदायी से लेकर निराला तक की कविताओं के अध्ययन से स्पष्ट है कि कवि किस प्रकार सामान्य मानवीय भावनाओं की व्यंजना निजी प्रयोगों द्वारा करते रहे हैं, कामिनी के लावण्य का वर्णन दो कवियों में एक सा मिल सकता है, उन में प्रयुक्त अप्रस्तुत विधान भी एक सा हो सकता है किन्तु उन कवियों की भाषा, छन्द आदि की विभिन्नता द्वारा प्रयोग की नवीनता के कारण, अभिव्यक्ति सर्वथा नूतन और मौलिक लगने लगती है और पिष्ट-पेषित विषय भी अपना आकर्षण बनाये रखता है।

निराला ने अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये जिस छन्द को प्रमुखतया चुना, उसे मुक्त छन्द कहा जाता है, हम कह सकते हैं कि काव्य के कला-पक्ष के अन्तर्गत यदि इस कवि की कुछ भी देन है तो वह मुक्त-छन्द का निर्भय प्रयोग है। हिन्दी में निराला व प्रसाद के पूर्व रीति बद्ध काव्य प्रचलित था, द्विवेदी युग के काव्य में भी विषम चरणों का प्रयोग हुआ परन्तु काव्य को किसी न किसी प्रकार का बंधन स्वीकार ही करना पड़ा, संस्कृत-छन्दों के हरिऔधी प्रयोग ने जहाँ अंत्यानुप्रास का बंधन हटाया वहाँ काव्य को वर्ण-वृत्तों में बँधकर सिसकना पड़ा, काव्य मुक्त न हो सका।

'प्रसाद' जी ने मुक्त छन्दों में कुछ आख्यान-गीत सर्व प्रथम लिखे किन्तु उनका पूर्णरूप से गौरव-स्थापन निराला जी द्वारा ही हुआ अतः निराला का नाम लेते ही मुक्त छन्द और मुक्तछन्द का नाम लेते ही निराला का नाम अवश्य जुड़ जाता है जैसे मुक्त-छन्द पर निराला का सर्वाधिकारमान लिया गया है।

'मुक्तछन्द' की महत्ता के सम्बन्ध में निराला ने लिखा है कि मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है, मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग होना। मुक्त छन्द में बाह्य समता के प्रति कवि का जो अतुल आग्रह होता है वह समाप्त हो जाता है, केवल मुक्त छन्द में आन्तरिक साम्य होता है जो उसके प्रवाह में सुरक्षित रहता है 'उच्चारण से मुक्ति की जो अबाध धारा प्राणों को सुख-प्रवाह-सिक्त'' ''' करती है, वही इसका प्रमाण है', इसका अर्थ यह नहीं कि कवि को मुक्त छन्द के प्रति दुराग्रह है वह छन्दानुमोदित काव्य की कोमलता तथा संगीत के प्रभाव से परिचित है, किन्तु केवल छन्द के रेशमी पाशों में बंधित काव्य ही राजत्व प्राप्त कर सकता है, यह मानने के लिये वह प्रस्तुत नहीं है, काव्य के दोनों स्वरूप मनोहर हैं छन्द बद्धता अनिवार्य नहीं है, बस, "जैसे बाग की बँधी और बन की खुली हुई प्रकृति दोनों ही सुन्दर हैं पर दोनों के आनन्द तथा दृश्य दूसरे हैं" उसी प्रकार मुक्त और अमुक्त दोनों काव्य सुन्दर हैं उनका अपना-अपना स्वाद है। किन्तु सहस्त्रों वर्षों से छन्द के पालने में झूलते-झूलते हिन्दी का काव्य यह समझता है कि वह स्वतं रूप से विचरण कर ही नहीं सकता, निराला ने अपने मुक्त छन्दों की सफलता द्वारा उक्त धारणा को हास्यास्पद सिद्ध कर दिया है उन्होंने हिन्दी के पूर्व काव्य की परम्परा इंगित करते हुए बताया है कि वैदिक-काल में काव्य भी गीति-बद्ध न था, वेदों में मुक्त छंद ही हैं, गायत्री भी मुक्त छंद है जहो सर्वश्रेष्ठ काव्य है। कवि के अनुसार "नियम और अनुशासन सीमा के परिचायक

होते हैं और क्रमशः मनुष्य जाति को क्षुद्र से क्षुद्रतर तथा गुलाम से गुलाम कर देने वाले" होते हैं। वैदिक-काल के पश्चात् हम प्रत्येक क्षेत्र में जितने अधिक नियमों के आवरण ओढ़ते गये, गुलाम बनते गये अतः हमें समझना होगा कि साहित्य की मुक्ति उसके काव्य में देख पडती है और काव्य की मुक्ति, मुक्त छन्द में।

खड़ी बोली के अभ्युदय काल में जिस प्रकार नूतन भावनाओं ने रीतिकालीन मोह-निद्रा को भंग करना प्रारम्भ किया उसी प्रकार मुक्त छन्दों के विधान ने काव्य की एक रसता, संगीत की गतानुगतिकता तथा श्रुति प्रिय तुकान्तता से उत्पन्न जड़ता को नष्ट किया, "भावनाओं की मुक्ति छन्दों की मुक्ति चाहती है" यह निराला जैसे कवि ने पूर्णतया अनुभव कर लिया था, अतः उसने अपनी 'बमबाजी' की स्वयं प्रशंसा करते हुये लिखा है—

"जहाँ धड़ाधड़ मुक्त छन्द के गोले निकलने शुरू हुये कि भाइयों की समझ में आगया कि हाँ कुछ पढ़ा जारहा है।"

मुक्त छन्द क्या है, इस सम्बन्ध में बड़े महत्व के भ्रम हैं केवल अतुकान्तता मुक्त छन्द की शर्त नहीं है, मुक्त-छन्द तो वह छन्द है जिसमें छन्द शास्त्र का कोई भी नियम, किसी भी सीमा तक प्रयुक्त न होता हो, इस छन्द में आलाप व प्रवाह अवश्य रहते हैं जो इसे मुक्त होने पर भी 'छन्द' की संज्ञा दे देते हैं।

प्रायः भिन्न तुकाँत छन्दों को मुक्त छंद समझ लिया जाता है भिन्नतुकान्त छदों में प्रसाद, रूप नरायण पाण्डेय, मैथलीशरण गुप्त, हरिऔध, सियाराम शरण आदि कवियों ने पर्याप्त कवितायें लिखी है रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार हिन्दी में भिन्न तुकान्त छन्दों के प्रयोग का श्रेय 'प्रसाद' जी को ही है।+

रूपनरायण पाण्डेय व गुप्तजी ने (वीराङ्गना, काव्य) भी इस छन्द का अनुवादों व अन्य रचनाओं में प्रयोग किया है, सियाराम-

+देखिये कविता कौमुदी—रामनरेश त्रिपाठी

शरण ने १६ मात्रा का छंद लिखा था जिसका प्रयोग पंत ने ग्रंथि में किया है, यह भी भिन्नतुकांत छंद है :—

इन्दु पर, उस इन्दु मुख के, साथ ही,
थे पड़े रक्तिम नयन, जो उदय से।
लाज से रक्तिम हुये थे, पूर्व को,
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।

पंत (ग्रंथि)

उक्त छन्द में तुक का आग्रह नहीं परन्तु वर्णों की स्थापना की गणना निश्चित है, अर्थात् प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें ही होंगी, अधिक नहीं, इसके साथ-साथ प्रिय-प्रवास आदि में संस्कृत के वर्ण-वृत्तों का विधान किया गया, यहाँ मात्राओं के निश्चित प्रयोग के स्थान पर वर्णों का निश्चित प्रयोग चला—

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला

यहाँ तुकान्तता नहीं है परन्तु गणों का विधान निश्चित है, नगण, भगण, भगण, रगण क्रमशः अवश्य आयेंगे अन्यथा द्रुत-विलम्बित छंद न होगा, तो यहाँ भी बन्धन है, तुक का न सही, मात्राओं और वर्णों का, इसका परिणाम यह होता है कि भाषा की कसावट से भाव दब जाते है उनका अजस्र प्रवाह मुखरित नहीं हो पाता, मुक्त छन्द मे तुक, मात्रा, वर्ण आदि का कोई निश्चित विधान नहीं होता, केवल प्रवाह या लय के आधार पर छंद चलता है अतः भिन्नतुकांत छंदों के उपर्युक्त निर्माता मुक्त छंदों के स्रष्टा नहीं हैं, हाँ, तुकांतता के विरुद्ध सर्वप्रथम खड़े होने के कारण एक अत्यन्त व्यापक दृष्टि से हम उन्हें भिन्नतुकान्त पर मात्राओं के निश्चित प्रयोग-प्रधान छंदों को भी हम मुक्त-छंद कह देते हैं। निराला जी ने लिखा है कि "मुक्त छन्द वह है जो छन्द की भूमि में रह कर भी मुक्त है, मुक्त छन्द का समर्थक उसका

प्रवाह है, वही उसे छंद सिद्ध करता है, और उसका नियम-शाहित्य उसकी मुक्ति।"

अतः मुक्त छन्द के उद्धार का श्रेय निराला जी को है न कि पंत जी, गुप्त जी, रूपनारायण पाण्डेय या अन्य किसी कवि को।

बँगला में माइकेल मधुसूदन द्वारा इस मुक्त छन्द का प्रवर्तन हुआ था, गिरीशचन्द्र नाट्याचार्य ने नाटकों में इस छन्द का प्रयोग किया था, निराला ने 'माइकेल' के समान हिन्दी में इसका प्रवर्तन किया।

कवि ने अपने सर्वप्रथम संग्रह 'परिमल' में सारी रचनाओं को तीन खण्डों में बांटा, पाठकों की रुचि को देखकर उसने प्रथम व द्वितीय खण्डों में, सान्त्यानुप्रास एवम् भिन्न तुकांत कविताये भी दीं और अंतिम खण्ड में 'मुक्त छन्दों' का रूप भी प्रस्तुत किया। पंचवटी प्रसंग, महाराज शिवाजी का पत्र, जागो फिर एक बार, जुही की कली, शेफालिका मुक्त छन्द में लिखी हुई अमर कवितायें हैं—

बीत गये कितने दिन–कितने मास
पड़े हुये सहते हो अत्याचार
पद पद पर सदियों के पद-प्रहार
बदले में—पद में कोमलता लाते हो।
किंतु हाय, वे तुम्हें नीच ही हैं कह जाते,
तुम्हें नहीं अभिमान
छूटे कहीं न प्रिय का ध्यान
इससे सदा मौन रहते हो,
क्यों रज, विरज के लिए ही इतना सहते हो?

—('कण' से)

उपर्युक्त पंक्तियाँ मुक्त छन्द में लिखी गई हैं, यहाँ पद-विधान किसी भी नियम के अन्तर्गत नहीं रखा गया, केवल पढ़ने में प्रवाह विशेष उत्पन्न कर इसे छन्द की सीमा की सीमा में लाया जा सकता है अन्यथा यह गद्य खण्ड ही होगया होता।

निराला का विरोध भावनाओं की नवीनता के कारण उतना नहीं हुआ जितना इस मुक्त छन्द के कारण हुआ, तुकान्तता के चिर-अभ्यस्त पाठक पदों का उक्त मनमाना प्रयोग देखकर इस मुक्त छन्द को काव्य के लिये अपशकुन समझते थे। किंतु कवि ने अपनी व्यक्तिगत सुपठन-शक्ति से कवि सम्मेलनों में भावाभिव्यक्ति के लिये मुक्त छन्द की सफलता सिद्ध कर दी और इस प्रकार मुक्त छन्दों के गोलों की वर्षा से हिन्दी संसार का ध्यान हठात् आकर्षित कर लिया, पीछे मुक्त छन्द का भी अनुकरण चल पड़ा।

मात्रिक, वर्णिक एवम तुकान्त छन्दों में एक निश्चित संगीत होता है जो अत्यन्त श्रुति प्रिय होता है, भाव की प्रेषणीयता में सुगमता लाता है, साहित्य व संगीत दोनों का आनद छन्द-बद्ध काव्य के पठन-पाठन में आता है, निराला में मुक्त छन्द की सफलता प्रवाह और शक्ति के कारण है। यह बात नहीं कि मुक्त-छन्द में संगीत का अभाव है, संगीत भी दो प्रकार का होता है एक तो ताल-प्रधान और दूसरा आलाप-प्रधान, ताल बद्ध संगीत मात्रिक छंदों में मिलता है, उनमें एक निश्चित स्थान पर जाकर ही स्वर समाप्त होता है और बार-बार उसकी पुनरावृत्ति होती चलती है। किंतु मुक्त छंद में स्वर का अनवरत प्रवाह झंकृत होता है, सम, विषम पदों को इस प्रकार पढ़ा जाता है कि उसमें एक लय निनादित होती चलती है अतः विषम चरण भी उस प्रवाह में बहने लगते है, यदि चरण छोटा है जो लय भी उसी के अनुसार छोटी होगी, यदि पद दीर्घ है तो स्वर की दीर्घता उसे अपने में समेट लेगी। यथा—

मुक्त हो गये प्राण
रुका है सारा करुणा-क्रन्दन
बहती कैसी पागल धारा
हाथ जोड़कर खड़ा देखता दीन विश्व यह सारा

यहाँ प्रथम व तृतीय पंक्तियाँ छोटी हैं और द्वितीय एवम् चतुर्थ

दीर्घ, प्रवाह की लपेट में इन सबका उच्चारण छंद की भूमि पर ही रहेगा, स्वर का उतार, चढ़ाव, संकोच और फैलाव पंक्तियों की लघुता व दीर्घता के अनुसार होता चलेगा, 'मुक्त होगये प्राण' में स्वर का आकुंचन होगा और 'हाथ जोड़कर खड़ा ……………' में विस्तार।

मुक्त छंदों के विवेचन से स्पष्ट है कि उसका प्रयोग अवाँछनीय नहीं है, विरोध के युग में, इस छंद के अस्तित्व की रक्षा में कवि को इसके चक्रवर्तित्व की घोषणा करनी पड़ी है, स्थिति यह है कि काव्य में मुक्त और अमुक्त दोनों प्रकार के छंदों का उपयोग है, जैसा कि कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि उपवन का भी मूल्य है और अरण्य की खुली प्रकृति का भी, किंतु हिन्दी पाठकों के चिर-अभ्यस्त श्रवण-रंध्र छंद बद्ध गीतों को ही अधिक श्रेय देते रहे हैं, सूर, तुलसी, मीरा के पद तथा पंत, प्रसाद, महादेवी, बच्चन के गीतों की लोक-प्रियता से यह स्पष्ट है 'निराला' के मुक्त छंदों का भी अनुकरण हो रहा है, कुछ कवि सफल भी हुए हैं परन्तु आज तक लोक-जीवन को वे उतना प्रभावित नहीं कर पाते जितना छंदो-बद्ध गीत। इसका कारण यह है कि भावनाओं की अभिव्यक्ति तो गद्य में भी सफलता से हो जाती है, भाव की प्रेषणीयता के लिए 'सुगमता' आवश्यक है संगीत व छंदबद्धता इसके लिए अनिवार्य नहीं तो बहुत अधिक अंशों में उत्तरदायी हैं फिर कोमल भावनायें तो मुक्त छंद में उतनी मर्म स्पर्शिता नहीं पा सकीं जितनी गीतियों में, संगीत का स्पर्श गीतियों को और भी मनोहर बना देता है, मुक्त छंद में भी गेयता विद्यमान है परन्तु वह गेयता सर्व-सुलभ नहीं बन सकी, निराला जब "जुही की कली" पढ़ते हैं तो अवश्य आनंद का संचार होता है, इसमें संदेह नहीं है परन्तु इसी कविता के मौन-पठन में उतना आनन्द नहीं आता, यही बात 'संध्या-सुन्दरी' के सम्बन्ध में है। "तुम और मैं" प्रधान कविता है, 'पंच-वटी' व 'तुम और मैं' दोनों दार्शनिक-तत्वों से परिपूर्ण है, किन्तु

"तुम और मैं" क्यों हृदय को अधिक स्पर्श करती है, मुक्त छंद में निश्चित रूप से 'गद्यमयता' आ जाती है जो काव्य की स्निग्धता, द्रवणशीलता, मधुरता और मर्म-स्पर्शिता को शत्रु है अतः मुक्त छंद विभिन्न प्रयोगों में, एक प्रयोग विशेष की भाँति सदा सुरक्षित रहेगा, किंतु काव्य की मुक्ति केवल मुक्त छद द्वारा ही होगी, सारे बंधनों का तिरस्कार कर पदावली का मनमाना विधान ही सत् काव्य के लिए अनिवार्य है, यह नहीं माना जा सकता।

कवि के अनुसार नियमों का मानना गुलामी का चिन्ह है, किंतु स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिक भी "परमस्वतंत्र न सिर पर कोई" की स्थिति में नहीं होते, जहाँ रीति-कालीन कवियों की तरह नियमों की नालियों से न निकलना हानिकर है वहाँ सामान्य और सहायक नियमों की भी अवहेलना उच्छृङ्खलता का ही प्रतीक है, काव्य के क्षेत्र में तुक, संगीत की व्यवस्था उसे अधिक प्रभावशाली बनाती है। शक्तिपूर्ण काव्य के लिए, पौरुष, साहस, उत्साह जगाने के लिए निश्चित रूप से मुक्त छंद, सफल साधन है परन्तु मसृण भावनाओं की व्यजना गीतियों में ही अधिक सफलता से व्यक्त हो सकी है, स्वयं गीतिका के गीत इसके प्रमाण हैं।

भाषा-शैली—भाव की झंकार भाषा के वाद्य द्वारा उत्पन्न होती है, भाषा में हम शब्द विन्यास पर विचार करते हैं और शैली में भावाभिव्यक्ति के प्रकार विशेष पर। युग विशेष में जब भावना के क्षेत्र में क्रान्ति का आगमन होता है तो भाषा भी भाव का अनुगमन करती है, भाषा को भावना के साँचे में ढलना पड़ता है, द्विवेदी युग के इतिवृत्तात्मक काव्य के लिये भाषा का जो रूप प्रयुक्त हो रहा था, उसमें वह शक्ति न थी जो नूतन सूक्ष्म भावनाओं के भार को सम्हाल सके, उसमें कोमल कल्पनाओं और मृदुल संवेदनों के लिये लचक Elasticity एवं संकेतात्मकता Suggestiveness का अभाव था अतः छायावादी कवियों की भाषा का बहुत कुछ रूप गढ़ना पड़ा, बंगला की पद्धति पर एक ओर कोमल कान्त पदा-

वली का सन्निवेश हुआ और दूसरी ओर अँगरेजी के अनुकरण पर लक्षणात्मक प्रयोगों का प्रचलन हुआ, अनावश्यक रुक्षता और अनगढ़पन को कम करके नये कवियों ने उसमें अभिनव मूर्तिमत्ता, लाक्षणिकता, रहस्यात्मक सांकेतात्मकता, समास शक्ति के बल पर थोड़े में बहुत कुछ कहने की शक्ति आदि गुणों का विकास किया, संस्कृत के शब्दों का मनमाना लदाव जो द्विवेदी जी या गुप्तजी में यत्र तत्र मिलता है, उसके स्थान पर संस्कृत की कोमल शब्दावली का ही आश्रय लिया गया, इस प्रकार छायावादी युग की भाषा द्विवेदी युग की भाषा से किंचित् भिन्न रूप लेकर प्रस्तुत होती है, द्विवेदी युग की भाषा में प्रौढ़ता तो है, एक साधुता और पवित्रता भी है परन्तु जो मादकता और लचक, जो सूक्ष्म भाव ग्राहिता एवं परिष्कृत पदावली छायावादी कवियों की भाषा में मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। छायावादी कविता केवल कल्पनाओं एवं संवेदनाओं का संघात नहीं है उसमें कला के बाह्य पक्ष की दृष्टि से अद्भुत कार्य हुआ है और शुक्लजी ने तो यहाँ तक माना है कि छायावाद की सारी सफलता उसकी लाक्षणिक शैली पर ही आश्रित है। रीतिकाल में जिस प्रकार शब्द-संघात, पद-संहिति एवं जड़ाव की ओर अधिक ध्यान आगे चल कर आगया था उसी प्रकार छायावाद में भाषा की सज्जा के प्रति एक व्यापक मोह मिलता है, जैसे गीतों के बाल दृग अपनी मृदुल हथेलियों से भाषा-सरोवर में चटुल लहरियाँ उठाते चलते हों, जिस प्रकार छायावादी कवि ने चुन चुन कर भावनाओं को वाणी दी उसी प्रकार उसने चयन, गढ़न, परिष्करण एवं अलंकरण द्वारा भाषा का रूप अत्यन्त स्निग्ध, मादक और मनोहर बनाया।

परिष्करण, अलंकरण का कार्य सभी कवियों में एक सा नहीं चला, 'पन्त' व महादेवी में उक्त दोनों तत्व सबसे अधिक मात्रा में मिलते हैं, इनकी भाषा में सामान्य-व्यावहारिक भाषा से ऊपर उठ कर एक कलात्मक स्तर पर, पर लगाकर उड़ने वाली

भाषा मिलती है, भाषा का भी अपना संगीत होता है, उसके शब्दों की अपनी-अपनी प्रवृत्तियाँ होती हैं, शब्दों के भी अपने-अपने स्वर, अश्रु, हास, पुलक और उच्छ्वास होते हैं, पन्त ने शब्दों की नाड़ी को सबसे अधिक पहचाना, यहाँ तक कि शब्द चयन की धुन में भाव की भी कहीं-कहीं उपेक्षा हुई, ऐसे स्थानों पर शब्द व्यय अधिक हुआ अर्थ प्राप्ति अपेक्षा कृत कम। किन्तु निराला व प्रसाद में द्विवेदी युग के तत्व बराबर विद्यमान रहे, उनमें अनगढ़पन और अपरिष्करण पर्याप्त मात्रा में मिलता है निरन्तर प्रयोग से पन्त में जो एक चिकनी भाषा के दर्शन मिलते हैं, वह निराला में नहीं मिलती अतः सामान्य व्यवहारिक भाषा का रूप निराला की उन महान कविताओं में भी मिलता है जिनमें छायावादी, लाक्षणिक शैली कोमल कान्त पदावली मे नृत्य करती हुई चलती ।

'यमुना के प्रति' जैसी कविता में एक ऐसा ही प्रयोग देखिये—

उत्सुकता से उकता, उकता
खोल रही, स्मृति के दृढ़ द्वार।

सरोज स्मृति में एक ओर तो भाषा का अत्यन्त उच्च कलात्मक रूप है और दूसरी ओर रूप है :—

एन्ट्रेंस पास है लड़की वह,
बोले मुझसे 'छब्बिस ही तो
वर की है उम्र, ठीक ही है
लड़की भी अट्ठारह की है।

भाव और भाषा दोनों में 'निराला' की यह विशेषता है कि अनेक कविताओं में कवि "अत्यन्त उच्च" और "अति सामान्य" का एक साथ निर्वाह करता है—'जन-जन जीवन के सुन्दर' नामक कविता का शब्द विधान अलंकृत है परन्तु वहीं यह भी है :—

दाग दगा की
आग लगा दी
× × ×
हुआ गैर जो, सहज सगा हो

तात्पर्य यह कि एक ही कविता में भाषा के अत्यन्त उच्चकोटि का शब्द विन्यास भी मिलता है और यत्र-तत्र अत्यन्त सामान्य प्रयोग भी मिलते हैं, यह दोष भी है और गुण भी, गुण वहाँ है जहाँ कवि शब्द-सज्जा के प्रति प्रारम्भ से ही सजग न होकर सामान्यतः व्यवहारिक भाषा में अपने भाव प्रकट करना चाहता है यथा 'भिखारी' में किन्तु जहाँ भावना कोमल है, कला का स्तर जड़ावट और सज्जा चाहता है वहाँ अपरिष्कृत प्रयोग कला की शिथिलता और कवि की असावधानता प्रकट करते हैं, किन्तु जहाँ कवि सजग रहा है वहाँ यह शिथिलता खोजने पर भी नही मिलती यथा तरंगों के प्रति, संध्यासुन्दरी, जुही की कली, प्रेयसी आदि कविताओं में।

भाषा के सम्बन्ध में दूसरी बात है सामान्य शब्दावली में असामान्य पदों का प्रयोग, यह उपरोक्त प्रवृत्ति के ठीक विपरीत है यथा 'स्मृति' नामक कविता में—

तिमिर ही तिमिर रहा कर पार
लक्ष्-वक्षस्थलार्गलित द्वार॥

यहाँ दीर्घ संधि-विधान से प्रयोग दुरूह होगया है। राम की शक्ति पूजा में ऐसे प्रयोग बहुत है, प्राय. दीर्घ संधियों एवम् समास-प्रधान पद वल्लरिया ने हिन्दी को 'प्रिय-प्रवास' की हिन्दी से भी आगे बढ़ा दिया है, अच्छाई यह है कि पूरी कविता में भाषा का यह दुरारूढ़ रूप नहीं हैं जब समास-प्रियता का उन्माद कम होता है तो भाषा स्वाभाविक पथभर आ जाती है। एक रसता का निराला की भाषा में पूर्ण अभाव है और यह अच्छा ही है, दोष इतना ही है, कि भावानुकूल भाषा के ढालने में अधिक उच्छृङ्खलता से कार्य ले लिया गया है। विशेपकर ज्ञान, शक्ति और उत्साह के प्रदर्शन में। 'राम की शक्ति पूजा' एवम् 'तुलसीदास' में कवि समासबद्ध शैली का अधिक प्रयोग करता है, और वह वहाँ किसी सीमा तक सफल भी हुआ है, किन्तु कोमल भावनाओं की

व्यंजना में कवि की भाषा अधिक कोमल नहीं हो सकी, संस्कृत के सौष्ठव ने जैसे भाषा की शरीर पर एक लबादा डाल दिया हो जिसके भार से उसकी नर्तन-शीलता, एवं सुकुमारता कम होगई हो। पंत में भाषा व भाव विषयक सुकुमारता निराला से कहीं अधिक है। 'जुही की कली', और संध्यासुन्दरी' में भी पंत की 'बालविहंगिन' जैसा अल्हड़पन नहीं है। निराला में भाषा-कामिनी का रूप दृढ़ और दीप्त अधिक है, लज्जालु और सुकुमार कम उसमें मादकता व संगीत उतना नहीं जितना सौष्ठव और दर्प है।

निराला की भाषा की शैली की तीसरी विशेषता है लाक्षणिकता के स्थान पर समस्त पद-विधान का आकर्षण। पंत, महादेवी में ऐसे शब्दों का विधान अधिक किया गया है जो विभिन्न रूपों की योजना करते चलते हैं, निराला में रूपविधायिनी शब्द कला के स्थान पर थोड़े में बहुत कहने का प्रयत्न अधिक हैं, पदावली की घनता को उन्होंने अपने अर्थ सौरस्य का साधन बनाया है अतः अर्थ करने में सबसे अधिक कठिनाई निराला के ऐसे पदों में पड़ती है जैसा कि हम पीछे "कौन तम के पार रे कह" गीत में देख आये है—

अखिल पल के स्रोत, जल-जग,
गगन, घन-घन धार रे कह
कौन तम के पार (रे कह) ॥

निराला की इस पद्धति पर संस्कृत व बंगला का अप्रतिम प्रभाव पड़ा है, कवि द्वारा अर्थ-स्पष्ट कर देने पर भी वह उलझनों को प्रश्रय देने वाला है, कुछ व्यक्ति न समझ सके, वहाँ तक कोई चिंता नहीं, किंतु जिसका अर्थ कोई न समझ सके तो अवश्य चिंत्य है पहले भी कहा गया है—

"मजा कहने का जब है, इक कहे और दूसरा समझे"

अब नूतन प्रयोगों को देखिये—

छायावादी कविता में कोमल कांत पदावली का विधान बँगला की पद्धति पर हुआ, गुप्त जी, मुकुटधर पाण्डेय ने ही इसका प्रयोग हिन्दी में आरम्भ कर दिया था, 'प्रसाद' 'निराला' पंत ने इस मधुर कोमल शब्द-निर्माण को उसकी सीमा तक पहुँचाया, किंतु बँगला व अँगरेजी के नूतन अलंकारों व लक्षणात्मक प्रयोगों की भी उन दिनों बड़ी प्रतिष्ठा थी, निराला में यद्यपि इनका प्रयोग पंत की अपेक्षा कम मिलता है तथापि कवि ने नवीन प्रयोगों से अपनी कला का रूप सँम्हाला अवश्य है—

अमूर्तीकरण :—

किंतु कोमलता की वह कली
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह।

× × ×

विशेषण-विपर्यय

किस अतीत का गूढ़ विलास
× × ×
चल चरणों का व्याकुल पनघट

लक्षणात्मक-प्रयोग—

गंध व्याकुल-कूल उर-सर
लहर-कच कर कमल मुख पर
हर्ष अलि हर स्पर्श शर, सर
गूँज बारम्बार (रे कह)❀

❀'विचार व विकास 'अध्याय में इसका अर्थ देखिये

तरंगों के प्रति, यमुना के प्रति आदि में मानवीयकरण का पर्याप्त प्रयोग मिलता है, इस प्रकार नूतन प्रयोगों का निराला में अभाव हो, ऐसा तो नहीं है परन्तु पंत व महादेवी के समान उनमें लाक्षणिक प्रयोग कम मिलते हैं उनका ध्यान अर्थ गाम्भीर्य और शब्द संनिधि पर अधिक रहता है, प्रयोगों के चमत्कार तथा भाषा की मूर्तिमत्ता पर कम।

इस प्रसंग में हम निराला जी के विचारों को उद्धृत करके उनकी भाषा शैली पर प्रकाश डालेगे, कवि ने पंत जी के पल्लव की आलोचना लिखते हुये लिखा है कि पंत में स्वरों की प्रधानता है उन्होंने पल्लव में 'स' का और गुंजन में 'रे' का अधिक प्रयोग किया है, निराला में व्यंजनों की प्रधानता है, कवि ने इसे पंत की स्त्री सुकुमारता माना है जबकि वह अपने काव्य को "पुरुप गर्व" का अधिकारी मानता है, इसमें संदेह नहीं कि पंत में भाषा की सुकुमारता अधिक है पर वह तो कलाकार की परिष्कृति का प्रतीक है क्लीवता का नहीं, 'पुरुप गर्व' के लिये अनगढ़पन आवश्यक नहीं है, सुरुचि और शालीनता कला की प्रथम शपथ है, पंत में वह असीम मात्रा में है, 'उत्साह व शक्ति' के स्थान पर पंत के काव्य मे प्रेरणा अधिक है, निराला में सीधा वज्र-प्रहार, दोनों अपनी-अपनी सीमा में गुण हैं जो दोनों के व्यक्तित्व की पहचान में सहायक हैं, यदि कोमलता क्लीवता का लक्षण कहलाने लगेगी तो निराला की भापा को अनगढ़ और उद्धत भापा कहा जायगा परन्तु हमें आक्षेप से कार्य न लेकर सहानुभूति पूर्वक विचार करना होगा, पंत के विरुद्ध जो आक्षेप किये गये हैं, चाहे वे निराला द्वारा किये गये हों या उनके अन्ध भक्तों द्वारा, उनमें पक्षपात की दुर्गन्धि अवश्य ओत-प्रोत है।

वर्ण-विधान के सम्बन्ध में कवि ने बताया है कि 'पन्त' में श, ण, ल, व का प्रयोग बहुत मिलता है, इन वर्णों का उच्चारण हिन्दी की प्रकृति के विरुद्ध है यथा—

शांत, स्निग्ध, ज्योत्सना, उज्ज्वल
अपलक, अनंत, नीरव, भूतल
सैकत शय्या पर दुग्ध-धवल,
तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म-विरल,
लेटी है श्रान्त, क्लान्त, निश्चल (नौका-विहार)

यहाँ निरालाजी ने दिखाया है कि श, ल, व का कितनी अधिक मात्रा में प्रयोग हुआ है, यह ठीक है कि निराला ने उक्त वर्णों का प्रयोग कम किया है, और यह भी ठीक माना जा सकता है, कि तालव्य श, ण आदि का प्रयोग हिन्दी की प्रकृति के विरुद्ध है परन्तु दीर्घ समासांत-पदावली तथा अप्रचलित शब्दों के मनमाने प्रयोगों के लिये कौन सा तर्क उपस्थित किया जायगा, "वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में तागी" का अभिप्राय कौन समझ लेगा ? पन्त में श ण ल व का प्रयोग भले ही अवांछनीय हो परन्तु शब्द-संस्कार में वह निराला से अवश्य आगे हैं।

'निराला' की भाषा का एक दोष यह भी है कि उन्होंने विभिन्न शब्दों से मनमाने अर्थों को लिया है, प्रायः उन शब्दों से कवि द्वारा ग्राह्य अर्थ प्रचलित नहीं है अतः उसके द्वारा अभीष्ट अर्थ, कविता से ध्वनित नहीं होता यथा तुलसीदास में—

किन्नर का अर्थ नपुंसक व आत्मा-बाँधव का अर्थ आध्यात्मिक-शक्तियाँ लिया गया है—

नर हैं भीतर, बाहर किन्नर-गण गाते।
बंधन में फँस, आत्मा बांधव दु:ख पाते॥

नीलालका, अक्लम, सुघर संयुक्ता जैसे प्रयोगों का भी अभाव नहीं है।

निराला में अर्थ की अनिश्चितता घनीभूत पदावली के कारण उतनी नहीं जितनी अप्रचलित अर्थों में, शब्दों के प्रयोग करने के कारण उत्पन्न हुई है, इसके साथ ही कवि में पदावली की अपूर्णता भी मिलती है विभक्ति कारकों का पूर्ण लोप संदेह का जनक बनता है, साथ ही थोड़े से शब्दों का प्रयोग कर अमित अर्थ के आवाहन में, निराला की भाषा पछाड़ खाती हुई दिखाई पड़ती है, गीतिका के अनेक पदों में यही दोष मिलता है, जहाँ पन्त में निराला के अनुसार पाठक का मन केवल उपमाओं, रूपकों आदि की भरमार में उलझ जाता है, कला की पूर्ण मूर्ति उपस्थित नहीं

हो पाती उसी प्रकार मेरे विचार से निराला में निराला की शब्द संहिति-प्रियता अर्थ-निर्वाह में बुरी तरह असफल रही है भाषा का कार्य विचारों का वहन करना है, निराला में अर्थ निर्वाह के पदावली प्राय: अपर्याप्त रह जाती है ऐसे स्थानों पर पाठक का मन दीर्घ समासों के धुआँधार आक्रमण को देखकर भयभीत होकर पीछे हट जाता है।

विहगम दृष्टि से देखने पर निराला में, छायावादी काल में भी भाषा के कई स्तर हैं—

(१) दीर्घ समासप्रधान भाषा—राम की शक्तिपूजा, बुद्ध के प्रति,

(२) सरल व्यवहारिक भाषा—भिखारी, महाराज शिवाजी का पत्र, वह तोड़ती पत्थर, हिन्दी के सुमनों के प्रति,

(३) सुबोध परन्तु सौष्ठव प्रधान—जुही की कली, संध्या सुन्दरी, बादल राग, जागो फिर एक बार, आदि।

(४) अलंकृत कोमल भाषा—यमुना के प्रति, प्रेयसी,

प्रगतिवादी प्रयोगों की भाषा कचोट प्रधान, अत्यन्त व्यवहारिक पथ पर चलती है, कवित्वमयी उच्चता कम होगई है, 'भद्देस प्रयोगों' की भरमार है। भावनाप्रधान गीतों में अपेक्षाकृत भाषा सौष्ठव प्रधान है—

तिमिरदारण मिहिर दरसो
ज्योति के कर अन्ध कारा—
गार जग का सजग परसो
—अर्चना

निराला ने संस्कृत के भाण्डार से चमकदार शब्दों के बहुमूल्य प्रस्तर खूब चुने हैं उन्हें घिस-घिस कर स्थान और स्थिति के अनुकूल बनाने की प्रवृत्ति उनमें कम रही है, कविता की वेगवतीधारा जब उच्छृंखलता से बहती है तो शब्दों के रोड़े परस्पर की टकराहट से एक भयानक ध्वनि करते हुए बढ़ते चलते हैं, जो पाठक के मन में वीर और भयानक रस की परिस्थिति-सृजन में अवश्य

सफल हुए हैं किन्तु निराला में शब्द समीर के हल्के स्पर्श के समान हृदय कलिका को गुदगुदा कर उसमें मदिर संगीत उत्पन्न नहीं करते जो महादेवी व पन्त के शब्द करते हैं यही इन कलाकारों की भाषा में अन्तर है, प्रगतिवादी प्रयोगों में निरालाजी ने जड़ावट घिसावट तथा अलंकृति का पथ प्रायः पूर्णतया छोड़ दिया है, यहाँ भाषा व्यंग्यों और प्रहारों को अभिव्यक्त करने का साधन मात्र है, सामान्य बोलचाल के शब्दों से ही कवि ने अपनी वाणी को बद्ध किया है, हिन्दुस्तानी का जो एक व्यवहृत रूप है वही यहाँ दर्शनीय है, किसी भी प्रचलित शब्द का बहिष्कार नहीं है—

दौड़ते हैं बादल ये काले काले
हाईकोर्ट के वकील मतवाले
सावन में भतीजा होने का हुआ,
पहले से बुला लाई गई बुआ —खजोहरा

'कुकुरमुत्ता' और नये पत्तों में भाषा का उक्त रूप अधिक मिलता है, 'अणिमा' व 'अर्चना' में इस "मनमानी हिन्दुस्तानी के स्थान पर सौष्ठव अधिक है, हिन्दी में गजलों के प्रयोगों की भाषा खिचड़ी है, एक ओर संस्कृत पदावली है तो उसी के साथ उर्दू की भी बहार है। सन् ४० के बाद एक सूक्ष्म प्रवृत्ति प्रायः कवि में दृष्टिगोचर होती है जहाँ कवि समाज, क्रान्ति आदि पर लिखता है वह झुँझलाया हुआ सा लगता है, मानो बदला लेने पर उतारू हो गया हो और जो मन में आ जाय उसे वमन करने पर उतारू हो जाये दूसरी ओर जब वह अपने में रम जाता है, अपनी चिर-प्रिय वैष्णवीय विह्वलता में डूब कर अर्चना के गीत गाता है तो भाषा सुस्थिर हो जाती है और बेमेल खिचड़ी भी नहीं पकती। भाषा के अनिश्चित प्रयोगों पर उसकी मानसिक अस्वस्थता का भी प्रभाव हो सकता है परन्तु नये प्रयोगों में अर्थ सौरस्य थोड़ी कठिनाई से बराबर मिलता है, कहीं-कहीं बेमेल पदों की चोटियाँ अवश्य जोड़ दी गई हैं जो वैचित्र्य का चमत्कार भर दिखाने को पर्याप्त हैं।

"मूल्यांकन"

हमने अब तक महाकवि निराला की काव्य कृतियों एवम् कला के रूपों का विश्लेषण प्रस्तुत किया, साथ ही प्रत्येक स्तम्भ में यह भी प्रयत्न किया गया कि निराला के काव्य व कला पर तुलनात्मक दृष्टि से भी विचार होना चले ताकि 'कवि' का रूप हमारे सम्मुख स्पष्ट होकर आ सके। यहाँ हम समग्र-दृष्टि से तुलनात्मक आधार पर यह विवेचन करने का प्रयत्न करेंगे कि अंततः काव्य-वस्तु, एवम् अभिव्यक्ति के स्वरूप को ध्यान में रखकर 'कवि' किस कोटि का कलाकार ठहरता है?

शृंगों की ऊँचाई, नीचाई नापी जा सकती है, कलाकारों का नहीं, किन्तु अनेक बार ऐसा हुआ है कि समालोचकों ने अपने दुराग्रह के पगों से महाकवियों के काव्य शरीर को नापकर उनमें से किसी एक को इन्द्र का पद दिया है और दूसरे को पाताल-वास करने को विवश कर दिया है।

आज की आलोचना का आधार काव्य-गत विशेषताओं का विश्लेषण नहीं रहा कवि की अंतर्वृत्तियों का विवेचन, एवम् कला की प्रभाव-समष्टि का पर्य्यवेक्षण भी नहीं, अब तो केवल कवि से यह पूछा जाता है—

"तुम लिख रहे हो और कलात्मक ढंग से लिख रहे हो, यह ठीक है—इसकी परीक्षा बाद में होती रहेगी—लेकिन तुम पहले यह बताओ कि तुम कौन, बुर्जुवा या कामरेड, पूँजीवाद के समर्थक या साम्यवाद के"

कला के विवेचन के पश्चात् यदि हम निराला से पूछें "तुम

कामरेड हो या बुर्जुवा" तो निराला के उत्तर देने के पूर्व ही हिन्दी के वे कुत्सित समाज-शास्त्री पुकार उठेंगे, कि निराला ही केवल एक ऐसा कवि है जो क्रांतिकारी है और रहा है। निराला की क्रॉति का क्या रूप है यह हम पिछले सोपानों में दिखा आये हैं, उसकी पुनरावृत्ति यहाँ न होगी, यहाँ तो यह देखना है कि क्या यह आवश्यक है कि निराला, पंत, महादेवी और प्रसाद को अपने बनाये गलत सॉचे फिट करने का प्रयत्न किया जाय और ऐसा न होने पर उन्हें प्रतिक्रियावादी करार दे दिया जाये, ऐसा हुआ है "निराला" को अपने "साँचे" में भरने का प्रयत्न किया गया है और जिस प्रकार पारे को समेटने में असफलता मिलती है उसी प्रकार ऐसे आलोचकों को भी असफलता मिली है। इसी प्रकार "पंत" पर भी प्रयोग किया गया, "ग्राम्या" के प्रकाशन के पश्चात् उसका 'स्तवन' बहुत हुआ परन्तु स्वर्ण किरण, स्वर्णधूल, उत्तरा, युगपथ के प्रकाशन के बाद एक तुमुल ज्वार आगया, मानो कोई आकस्मिक घटना घटित हो गई हो, किन्तु वही बात "निराला" की "अर्चना" के प्रकाशन के बाद नहीं घटी उसमें से गीत की अपने अनुकूल पड़ने वाली पंक्तियों को दुहरा कर सिद्ध कर दिया गया कि "निराल" क्रान्तिकारी कवि है।

वस्तु स्थिति यह है कि निराला, पंत, महादेवी न गांधीवादी हैं न मार्क्सवादी, न वे भूतकाल में कभी रहे हैं, सारी छायावादी चेतना "मानवता-वादी" चेतना है। इनकी क्रान्ति और आवाहन मानव के व्यापक मूल्यों पर आधारित हैं, किसी आन्दोलन विशेष से वे कभी प्रभावित रहे हैं परन्तु मनुष्य, समाज, विश्व और विश्वेश के प्रति उनकी "एप्रोच" मानवतावादी ही है, यह मानवतावाद राष्ट्रीय जागरण के रूप में द्विवेदी युग की स्थूल नैतिकता व समाज सुधार-वाद की प्रतिक्रिया में उठा था, इस पर योरोप के बुर्ज्वावर्ग के रोमांटिक कवियों शैले, कीट्स आदि का प्रभाव था, उक्त कवियों के स्वप्न व नूतन कल्पनायें, वायवी सौन्दर्य की अनु-

भूति—तात्कालिक विनष्ट प्राय सामन्तवाद के विरुद्ध पूँजीवादी प्रतिक्रिया थी जो अपनी सीमाओं व परिस्थितियों में प्रगतिशील थी।

उसका भी आधार "विश्व मानव-वाद" था जिसका आधार यूनान का प्राचीन "सर्ववाद" था। हमारे यहाँ द्विवेदी-युग के राष्ट्रीय जागरण के रूप से एक भिन्न रूप इन छायावादी कवियों ने ग्रहण किया जिसका आधार संकुचित राष्ट्रीयता, स्थूल नैतिकता के स्थान पर सौन्दर्यानुभूति, कल्पना-प्रियता, विश्व-मानवतावाद तथा प्रेम का दैवीकरण था। देश व जाति का स्थूल-प्रेम अब सूक्ष्म व तरल होकर जैसे संसार की प्रत्येक जाति, प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक हृदय में हिल्लोलित होने लगा था, इसका आधार था भारतीय "सर्ववाद" निराला इसी को "विश्व-वाद" कहते हैं इस विश्ववादी धारा में उस दिव्य सत्ता को नारी की कमनीयता का पर्याय माना गया और प्रकृति के रूपों में उन दिव्य नारी रूपों की साधना चल पड़ी, रवीन्द्र ने यह पद्धति पहले से ही प्रचलित कर दी थी, निराला, प्रसाद व पंत उसी पद्धति पर अपनी पूरी मौलिकता से आगे बढ़ते गये।

रीतिकाल के स्थूल ऐंद्रिक प्रेम के स्थान पर यहाँ नारी की दिव्य कमनीयता को आधार बनाया गया निराला ने लिखा—"यह ज्योति प्रवाह अरूप है, जड़ों में यह चेतन-सयोग ही गति है, प्रत्येक पद पर इसका अज्ञात स्पर्श जीव-जग करता है, अन्यथा दूसरा चरण उठ नहीं सकता............साहित्य में इस अरूप की स्वतन्त्र सत्ता की नारियों मे स्थिर रूप दिया गया है, कलाविदों ने वहीं पुरुष प्रकृति का सौहार्द, दोनों का अपार प्रेम देखा। आकर्षण दोनों के सभोग विलास में ही है।"

इसी रहस्यानुभूति या प्रकृति में पुरुष के दर्शन की प्रवृत्ति के बल पर सारे विश्व की एकता व मानव मात्र के आन्तरिक साम्य की घोषणा छायावादियों ने की, जाति, रूढ़ि, अत्याचार, हीनता के

विरुद्ध छायावादियों का स्थर मानसिक स्थिति में हुआ उसमें "सामाजिक-प्रयोग" करने के स्थान पर वैयक्तिक-दृष्टिकोण की इसीलिये प्रधानता रही किंतु उनका "व्यक्ति" जैसे उस युग की सामाजिक चेतना का ठीक-ठीक प्रतिनिधित्व कर रहा था।

"विश्ववाद" का यह स्पर्श निराला में जुही की कली, सन्ध्यासुन्दरी, तुम और मैं आदि का प्रस्फुटन का कारण बना और पंत में 'मौन-नियंत्रण', एक तारा व स्वर्ण किरण, स्वर्णधूल व उत्तरा की कविताओं का। महादेवी में यही चेतना नीहार से लेकर दीपशिखा तक अभिव्यक्त हुई।

कवि की चेतना निरपेक्ष्य नहीं होती वह समाज की चेतना से अनुशासित होती है और समाज पर भी उसका यत्किंचित प्रभाव पड़ता है। निराला व पंत पर मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव पड़ा, एक ने गुलाब को गाली देकर "कुकुरमुत्ता" व "बिल्लेसुर बकरिहा" को देखा तो दूसरे ने "पल्लव" को छोड़कर "ग्राम्या" की छवि अंकित की, महादेवी ने अकाल पर कवितायें लिखीं, निम्न-वर्ग के अनेक प्राणियों को अपनी सहानुभूति का दान देकर अमर कर दिया यथा "स्मृति की रेखाओं" में भक्तिन। किंतु निराला व पंत ने कभी भी पूर्ण रूप से मार्क्सवाद को स्वीकार नहीं किया, 'निराला' को इसीलिये हमने "औचित्यवादी" बतलाया है, "कुकुर-मुत्ता" का लेखक बराबर "निराकार" से प्रार्थना करता रहा, सन् ५० में प्रकाशित उसकी 'अर्चना' हमारे सम्मुख है।

'पंत' ने भी गान्धीवाद व मार्क्सवाद को आंशिक रूप से ही स्वीकार किया, गांधीवाद से "अहिंसा" व मार्क्सवाद से जन-कल्याण की भावना ली, "पंत" ने इसीलिए द्रुत झरो जगत के जीर्णपत्र कहा था और मध्यकाल की विकृतियों के विरुद्ध विद्रोह किया था उन्होंने यंत्रयुग की उपयोगिता बतलाई, ज्ञान व विज्ञान का समन्वय खोजा तथा चेतना को बाह्य परिस्थितियों से अनुशा-

सित होना स्वीकार किया किंतु साथ ही वर्ग-संघर्ष व सशस्त्र-क्रान्ति को उन्होंने मार्क्सवाद की सीमा बतलाया।

पंत में विकास खोजने वाले समझते हैं कि पंत एक ऐसी कोमल लता है जिसमें दृढ़ता का सर्वथा अभाव है वह सदा वायु के झकोरों से अपना रुख बदलती रही है किंतु वे यह भूल जाते हैं कि पंत का जो स्वरूप हम पल्लव काल में पाते हैं उसी का विकसित रूप "स्वर्णकिरण" में है ग्राम्याकाल में प्रारम्भ की चिंतन-श्रृंखला टूटती नहीं है केवल थोड़ा सा रूप परिवर्तित कर लेती है मूल स्वर उसका उसी भारतीय आदर्शवादी दर्शन पर आधारित है। सारे प्रश्नों व समस्याओं को ये आदर्शवादी कवि उसी आदर्श के अंचल का आश्रय लेते बिना ही हल करते रहे हैं और अब भी करते रहे हैं इसीलिए अन्तर्मन व बहिर्मन के समन्वय की बात स्वर्णकिरण व उत्तरा में कही गई है। आलोचक को यह सूत्र समझना चाहिये था किंतु कुत्सित समाज शास्त्रियों ने इस "अन्तश्चेतनावाद" को प्रहार का लक्ष्य बनाकर निर्णय दे दिया कि पंत का सारा काव्य बुर्ज्वा वर्ग के सहयोग पर आधारित है, कल्पना के हजार स्रत-स्रोतों में वे "वर्ग-सहयोग" की भावना को छिपाकर पूँजीवाद का स्तवन करना ही अपना धर्म समझते हैं किंतु आश्चर्य है यही बात 'निराला' के सम्बन्ध में नहीं कही गई, सम्भवतः इसके कारण व्यक्तिगत सम्बन्ध रहे हैं। जिस "प्रान्तीयता" को हम घृणा की दृष्टि से देखते हैं वह प्रान्तीयता या "प्रादेशिकता" हमारे साहित्यिकों के हृदयों में भी गुंजित हो रही है।

उक्त मानव-वादी परम्परा को समझ कर भी न समझने का परिणाम यह हुआ कि निराला व पंत का वास्तविक रूप छिपाया गया, 'पंत' को प्रतिक्रियावादी कहकर और निराला को तथा कथित प्रगतिवाद के साँचे में कस कर।

पंत के विषय में जो रोष प्रकट किया गया है उसका आधार है "काव्यगत वस्तु" ऐसी आलोचनाओं में उल्लेखनीय है १—स्वर्ण-

किरण और* स्वर्णधूल नामक लेख (डा० राम विलास शर्मा) जिसमें कई विशेषतायें हैं—

(१) केवल विकृति को टटोलने का प्रयत्न है।

(२) कवि द्वारा वर्ग संघर्ष व सशस्त्र क्रांति का विरोध करने पर भयंकर आक्रोश प्रकट किया गया है।

(३) उद्धरण चुनने में विशेष चातुर्य का प्रदर्शन है, बिना पूरा प्रकरण पढ़े ही एक दो पंक्ति उद्धृत कर बड़े हस्त-लाघव से उनसे अपने अभिप्राय की सिद्धि करली गई है।

विकृति में 'स्वर्णकिरण' की अश्लीलता आती है, "हिमाद्रि" नामक कविता में जिसे अश्लील कहा गया है, केवल एक स्टैंजा ऐसा है जिसमें किन्नरों की रतिक्रीड़ा का वर्णन है वह भी स्मृति संचारी के रूप में कामायिनी में 'प्रसाद' ने देवसृष्टि के विलास का बड़ा उत्तेजक वर्णन किया है परन्तु वह वहाँ प्रलय के पश्चात् मनु की "पुनःस्मृति" के रूप में है अतः मुख्यभाव शोक ही माना जायगा और वह सारा वर्णन "स्मृतिसंचारी" जो करुणा रस के परिपाक में सहायक मात्र होगा। हिमालय का वर्णन करते हुये कवि ने उसे अपरिमित गौरव की पुँजीभूत राशि के रूप में देखा है और स्मृति के रूप में कहा है—

सम्भव पूरा तुम्हारी द्रोणी किन्नर मिथुनों से ही कूजित।
छाया निभृत गुहामें उन्मद, रतिकी सौरभ से समुच्छ्वसित॥

किंतु कितनी सफाई के साथ डा० साहब ने केवल "छाया निभृत गुहामें उन्मद, रति की सौरभ से समुच्छ्वसित" चुन लिया है और "सम्भव पुरा" छोड़ दिया है। (स्व० किरण पृष्ठ १२)

हिमालय पर कविता में एक अत्यन्त दिव्य, वातावरण है यथा—

*"सुमित्रानन्दन पन्त" नामक पुस्तक में प्रकाशित उक्त लेख— शचीरानी गुर्टू द्वारा सम्पादित।

सती अपर्णा के तप से, वन श्री अवाक् सी लगती विस्मित।
अबभी प्रिय गौरा का शैशव, वर्णन करते खग, पिक मुखरित॥

कालिदास की शब्दावली का अनुवाद भी केवल एक पद में है वह कैसी थी—

अब न बताऊँगा, वह जैसी थी (स्वर्ण किरण पृष्ठ ३-)

उक्त पंक्तियों को लेकर मजाक किया गया है परन्तु वस्तुतः जिस कविता से ये पंक्तियाँ उद्धृत हैं उनमें उस नारी के गौरव की महिमा है, कामुकता का प्रदर्शन वहाँ नहीं है इस कविता में एक सुन्दर नारी द्वारा उस कवि को फटकार बताई गई है जो नारी के स्नेह के साथ-साथ उसके शरीर पर भी अधिकार चाहता है।

लज्जा पर तुम्हें न आती, बन पकते नहीं प्रेम सन्यासी।
हृदय तुम्हें देती हूँ प्रियतम, देह नहीं दे सकती
जिसे देह दूँगी अब निश्चित, स्नेह नहीं दे सकती।

अब 'पाठक' ही बतायें कि "अब न बताऊँगा वह जैसी थी" से कवि की कामुकता प्रकट हुई या दिव्यता ?

मैं यह नहीं कहता कि पंत कमनीयता की टोह में कामुकता के पंक से पूर्ण रूप से बच गये हैं, हृदय की सद्वृत्तियों को प्रतीक रूप में वर्णित करने पर यत्र-तत्र चित्र उद्दीपक हो गया है परन्तु स्वर्णकिरण व स्वर्णधूलि न केवल उरोजों, जघनों, कटाक्षों का "भव-सागर" है यह कहना कवि के प्रति अन्याय है।

क्रान्ति के स्थान पर यदि कवि, आज का कवि प्रार्थना करे तो डा० साहब की दृष्टि में महापाप है। वे लिखते हैं ' अगर चीजों के दाम बढ़ गए हैं, तनख्वाह कम मिलती है, बीबी बच्चे परेशान हैं, हड़ताल करने व लड़ने की ताब नहीं है तो "आओ प्रभु के द्वार"

प्राप्त नहीं जो ऐसे साधन।
करो पुत्र दारा का पालन॥

पौरुष भी जो नहीं कर सको
जनमगल, जनगण परिपालन॥
आओ प्रभु के द्वार॥

इस सम्बन्ध में निवेदन किया जा चुका है कि पंत व निराला दोनों आध्यात्मिक निष्ठा रखने वाले कवि हैं ऐसे प्राथना गीत स्वावलम्बन व शक्तिग्रहण के निमित्त ही समझने चाहिये निरालाजी ने "अर्चना" मे अनेक गीत लिखे हैं।

हरि का मन से गुण गान करो
तुम और गुमान करो, न करो
स्वर्गङ्गा का जल पान करो
तुम अन्य विधान करो न करो

× × ×

दुख की निशि का अवसान करो
प्रिय नाह की बाँह का थान करो— "अर्चना"

इस "हरिगुणगान" से वर्ग संघर्ष कैसे तीव्र होगा?

स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि में जो समन्वय की बात कही गई है उससे सहमत न होना स्वाभाविक है परन्तु कवि ने किस प्रकार 'जन कल्याण' पर ही सर्वदा ध्यान रक्खा है किस प्रकार निराशा के क्षणों मे भी मानवता की टिमटिमाती ज्योति को अत्यधिक भास्वर देखने का विश्वासी वह रहा है, नारी की कमनीयता के साथ उसकी "गरिमा" का गुणगान किस प्रकार वह करता है, किस प्रकार वह जाति, रूढ़ि, दासत्व, हीनता, अन्धविश्वास, द्वेष, द्रोह, दम्भ, कुरुचि और कुसंस्कारों के विरुद्ध लड़ा है वह क्या उसे मानवतावादी कवि सिद्ध नहीं करता। पन्त का कवि मानव-चेतना की जय का अमिट अभिलाषी है वह मनुष्य के भविष्य के सुख स्वप्नों के गीत गाता है, युगानुयुग से दलित पीड़ित जनता की आशा अभिलाषाओं की पूर्णता वह देखना चाहता है, वह

'मानव' को सृष्टि का सुन्दरतम प्राणी स्वीकार करता है, सारी जन-चेतना में वह अपनी चेतना मिलाकर उसके भावी सुख की कल्पना में लगा हुआ है। उसे मानव विकास मे अडिग विश्वास है, वह बाह्य'समता के साथ आन्तरिक साम्य चाहता है। अन्तस् वैभव का चमत्कार वह हिमाद्रि से लेकर "कौवे" तक मे देखता है तब उसकी निष्ठा "ट्रूमैन की ईसाइयत" कैसे होगी ?

पन्त ही एक ऐसा कवि है जिसे हम "स्वतन्त्र चेता" कह सकते हैं, उसका अपना (Vision) है जो प्रारम्भिक चिंतन के प्रकरण में से ही विकसित है जिसकी धुरी "मानवता-वाद" है और शीर्ष 'अन्तश्चेतना-वाद"। सूत्र को न देखकर Conscious and Super-Conscious शब्द पढ़कर अरविंद को व पन्त को गाली देना अनुचित है। निराला ने 'तुलसीदास' व 'पन्त ने गांधी' का विश्लेषण पैनी दृष्टि से किया है, विराटता, व्यापकता, उदारता विचारक की असफलता नही है, "गांधी जी" पर किया गया विश्लेषण पन्त जी की एक देन है। रजनीपाम तथा वकार महोदय एकांगी दृष्टिकोण के कारण गांधी को न समझ सके,❀ भारत की उसी जनता ने जो डा० साहब के अनुसार पन्त जी से से अधिक दर्शन जानती है, गांधी को समझ लिया है किंतु जनता की इस बात को "जनवादी" ही न समझ पाये, कैसा आश्चर्य है ?

भारतीय समाज व संस्कृति का, आचार व दर्शन का, नेतृत्व व उनके कृतित्व का विश्लेषण यदि हमारे "साथी" वैज्ञानिक दृष्टि से कर पाते, उनसे दृष्टिकोण की एकांगिता किसी प्रकार निरत हो जाती है तो भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी पूँजीवाद की कभी का, अब तक समाप्त कर चुकी होती। पन्त के अतश्चेतना-वाद से अधिक हानिकर कम्यूनिस्टों के दृष्टिकोण की घोर एकांगिता रही है।

❀देखिये "संगम और संघर्ष"—डा० रांगेयराघव एवम् "महात्मा गांधी क्रान्ति का दर्पण"—ड० रांगेयराघव(गुलदस्ता अक्टूबर १६५३)

जातिगत वैमनस्य का दूरीकरण देखिये—

तो अच्छा हो छोड़ दें अगर
हम हिन्दू मुस्लिम और ईसाई कहलाना
मानव होकर रहें धरा पर
जाति वर्ण धर्मों से ऊपर
व्यापक मनुष्यत्व में बँधकर

यही "व्यापक मनुष्यत्व" अंतश्चेतना के मूल में है अपने विश्वास के अनुसार कवि ने "भूख" के तीन प्रकार गिनाये हैं (१) शरीर की भूख (२) मन की भूख (३) आत्मा की भूख और उत्तरोत्तर इनको महत्त्व दिया है तीनों का समन्वय ही ध्येय है आत्मा के प्रकाश में मन व देह की भूख तृप्त होती है. कवि यह चाहता है।

पन्त व निराला दोनों ने ईश्वर के प्रति घटते हुए विश्वास को जन-चेतना के अनुकूल दिखाया है और विश्वास प्रकट किया है कि वह भूख के दिनों में विस्मृत हो जाय, यह स्वाभाविक है—

"ईश्वर को मरने दो, हे मरने दो"

पन्त (स्वर्णधूलि पृष्ठ ६४)

कैसे हुई हार, तेरी निराकार

(अर्चना पृष्ठ ८५)

किन्तु दोनों कविताओं में "निरीश्वरवाद" नहीं है शुद्ध आस्तिकता है, केवल आस्तिकता पर भी परिस्थितियों का प्रभाव इन कवियों ने स्वीकार किया है, पन्त व निराला "बाह्य व अंतस्" "दोनों वैभवों के लिये प्रयत्न-शील कवि हैं, केवल एक के नहीं—

कभी न पीछे हटने वाले—ही करते जय।
बहिरन्तर के ऐश्वर्यों का, करते संचय

'पन्त' ने अन्तश्चेतना-वाद को "सामूहिक-वैभव" का ही पर्याय माना है।

किंतु जवाहरलाल नेहरू, गांधी, १५ अगस्त आदि विषयों पर प्रशंसात्मक गीत लिख देने से ही जिनकी भ्रकुटियाँ वक्र हो उठती हैं, जिनका प्रलयंकर त्रिनेत्र खुल जाता है वे यह नहीं सोचते इन अभिनन्दन गीतों में भी कवि ने विश्लेषण की पैनी धार से केवल उन्हीं तत्वों की प्रशंसा की है जो जनता के जागरण से सम्बन्ध रखते हैं। उसकी कला 'प्रेरणा'' के रूप में है न कि 'प्रहार' के रूप में और इसी दृष्टि से उसका मूल्यांकन भी करना चाहिये। साहित्य मनुष्य के सारे जीवन का चित्रण है 'अनुभूति' और नारे-बाजी में अंतर है. जो मानवता के कल्याण के लिये संवेदन शीलता, प्रेरणा, कोमलता की स्फुरणा के लिये सौन्दर्यानुभूति व भावों का परिष्करण आवश्यक नहीं समझते वे यदि पन्त के काव्य को "रामनामी" का आवरण मात्र" कहें तो आश्चय नहीं, मनुष्य की पूर्णता आर्द्रता व ओज दोनों के सामाजिक विकास में है—किसी कवि ने ठीक लिखा भी है—

मानव-मन को बेधते फूल के दल केवल
आदमी नहीं कटता बरछा से, तीरों से"

पन्त व निराला दोनों का काव्य मनुष्य की दो वृत्तियों का विकास-कर्त्ता है, पन्त 'आर्द्रता' का कवि है और निराला "ओज" का। दोनों का वैयक्तिक व सामूहिक उपयोग है, पन्त में शालीनता, सुरुचि, परिष्कृति, एवम् वृत्तियों के संस्कार का अधिक प्रयत्न है, 'निराला' में आत्म-विश्वास व भैरव-गर्जन भरने का। सौंदर्यानुभूति दोनों की अत्यधिक तीव्र, सूक्ष्म एवम् व्यापक है। निराला जहाँ विराट हिमशृङ्गों से अभय का तूर्य बजाता दिखाई पड़ता है वहाँ पन्त "हरीतिमा से गुँजित ज्योत्सना से शबलित कल्पना का कुसुम-वन" सा दृष्टिगोचर होता है, निराला यदि वारिद व्यूह की सारी गड़गड़ाहट को समेटता हुआ रूढ़ि के पत्थरों को ढकेलता हुआ सिंधुनद है तो पन्त कोमल कल्पनाओं व स्निग्ध अनुभूति के बुदबुदों से व्याकुल वीचि-विलासिनी सरिता है, दोनों का

गंतव्य चेतनाभूमि का महासागर है जो अपने में ही पूर्ण व परिव्याप्त है जहाँ जन-कल्याण व "आत्म-कल्याण" अलग २ वस्तुयें नहीं है, अर्चना व स्वर्णकिरण का कवि एक हो उठता है जिसे Narcissm "स्वरूप-मुग्धता" कहा जाता है वह न पन्त में है न निराला मे यहाँ "आत्मा पर मुग्धता" अवश्य है अपने रूप की कमनीयता पर मुग्ध होना तो पल्लव-काल की वृत्ति हो सकती है व्यंग की कचोट जो कुकुर-मुत्ता में है या 'चतुरी चमार' मे, वह जितनी आवश्यक है उतनी ही आवश्यक "दलित विधवा" की यह पंक्ति—

वह इष्ट देव के मंदिर की पूजासी
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन
दलित भारत की विधवा है;

उक्त पंक्तियों में जो द्रवण-शीलता है, भावों को तरल कर देने की शक्ति है वह कभी जन-वाद के विरुद्ध नहीं जा सकती 'पन्त' की कोमल कविताओं के "कोमल-कोमल" पर व्यग करने वालों को उक्त रहस्य समझना चाहिये, इसी भाव गरिमा के कारण "पन्त व निराला", महादेवी महाकवियो में गिने जाते है, बिना भाव-वैभव के ही तथा—कथित प्रगतिवादी कविता जन-जन की प्राण धरोहर नहीं बन पाई। प्राणों के ताप मे तप कर जब तक काव्य ऊपर नहीं आता तब तक चाहे नास्तिक विद्रोह पर लिखिये चाहे झोंपड़ी पर, काव्य न होगा और कुछ भले ही हो।

× × × ×

आचार्यों ने महाकवि होने के निम्नलिखित लक्षण दिये हैं (१) प्रतिभा (२) अपूर्व वस्तु निर्माण क्षमा-प्रज्ञा (३) नवोन्मेष शालिनी प्रज्ञा (४) वर्णन निपुणत्व (५) अभ्यास (६) व्युत्पत्ति। वस्तुतः इनका उल्लेख सफल नाटककार के लिये है किन्तु तब नाटक-कार कवि को एक माना जाता था नाटककार होने के लिये सर्व-

प्रथम कवि होना आवश्यक था। निराला उच्चकोटि का कलाकार है यह अब सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं। साथ ही महादेवी, पन्त प्रसाद आदि महाकवियों मे निराला का क्या स्थान होगा? यह प्रश्न व्यर्थ है, प्रत्येक कवि का व्यक्तित्व अलग होता है, उसकी कला का 'निजत्व' उसे दूसरों से अलग कर देता है और वह हम पीछे दिखा आये हैं किन्तु समग्रदृष्टि से देखने पर 'निराला' की कुछ विशेषतायें उन्हें अपने साथी-कवियों में एक निराला स्थान दिला देती हैं निराला की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है "वैचित्र्य" और "मौलिकता" उनकी कला का प्राण है 'शौर्य' और वह बाह्य रूप में वैचित्र्य को लेकर प्रकट होता है, जहाँ वैचित्र्य कम है वहाँ संतुलन अधिक है और वहां कला अधिक निखर सकी है, निराला की कला में 'गठन' तो असीमित मात्रा में हैं परन्तु परिष्कृति व मार्दव का अपेक्षाकृत अभाव है यह गुण पन्त और महादेवी में अधिक है। निराला और प्रसाद की कला में द्विवेदी युग का यह प्रभाव कभी नहीं मिटा, कामायिनी में भी नहीं। निराला ने तुकबन्दी से नाता तोड लिया किन्तु शब्द-संस्कार में वे उस मात्रा मे क्षमता न दिखा सके जो 'पन्त' में दिखाई पड़ती है।

वर्णन निपुणता के लिए निराला के कथा साहित्य को पढ़ना चाहिये क्योंकि निराला ने काव्य में दो बातों का सदा विरोध किया है विवरणात्मकता एवम् उपदेशकता का। वर्णन की चारुता एवम् चित्रात्मकता पन्त व प्रसाद में अधिक, भाव की गहराई व वृत्तियों की बारीक छानबीन निराला मे, यथा 'तुलसीदास' व शक्तिपूजा मे। वातावरण चित्रण में, वह भी भयंकर परिस्थितियों के सृजन में निराला सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं। हृदय की घुमड़न प्रसाद व निराला में अत्यधिक सुन्दरता से वर्णित होती है निराला अंतर्द्वन्द्व की पद्धति अधिक पसन्द करते हैं और प्रसाद भीतर ही भीतर शीतल-दाह की अनुभूति व अभिव्यक्ति का।

मर्मभेदिनी प्रज्ञा निराला में पन्त से अधिक है, 'पन्त' में कोमल चित्रों की चारुता सर्वश्रेष्ठ है, किन्तु 'पन्त' में अनुभूति-जनित उस ऊष्मा का अपेक्षाकृत अभाव है जो कल्पना को भाव के साधन के रूप में प्रस्तुत करती है पन्त के चित्र प्रायः कल्पना के इन्द्रधनुषी पर खींचे हुए जान पड़ते हैं निराला व पन्त के 'बादल' शीर्षक कविताओं को मिला. ये स्पष्ट हो जायगा। निराला व महादेवी के काव्य का विस्तार उतना नहीं जितना 'पन्त' का, पर गाम्भीर्य 'निराला में अधिक है. पन्त के नवीन दर्शन में बोझिल बौद्धिकता आ जाती है, यह गाम्भीर्य 'निराला' की सौन्दर्य व दर्शन प्रधान कविताओं में ही है, सन् ४० की बाद की कविताओं में "अस्तुलन व वैचित्र्य" बहुत रहा है। 'अर्चना' में अन्विति की एकता का अभाव सबसे अधिक खटकता है।

पन्त की अपूर्वता चित्र-विधान में है और निराला की अपूर्वता अभिव्यक्ति के नवीन स्वरूपों के आविष्कारों में।

कला का नित्य नव उन्मेष हमें कामायिनी के पश्चात् दृष्टि-गोचर नहीं होता।'महादेवी' में भाव की व शब्दों की स्निग्धता तथा पदावली की सहजता ही है जो निराला में कम मिलती है, किन्तु प्रतिभा जो रूपों का नव नव उन्मेष कर दिखाती है वह नहीं दिखाई पड़ता महादेवी की कला में 'एकरसता' का आना उसका बड़ा दोष है। निराला वैसे राम की शक्तिपूजा व तुलसीदास में अपनी चरमसीमा तक पहुँच चुका था, सन ४० के बाद काव्य में विविधता अवश्य है, भाव का चमत्कार व व्यंग का विकास भी और वैविध्य नवोन्मेष शालिनी प्रज्ञा का ही प्रतीक है, किन्तु "राम की शक्ति पूजा" का निराला आगे अपनी महनीयता को नहीं सम्हाल पाता यह निश्चय है, जैसे कला अंतस् को भेद कर अब जैसे ऊपरी धरातल में आ गई हो और यह ठीक भी है क्योंकि वैयक्तिकता के स्थान पर सामाजिकता का अधिक विस्तार कवि को ऊपरी धरातल पर ला देता है और यह अच्छा ही हुआ है क्योंकि

कला में 'व्यापकता' भी एक गुण है निराला की कला के छोर अब वैयक्तिक व सामाजिक दोनों प्रकार के काव्या को छूते हैं, छायावादी कला में जिस प्रकार 'निराला' महान् है उसी प्रकार 'प्रगतिवादी' काव्य में, कहना तो यह चाहिये कि प्रगतिवादी कवियों में निराला का स्थान आज भी अन्यतम है।

उद्वेग व विद्रोह के युग में असन्तुलन व वैचित्र्य बढ़ता भी अधिक है अतः आज भी प्रगतिवादी कविता अभी स्थिरता नहीं पा रही है न भाषा की दृष्टि से न भाव की दृष्टि से। कहीं केवल उद्वेग है कहीं केवल व्यंग्य। स्थिरता तो मानसिक स्थिति पर निर्भर है अभी तक केवल "गाली देना ही प्रगतिवादिता" का पर्यायमात्र माना जाता है, जीवन के स्थिर-मूल्यों को लेकर जब प्रगतिवादी कवि सन्तुलित शक्ति से काव्य लिखेगा तब वह स्थायी हो सकेगा प्रगतिवाद की बहुत सी कवितायें इतिहास बन कर सिमिट जायेगी यह निश्चय है।

निराला का कलाकार एक विराट वट-वृक्ष के समान है जो पुरातन सांस्कृतिक-अतल से अपना मानसिक भोजन पाकर, अपनी विशाल भुजाओं से चारों दिशाओं से नवीन तत्व ग्रहण कर अपने नभ-स्पर्शी शीष से महिमा जन्य-सौन्दर्य से, अन्य कवियों को नीचे छोड़कर ऐहिक, आमुष्मिक तथा आध्यात्मिक चिंतनाओं के जटा-जाल को गह्वर करता हुआ खड़ा है वह पन्त के समान ज्योत्सना स्नात मालती का मधुर कुंज नहीं है जो 'संवेदन' व कौतूहल जनित कल्पनाओं के स्वप्नों की हथेली पर मुख रख कर सो जाता है, न वह करुणा-विगलित 'चिर सुन्दर' के साथ महादेवी की आँख मिचौनी है यह तो विश्व के सारे "अहं" का—उस 'अहं' का जिसमें सब अपना अपना भाग बँटा सकते हैं, वचोपक है, यह तो उस 'निपता' का ज्वलंत प्रतीक है जिसके पल्लव पाणि दो ओर संकेत करते हैं—समाज में बाह्य समता की ओर और व्यक्ति में अद्वैत-साधना की ओर। जिसकी एक शाखा

मुज में कुकुरमुत्ता, वेला, नये पत्ते, बकरिहा, चतुरी चमार के वज्र-भेदी व्यंग्य हैं जो मनुष्यता के ऊपर पड़े हुए 'विषमता के लबादे को ध्वस्त कर रहे हैं और दूसरे में 'अर्चना' की संस्कार-जनित आत्म-गुहार है। गूढ़ आत्म-तत्त्व को अंतस् के किसी निभृत कुंज में रख कर जैसे निराला आज की विषम-परिस्थिति का विद्रूप करता हुआ अट्टहास कर रहा है और लोग उसे पागल समझते हैं।

परिशिष्ट

कौन तम के पार (रे कह)❀

अखिल पल के स्रोत, जल जग,
गगन घन-घन-धार (रे कह)
गंध - व्याकुल - कूल - उर - सर,
लहर-कच-कर कमल-मुख पर
हर्ष अलि हर स्पर्श-शर, सर
गूँज बारम्बार (रे कह)

उदय में तम भेद सुनयन,
अस्त-दल ढक पलक-कल तन
निशा-प्रिय-उर शयन सुखधन
सार है या कि असार (रे कह)

बरसता आतप यथा जल
कलुष से कृत सुहृत कोमल
अशिव उपलाकार मंगल,
द्रवित ढाल नीहार ! (रे कह)

❀ देखिये पृष्ठ १०० ।